...वरस्तोत्रकाव्यम्

आचार्य हरिहरपाण्डेयः

निर्मलप्रकाशन
वाराणसी - २२१००५

ईश्वरस्तोत्रकाव्यम्

घोषणापत्र

१ पुस्तक का नाम - ईश्वरस्तोत्र काव्यम् (पद्य)
२ विषय - ईश्वरस्वरूप - ज्योतिषकर्मफलमीमांसा
३ लेखक का नाम और पता - हरिहर पाण्डेय, ~~बी २०/३~~ बी २८/३१ बी, तिनगा कोठी दुर्गाकुण्ड वाराणसी २२१००५।
४ संस्था का नाम जिसमें लेखक कार्यरत हो ×
५ लेखक का प्रमाणपत्र (निम्नलिखित रूप में)

(क) मैं प्रमाणित करता हूं कि मेरी उपर्युक्त रचना मौलिक । ~~अनूदित~~ । ~~नवीन व्याख्या~~ । ~~अनुवाद~~ । के साथ प्रथम बार वर्ष १९९३ में प्रकाशित हुई है।
(ख) यह रचना शोधग्रन्थ । है । नहीं है।
(ग) मैं जन्म से उत्तरप्रदेश का निवासी हूं। गत पांच वर्षों से उत्तरप्रदेश में रह रहा हूं।

लेखक के हस्ताक्षर
हरिहर पाण्डेय

निर्मलप्रकाशन
वाराणसी - २२१००५

ईश्वरस्तोत्रकाव्यम्
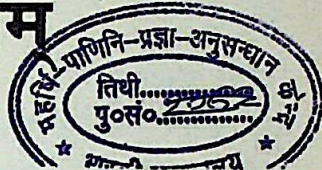
आचार्य हरिहरपाण्डेयः

निर्मलप्रकाशन
वाराणसी - २२१००५

प्रकाशक:
निर्मला देवी
निर्मल प्रकाशन
बी. २७/३१ बी, भिनगा कोठी
दुर्गाकुण्ड, वाराणसी - २२१००५

प्रथम संस्करण १९९३

मूल्य रु.

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी से छः सहस्र रुपयों की सहायता प्राप्त हुई है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में डोभी (जौनपुर) के तेजपुर ग्रामवासी रघुवंशी श्री केशवसिंह (रामकृष्णसिंह, शिव प्रसादसिंह) से छःसहस्र रुपयों की सहायता प्राप्त हुई है। उनका मुझसे परंपरागत गुरुशिष्य सम्बन्ध है।

मुद्रक:
रत्ना प्रिंटिंग वर्क्स
बी. २१/४२ ए., कमच्छा,
वाराणसी - २२१०१०

सूची

वेदों की शिक्षा १, आस्तिक कौन ५ महावीर, बुद्ध, गीता आदि के उपदेशामृत और मतैक्य १६। साकार ईश्वर की सार्थकता और दुर्दशा ३९। साकार वेद ४०। शिव के रूप, आभूषण और अयोध्या काशी आदि का रहस्य। शिव विष्णु एक ४५।

प्रथम अध्याय–गणपति ईश्वर का नाम है, मानव देह में पूरा विश्व है ५७। शिव के विषपान आदि का भावार्थ ६३। विष्णु के रूप और पूजा का रहस्य ७०। वास्तव व्रत ७४।

द्वितीय अध्याय–यदुवंश और सोमनाथ मन्दिर का विध्वंस ८६। दक्षिण कैलास की शोभा और स्कन्द ९१। मल्लिकार्जुन, महाकाल, वैद्यनाथ, रामेश्वर, काशी, सारनाथ, केदारनाथ (हिमालय) की विशेषतायें १०५। घुष्मेश्वर का समन्वयवाद तथा शिव मन्दिरों में भाषा प्रान्त आदि का संमेलन १०८।

तृतीयाध्याय–आधुनिक ज्योतिष समीक्षा, वैदिकज्योतिष समर्थन। चारयुग चार मनोवृत्तियां है, काल नहीं। सब संवत्सर, अयन, मास शुभ हैं। हरि कभी सोते नहीं। वर्षा शरद् स्त्रीलिंगी होने से अशुभ नहीं। सब नक्षत्र, वार, पक्ष, तिथि शुभ। भद्रा भरणी रवि मंगल आदि अशुभ नहीं। आप के निन्दित काल आरंभ के साथ-साथ कार्य के मध्य में भी आते हैं। अग्नि, मृत्यु, रोग आदि बाण मिथ्या हैं। वेदों में कोई काल अशुभ नहीं है, सबमें ईश्वर का वास है। योगिनी, ग्रहदशा के फल काल्पनिक हैं। सूर्यास्त में विवाह होता है तो शुक्रास्त में क्यों नहीं ? संवत्सर ईश्वरदेह है। ज्ञानयज्ञ द्रव्ययज्ञ से श्रेष्ठ है। १०९-१३९

चतुर्थ अध्याय–ग्रहों के उदय की नहीं, हृदयमें ईश्वर के उदय की प्रतीक्षा करो। अपशकुनों से मत डरो। आकाश में ग्रह ही नहीं, उनसे बड़े तारे हैं, ध्वनियां हैं, प्रदूषण हैं, मानवों के मनोभाव हैं अतः ग्रहबल को सर्वस्व मत मानो। मुहूर्त में शक्ति है तो सीता राम को कष्ट क्यों मिले ? हम बहुत दिनों तक यवनों के दास क्यों रहे ? विजय के मुहूर्त कहां गये ? पारिवारिक सुख के लिये मिथ्या विद्याओं से धन मत कमावो। दक्षिणा ले कर ज्ञान दो। शिव के हाथ में शूल पिनाक भी हैं , राम के हाथ में धनुष है। समाज की रक्षा के लिये शस्त्र और युद्ध भी आवश्यक हैं १४०-१५५।

पंचम अध्याय–ईश्वरकृपा और शान्ति के लाभ का सर्वश्रेष्ठ उपाय ज्ञान और सदाचार है । ईश्वर और तीर्थों को शरीर में ढूंढो । अन्नजल का त्याग नहीं, दोषत्याग व्रत है और सन्तों का संग उपवास है । शरीर और वस्त्रों को नहीं, मन को रंगो । नामजप से श्रेष्ठ है नामी के गुणों का अनुकरण । ग्रन्थों के प्रक्षेपों से सावधान रहो । उनके कथन को तर्क की कसौटी पर परखो । मुनियों के शाप से शिव का लिंगपात मत मानो । नाक, कान, हवा, पृथ्वी, पर्वत, नदी आदि से बच्चे नहीं पैदा होते । ईश्वर एक हैं और उनके अवतार तथा नाम अनेक हैं । उनमें भेदभाव मत रखो । उनकी पूजा हृदय से करो । विश्वनाथ को कुछ दो नहीं । १५६-१८० ।

षष्ठाध्याय–नेता, मंत्री, राजा, गुरु आदि को कर्मफल पर विश्वास रख कर कुत्सित धन से बचना चाहिये । तभी जनता, जनार्दन के आशीर्वाद और शान्ति की प्राप्ति होती है । अन्यथा पुत्र आदि ही शत्रु हो जाते हैं । दशरथ, कौशल्या, सीता, नन्द, यशोदा, वसुदेव, देवकी, रावण, कंस आदि को साक्षात् राम कृष्ण का दर्शन हुआ था पर वे सुखी नहीं थे अतः देवों की मूर्तियों के दर्शनार्थ मत दौड़ो, अपने सदाचार से उनकी कृपा प्राप्त करो और वही मांगो । शंकर, पार्वती, हनुमान् कृष्ण आदि की कृपा रहते अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु मारा गया और पांच पुत्र काटे गये । ईश्वर भी कर्मफल को टाल नहीं सकते। राम ने इन्द्रसुत बाली को मारा तो कृष्णावतार में बालीसुत अंगद ने व्याध बन कर कृष्ण को मारा । राम ने सूर्यसुत सुग्रीव की सहायता की पर कृष्णावतार में सूर्यसुत कर्ण की हत्या की । द्रोण ने जिस अर्जुन के मोह में एकलव्य का अंगूठा काटा उसी अर्जुन ने द्रोण को मारा, भीष्म को मारा । भीष्म को अम्बा आदि का शाप लगा । दिग्विजयी अर्जुन को गोपों ने लूटा और उसके वंश में केवल परीक्षित् बचा । मनुष्य व्रत, तीर्थ, यज्ञ, देवदर्शन आदि के बल पर दुष्कर्म के फलों से बच नहीं सकता । ईश्वर इसकी व्यवस्था करते हैं १८०-१९० ।

प्राक्कथन (ईश्वरस्वरूप)

भारत का ही नहीं, संभवतः पूरे विश्व का सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद है। मेरे इस काव्य में वैदिक ईश्वर का वर्णन है। हमें विश्वास हो गया है कि भौतिक विषयों का वर्तमान ज्ञान प्राचीन विज्ञान से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है क्योंकि वैज्ञानिक प्राचीन मान्यताओं में संशोधन करते रहे हैं। शरीर, पृथ्वी, ग्रह आदि के विषय में उन्होंने पहले से अधिक जाना है। परम्पराओं के अनुयायी होते हुये भी महाकवि कालिदास ने लिखा है कि कोई काव्य और सिद्धान्त प्राचीन होने से साधु (सत्य) नहीं हो जाता और नवीन होने से निन्दित नहीं कहा जाता। सन्तगण परीक्षण के बाद दोनों में से एक (सत्य) का ग्रहण करते हैं और परम्परावादी मूढ़ सुनी सुनाई बातों को मानते रहते हैं।

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥

किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि सब प्राचीन मानव अल्पज्ञ थे और वे आज के आविष्कारों से सर्वथा अनभिज्ञ थे। वेद के अनेक मन्त्रों से, योग और आयुर्वेद के ग्रन्थों से तथा महर्षि भरद्वाज के यन्त्रसर्वस्व, बृहद् विमानशास्त्र आदि ग्रन्थों से यह बात सिद्ध हो जाती है कि प्राचीन काल में हमें अनेक विषयों का आज से अधिक ज्ञान था। ज्ञानविज्ञान का ह्रासविकास होता रहता है। श्रीकृष्ण भगवान् ने अर्जुन से कहा था कि सात्त्विक तामस, मूढ़ विद्वान्, वीर भीरु, दो प्रकार के मानव सर्वदा रहे हैं। मैं तुम्हें जो बता रहा हूं उसे आज के बहुत पहले मनु ने इक्ष्वाकु को बताया था। वह ज्ञान परम्परागत है (गीता)।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च १६।६
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ४।२॥

भौतिक विज्ञान का प्रबोध प्राचीन काल में भी था और यह निश्चित है कि आध्यात्मिक ज्ञान अत्यधिक था। उस समय के दूरदर्शी मनीषियों की यह अनुभूति थी कि भौतिक ज्ञान की समृद्धि से बाह्य सुख तो मिलते हैं पर वह भीतरी हार्दिक शान्ति नहीं मिलती जो अध्यात्मज्ञान से उपलब्ध होती है। वैदिक साहित्य में

इसका विशद वर्णन है और गीता में योगेश्वर कृष्ण ने उसका सारांश बताया है। व्यास जी ने उसको गीतामृत, उपनिषद् रुपी गायों का दूध एवं उसे पीने वालों को सुधी और भाग्यशाली कहा है। उसके कुछ श्लोक आगे लिखे हैं। उनमें भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का अन्तर देखें।

वेद पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि आदि महाभूतों के ज्ञान को भी महत्त्व देते हैं, ईश्वर से कुछ भौतिक पदार्थ मांगते भी हैं, दुष्टों के दमन और जनता की शान्ति के लिये युद्ध का भी आदेश देते हैं पर विशेष महत्त्व अध्यात्मवाद और सर्वशान्ति को ही देते हैं। यहां केवल यजुर्वेद के कुछ मन्त्र लिखे जा रहे हैं। इनके भाव मनन करने योग्य हैं। विशेषता यह है कि वेदों में प्रायः 'नः' शब्द प्रयुक्त है। उसका भाव यह है कि हे ईश्वर! आप केवल मेरी नहीं, हम सबकी (नः) रक्षा करें। ये पदार्थ हम सबको दें।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् । तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ॥ १ ॥ कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः ॥ २ ॥ असुर्या नाम तें लोका अन्धेन तमसा वृताः । तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥ ३ ॥ यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानतः । तत्र को मोहःकःशोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ७ ॥ भस्मान्तं शरीरम् ॥ १० ॥ अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मत् जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥ १६ ॥ हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ॥ तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥ १७ ॥ यजु अध्याय ४० ॥

सर्वव्यापी ईश संसार के हर स्थावर जंगम पदार्थ में बैठे हैं। अतः त्याग पूर्वक भोग करो, किसी के धन का लोभ मत करो। कर्म करते हुये सौ वर्ष जीने की इच्छा करो, अकर्मण्य न बनो, दूसरे की कमाई मत खावो। जो धन के लोभ में दूसरों की हत्या करते हैं वे मरने पर कष्ट और अन्धकार से भरे असुरलोकों में जाते हैं। ऐसा मत समझो कि ईश्वर तुम्हारे कर्मों और मनोभावों को नहीं देख रहे हैं। जान लो कि वे सर्वव्यापी हैं और तुम्हारा शरीर एक दिन सब कुछ यहीं छोड़ कर चिता में भस्म हो जायेगा। अतः पाप से धन मत कमावो। जो भला मानव सब प्राणियों का सुख दुःख अपना समझता है, सब में एकत्व देखता है उसे न कोई मोह है न शोक है। हे परमात्मा ! हम सबको धन की ओर सुमार्ग से ले चलें, इसके लिये हमने जो अनर्थ किये हैं उन्हें आप जानते हैं। हम बार-बार प्रार्थना
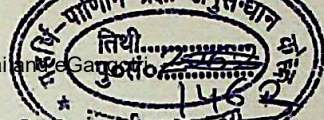
कर रहे हैं कि हमारे अपराधों को क्षमा कर हमें सुमति दें। हे नाथ ! सोने के पात्र (धन के लोभ) ने सत्य का मुख ढक दिया है। आप इसे हटा दें ताकि हम सदा सत्यधर्म का दर्शन करते रहें।

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद् भद्रं तन्न आसुव ३०।३ ॥ यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव । य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम २३।३ ॥ सनो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ३२।१०॥ देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो निवर्तताम् । देवानां सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे २५।१५ ॥ अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् । इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि १।५ ॥ स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । ३।२४ ॥ यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । यदेनश्चकृमा वयं इदन्तदवयजामहे स्वाहा ३।४५ ॥ देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे ॥ ३।५० ॥

हे संसार के उत्पादक देव! हमारे दोषों पापों को समाप्त कर हमें कल्याण दें। अनन्त महिमा वाले परमात्मा! आप जगत् के सारे जड़ों और चेतनों के एक राजा हैं। आप ही सारे मनुष्यों और पश्वादिकों के स्वामी हैं तो हम आप के अतिरिक्त किसका यजन पूजन करें। एक आपही हमारे बन्धु हैं, पिता हैं, पालक हैं, सारे भुवनों के ज्ञाता हैं। देवगण आप के तृतीय धाम में अमृत का सेवन करते हुये विचरते हैं। हमें उस पद का अधिकारी बना दें। हम देवों की सुमति, कृपा, सख्य और उनके समान शुभ आयु पावें। हे देव! आप अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य आदि व्रतों के पति हैं। हमें भी इनका अनुगामी (व्रती) बना दें। हम असत्य से सत्य की ओर जाना चाहते हैं। आप हमारे पिता हैं, हम आप के पुत्र हैं। हम पर कृपा करें। हमने ग्राम में, वन में, सभा में इन्द्रियों द्वारा जो अपराध किये हैं उन्हें अब जला रहे हैं। उनके प्रति हमें घोर पश्चात्ताप है। अब कभी भी ऐसा नहीं करेंगे।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥ ३।६० ॥ चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु देवो मा सविता पुनातु अच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ४।४ ॥ शिवेन वचसा गिरिशाच्छा वदामसि । यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मं सुमना असत् १६।४ ॥ यो देवानां नामधा एक एव ॥

१७।२७ ॥ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव । पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः २०।२० ॥ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षमिर्यजत्राः । स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः २५।२१ ॥

हे पुष्टिवर्धन सुगन्धे त्र्यम्बक! नाना प्रकार के दोष ही मृत्यु हैं। मृत्यु के इन बन्धनों से हमें उसी प्रकार मुक्त कर दें जैसे पका खरबूजा लता से मुक्त हो जाता है पर गुण रूपी अमृतों से मुक्त न करें। आप ही मेरे चित्त, वाणी आदि के पति और विश्व के उत्पादक हैं, मेरी इन्द्रियों को पवित्र कर दें। हे गिरिश! मैं विनम्र वाणी द्वारा यह प्रार्थना कर रहा हूं कि आप सारे जगत् को मानस एवं शारीरिक रोगों से रहित और पवित्रात्मा बना दें। आप को देवों के अनेक नाम दिये गये हैं पर आप एक हैं। जैसे बन्दी को बेड़ी से छुड़ाया जाता है, स्नान से शरीर का मल धोया जाता है, कुश से घृत को पवित्र किया जाता है उसी प्रकार मैं जल छिड़क कर आप का ध्यान कर रहा हूं। मुझे पापों और दोषों से मुक्त कर पवित्र बना दें। हे प्रभो हम कान से सदा भद्र सुनें, नेत्र से सदा भद्र देखें, पवित्र अंगों से और मन से आप का स्तोत्रपाठ करें तथा वह जीवन पायें जिससे देवों (सज्जनों) का हित हो।

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृणं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु। शन्नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ३६।२ तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३६।३ ॥ यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु । शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयन्नः पशुभ्यः ३६।२२ नमः शंभवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च १६।४१ शंनो भगः शं न इन्द्राग्नी शं नो धाता द्यावापृथिवी सोमः सूर्यः सरस्वती वातः । अहानि शं भवन्तु शं रात्रीः ३६।११ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्वंशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ ३६।१७ ॥ दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे समीक्षामहे ३६।१८ ॥ मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ३४।६ त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥

हे भुवनेश्वर! आप हमारी नेत्रादि इन्द्रियों और मन के दोषों को समाप्त कर हमारे कल्याणकारी हों। हे जगत् के रचयिता देव! हम आप के श्रेष्ठ तेज का ध्यान कर

रहे हैं। हम सबकी बुद्धियों को पवित्र कर दें। हमारे सारे भयों को समाप्त कर दें और सारी प्रजा तथा पश्वादिकों को निर्भय एवं मंगलयुत कर दें। आप कल्याण के बीज, मुक्तिदायक, शिव, शंकर और मयस्कर हैं। आप को प्रणाम है। इन्द्र, भग, अग्नि, सरस्वती, सोम, सूर्य, वात आदि सारे देव हम सबका कल्याण करें। हमारे दिवसों और रातों को कल्याण से परिपूर्ण कर दें। हमारे लिये द्यौ, आकाश, भूमि, जल, वनस्पतियां, सारे देव और आप शान्तिमय एवं शान्तिदाता हो जायं। हमें चारों ओर शान्ति ही शान्ति दिखाई दे। हे नाथ ! ऐसी कृपा करें कि सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें, मैं सबको मित्र समझूं और सारा समाज परस्पर मित्र हो जाय। हमारे मनों में सदा कल्याणकारी संकल्प उत्पन्न हों। हे प्रभो! हमारी बाल्य, युवा और वृद्धत्व, तीनों अवस्थायें जमदग्नि, कश्यप और देवों की भांति बीतें।

नास्तिकवाद

नास्तिक की कई परिभाषायें हैं। प्राचीन काल में ऐसे अनेक विद्वान् रहे हैं और आज भी हैं जो वेदों को ईश्वरीय वाणी नहीं मानते। वे कहते हैं कि वेद का कुछ भाग महापुरुषों की रचना है और कुछ मानव रूप धारी राक्षसों की। यज्ञों के नाम पर होने वाली दिग्विजय, धन की लूट, मनुष्यों और पशुओं की हिंसा एवं तामस हवन आदि को देख कर कुछ सन्तों की आत्मा भी रो पड़ी अतः उन्होंने वेदवादियों को भ्रष्टप्रज्ञ और जड़ कह दिया। हमारे कुछ आचार्यों का कथन है कि निराकार महेश्वर के निःश्वास से वेद पैदा हुये और उन्होंने वेदों से इस जगत् का निर्माण किया। शतपथ ब्राह्मण ११।४।२।३ और ऐतरेय ब्राह्मण ५।३२ का कथन है कि ऋग्वेद अग्नि से, यजुर्वेद वायु से और साम वेद सूर्य से उत्पन्न है। मनुस्मृति १।२३ में भी यह बात लिखी है।

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।

मनुस्मृति १२।१८ का कथन है कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध की उत्पत्ति भी वेदों से ही हुई है। शतपथ ब्राह्मण १०।५।२।१ का कथन है कि तीनों वेद सूर्य में स्थित हैं।

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसोगन्धश्च पंचमः ।
वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूतिर्गुणकर्मतः ॥

यदेतन्मण्डलं तपति स ऋचां लोकः । यदर्चिर्दीप्यते स साम्नां लोकः । मण्डले यः पुरुषः सोऽग्निः । स यजुषां लोकः । सैषा त्रयी विद्या तपति ।

कहा जाता है कि हनुमान् और याज्ञवल्क्य ने सूर्य से वेद पढ़े थे किन्तु पुराण कहते हैं कि ब्रह्मा के मुख से इतिहास, पुराण, शास्त्र, उपनिषद्, सूत्र ग्रन्थ आदि भी उत्पन्न हैं और पुराण वेदों से प्राचीन हैं।

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।

अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदा अस्य विनिर्गताः ।

अस्य निः श्वसितं वेदाः इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राणि (बृहदारण्यक उपनिषत्) ।

किन्तु महर्षि कणाद और महाकवि कालिदास के मत में वेद और उपवेद आदि शिव के पांच मुखों से उत्पन्न हैं। यह भी लिखा है कि वेद अनन्त हैं, पर्वताकार हैं और वे सब हमारे मन में हैं। नास्तिक कहते हैं जीभ, दांत, ओठ, कण्ठ, तालु आदि की सहायता से पढ़े जाने वाले मन्त्रों का निर्माण और उच्चारण विदेह ईश्वर ने नहीं किया होगा। वेद जिसके श्वास से निकले हैं वह विदेह नहीं हो सकता। मनुष्यों ने जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण शास्त्र लिखे हैं उसी प्रकार वेद लिखे हैं। वेद ईश्वरकृत होते तो उनमें ईश्वर और देवों की अनेक प्रार्थनायें नहीं रहतीं। उनमें ऐसे विषय नहीं रहते जिनके कारण योगेश्वर कृष्ण उन्हें त्रिगुणात्मक कहते। वेद स्वयं कहते हैं कि जैसे रथ की नाभि में अरे फंसे हैं उसी प्रकार सब वेद हमारे मनों में प्रतिष्ठित हैं। ज्ञान ही वेद है।

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।

वेदमन्त्र जगत् का निर्माण नहीं कर सकते, ज्ञान दे सकते हैं। वेद मंत्र मानव और गोपी बन कर राम तथा कृष्ण की प्रार्थना नहीं कर सकते। सूर्य, अग्नि और वायु शक्तिमान् होते हुये भी जड़ पदार्थ हैं। वे वेदों को पढ़ पढ़ा नहीं सकते। वेदों से आकाश वायु अग्नि जल और पृथ्वी के गुण पैदा नहीं हो सकते। यदि पुराण ब्रह्मा से उत्पन्न हैं और वेदों से श्रेष्ठ हैं तब तो ब्रह्मा और वेद महान् और मान्य नहीं हो सकते। वेद ब्रह्मा के चार मुखों से, शिव के पांच मुखों से और निराकार ब्रह्म से उत्पन्न हैं। हम इनमें से किस कथन को सत्य मानें!

इस प्रकार की अन्य अनेक शंकायें रखता हुआ एक वर्ग वेदों को पौरुषेय (मनुष्यकृत) कहता है और नास्तिक माना जाता है। पाश्चात्यों के जेन्दावेस्ता,

पुरानी बायबिल, नई बायबिल, कुरान, हदीस आदि की भी यही स्थिति है। आज जेन्दावेस्ता, बायबिल और कुरान की मूल प्रतियां उपलब्ध नहीं हैं और हदीसों की संख्या बढ़ती रही है फिर भी ये सब ईश्वरीय वाक्य माने जाते हैं और न मानने वाले नास्तिक कहे जाते हैं। भारत में ऐसे लोग नास्तिक और निन्द्य कहे जाते हैं पर उनकी हत्या नहीं होती किन्तु विश्व के अन्य कई देशों में वे मार डाले जाते हैं। इस विषय में कुरान के समीक्षक सलमान रश्दी की स्थिति चिन्तनीय है।

दूसरा नास्तिक वह है जो परलोक (स्वर्ग नरक आदि) को नहीं मानता तीसरा वह है जो पुनर्जन्म को नहीं मानता। यहूदी, ईसाई, मुसलमान आदि के घरों में इस समय पुनर्जन्म के अनेकों प्रमाण उपलब्ध हैं। उन्हें देखकर वे चकित हैं पर इसलिये नहीं मानते कि यह सिद्धान्त उनके ईश्वर द्वारा उपदिष्ट ग्रन्थ के विरुद्ध है। नास्तिक पूछता है कि एक ही ईश्वर द्वारा उपदिष्ट इन ग्रन्थों में इतना मतभेद क्यों है। आस्तिक इस प्रश्न का समाधान कारक उत्तर नहीं दे पाते हैं।

चौथा सबसे बड़ा नास्तिक वह है जो ईश्वर के अस्तित्व को ही अस्वीकार करता है। इसमें दो वर्ग हैं। एक हृदय से ईश्वर को स्वीकार करता हुआ भी उनके नाम पर होने वाली हिंसा, चोरी, बेईमानी, मद्यपान, प्रदर्शन आदि से दुखी होकर कह देता है कि हमें ऐसा ईश्वर, वेद, यज्ञ, स्वर्ग आदि नहीं चाहिये। वह दुर्गा, शिव, हनुमान्, राम, कृष्ण आदि देवों का भक्त होने पर भी उनकी असंभव, अश्लील, असंगत कथायें सुन कर उनके ग्रन्थों और मन्दिरादिकों से दूर हट जाता है पर दूसरा वर्ग कहता हैं कि इस दुःखमयी, वैरमयी, अशान्तिमयी सृष्टि का निर्माता कोई दयालु और सर्वज्ञ ईश्वर नहीं हो सकता। ईश्वर को सृष्टि बनाने की इच्छा हुई। इसका अर्थ यह है कि वह पूर्णकाम नहीं है। उसने ऐसी सृष्टि बनाई जिसमें एक भी प्राणी निश्चिन्त नहीं है। सत्य यह है कि पृथ्वी अग्नि जल वायु आदि के संयोग से चेतन बनता है और शरीर के जलने पर वह भी समाप्त हो जाता है। मृत मनुष्य यदि समाप्त नहीं हो जाता तो वह अपने पुत्र, पत्नी, माता, पिता, गृह, धन आदि के स्नेह से व्याकुल होकर यहां चला क्यों नहीं आता ? अपनी हत्या करने वाले और सताने वालों को भूत बन कर खा क्यों नहीं जाता? आत्मा शरीर का एक भाग है। वह शरीर के सुख में सुखी और पीड़ा में पीड़ित होता है। वायु, अन्न और जल के अभाव में, आग लगने पर तथा पानी में डूबने पर शरीर छोड़ कर भाग जाता है। हमारे अनेक देशभक्त और परोपकारी मरे तो

पुनः नहीं आये। छोटे बालकों को अपने हित का ज्ञान नहीं रहता, वे आग उठा लेते हैं पर शरीर के विकास के साथ उनकी आत्मायें भी विकसित होती रहती हैं। चेतन आत्मा का पोषण जड़ वायु जल आदि से ही होता है। वृक्ष के बीज में स्थित चेतन धूप, वायु, जल, खाद आदि जड़ तत्त्वों से ही विकसित होता है अतः आत्मा शरीर से पृथक् नहीं है। आत्मा जन्म के समय कोरा रहता है और उसका विकास संगति के अनुसार होता है। आदिवासियों के बालकों और भेंड़िये की मांद से निकले बच्चों की आत्मा विकसित नहीं हो पाती।

ईश्वर निर्गुण, निराकार, निर्विकार, शान्त, निर्वात, अविनाशी, साधु, बली, विद्यापति, निर्द्वन्द्व आदि है तो उससे सगुण, साकार, सविकार, अशान्त, नश्वर, दुष्ट, निर्बल, मूर्ख और चिन्तित प्राणी क्यों उत्पन्न होते हैं अथवा वह ऐसे प्राणी क्यों बनाता है, उससे अनेक ध्वनियां और श्रुतियां क्यों पैदा होती हैं, नास्तिकों के ऐसे अनेक प्रश्न हैं और उन सबों के समाधान कारक उत्तर हैं। हां, यह निश्चित है कि संसार में अनेक ऐसे प्रश्न विद्यमान हैं जिनके उत्तर नास्तिक आस्तिक किसी के पास नहीं हैं क्योंकि मानव की बुद्धि की पहुंच की एक सीमा है। उसके उस पार की बातों को वह नहीं जानती। हम अपने शरीर से सम्बन्धित ही अनेक विषयों को नहीं जानते। हमारा मस्तिष्क ही एक विश्वकोष है। हम जो जानते हैं और लाखों वर्षों में जितना जानेंगे वह सब अज्ञात का एक चतुर्थांश है, यह हमारे वेदों और योगियों का कथन है।

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।
अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत्
(महाभारत भीष्मपर्व ५।१२) । यतो वाचो निवर्तन्ते
अप्राप्य मनसा सह (तैत्तिरीय ब्राह्मण २।९) ॥

हमें सोचना है कि नदी के किनारे पृथ्वी, जल, सूर्यताप, वायु और आकाश, पांचों का संयोग हो रहा है तो क्या वहां और वैसे अन्य अनेक स्थानों में उन जड़ों के संयोग से चेतन प्राणी पैदा हो रहे हैं? उत्तर मिलेगा, नहीं। विज्ञान ने भी मान लिया है कि जड़ से चेतन नहीं पैदा होते। बेचारा चार्वाक आकाश को न जानता था, न मानता था। वह चार ही भूतों को मानता था पर इस समय ईथर सर्वमान्य है और महर्षि कपिल ने आकाश से सूक्ष्म महत् और अहंकार दो तत्त्व बताये हैं तथा प्रकृति और पुरुष को उनका पिता कहा है। बहुत से मनुष्य जन्म से

ही प्रतिभाशाली, सात्त्विक, परोपकारी, त्यागी, वैरागी, योगी, वैज्ञानिक, धूर्त, कामी, लोभी और हिंसक आदि होते हैं। निश्चित है कि आत्मा पिछले जन्मों से इन संस्कारों की लेकर आता है। इसकी प्रतीति के लिये योगियों, वैज्ञानिकों और आक्रामकों के जीवन चरित का अध्ययन अति आवश्यक है। पुनर्जन्म के अगणित उदाहरण हमारे सामने हैं। हमें सोचना है, मनुष्यों और पशुओं के बच्चों को माता का स्तनपान कौन सिखाता है? वे स्तन को काट क्यों नहीं देते?

मरने के बाद मनुष्य और अन्य प्राणियों की आत्मायें स्वतन्त्र नहीं रहतीं। इसलिये वे अपने इच्छित स्थानों पर नहीं जातीं और वे अनेक जन्मों का स्मरण करने लगती हैं फिर भी अनेक पुनर्जन्म प्रत्यक्ष हैं। योगियों का दर्शन होने पर हमारा यह भ्रम निश्चित रूप से दूर हो जायेगा कि आत्मा शरीर से भिन्न नहीं है। टेलीपैथी छोड़ें, आप परकाय प्रवेश को और आत्मा के दूरगमन को प्रत्यक्ष देख सकते हैं। आत्मा जन्म के समय कभी भी कोरी नहीं रहती। हां, उसे ढकने वाले कई पदार्थ अवश्य हैं। योगी उन्हीं को हटाते हैं। संसार में आज जो अशान्ति सर्वत्र दिखाई दे रही है उसका हेतु दयालु परमेश्वर नहीं, मानव का दुराचार है, धन का लोभ है, अपनी सन्तान के प्रति मोह है, हृदयस्थ ईश्वर के ऊपर स्थित आच्छादन हैं।

आस्तिक और नास्तिक में कौन श्रेष्ठ

जो मनुष्य पुनर्जन्म और ईश्वर को नहीं मानता उसके विषय में मेरा दृढ़ विश्वास है कि उसके विचार केवल तर्कों पर आश्रित हैं। उसे अपने से बड़े किसी महान् अध्यात्मवादी योगी का दर्शन नहीं हुआ है। वह यह भूल जाता है कि अनेक विषय तर्क से परे हैं। हमें जो नहीं मिला है वह नहीं है, ऐसा नहीं कहना चाहिये। सच तो यह है कि पुनर्जन्म प्रत्यक्ष है और ईश्वर की कृतियां प्रत्यक्ष हैं। हम ध्यानपूर्वक निरीक्षण करें तो पायेंगे कि यह ब्रह्माण्ड, इसका प्रत्येक अणु, आकाशस्थ ज्योतियां और प्रत्येक जीव के शरीर ऐसे पदार्थ हैं जिनकी आश्चर्यमयी रचना ईश्वर के अस्तित्व को सहज ही सिद्ध कर देती है। जड़ प्रकृति इन्हें नहीं बना सकती। दो सन्तों के वचन हैं—

ध्यान लगा कर जो देखो तुम सृष्टी की सुघराई को।
बात-बात में पावोगे परमेश्वर की चतुराई को॥
आंख न मूंदूं कान न रुंधूं काया कष्ट न धारुं।
उघरे नैनन साहेब देखूं सुन्दर बदनं निहारुं॥

किन्तु आज विश्व में सर्वत्र जो अशान्ति दिखाई दे रही है उसके हेतु वे आस्तिक नामधारी हैं जो आठ घण्टे पूजा करते हैं, तीर्थयात्रा करते हैं, व्रत उपवास करते हैं, दान करते हैं, मन्दिर धर्मशाला बनवाते हैं, धार्मिक वेष धारण करते हैं, कथा सुनते हैं, साथ ही साथ घी में गाय सूअर की चर्बी मिलाते हैं, काफलेदर किडलेदर विदेश भेजते हैं, स्विटजरलैण्ड में रुपया जमा करते हैं तथा अन्य अनेक भीषण पाप करते हैं।

नाम लेने से पाप भस्म

इनके घर में दो प्रकार के धर्म ग्रन्थ हैं। एक में लिखा है कि जिसने दुश्चरितों का सर्वथा परित्याग नहीं किया है, जिसका मन पवित्र और शान्त नहीं हुआ है, जो पापों से डरता नहीं है वह पोथी पढ़ने, कथा सुनने और अनेक बाह्योपचारों से ईश्वर की कृपा नहीं प्राप्त कर सकता है। करोड़ों कल्प बीत जायें, तुम्हें अपने कर्मों के फल तो भोगने ही होंगे।

नाविरतो दुश्चरितात् नाशान्तो नासमाहितः।
नाँशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।

परन्तु ये उन दूसरे प्रकार की पोथियों को पढ़ते हैं, जिनमें लिखा है कि गंगा से सौ योजन दूरस्थ मनुष्य एक बार गंगा कह देने पर अपने अगणित पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक चला जाता है। रा कहने पर सारे पाप बाहर भाग जाते हैं और म कहने पर द्वार बन्द हो जाता है अतः वे लौट कर पुनः नहीं आ सकते। कृष्ण को केवल एक बार प्रणाम कर देने पर दस अश्वमेघ से कई गुना अधिक फल मिलता है और पुनर्जन्म नहीं होता। जो अपने धर्म का परित्याग कर भजन करते हैं वे बीच में अपरिपक्व होने और भजन छूट जाने पर भी मंगल पाते हैं। जो भजन नहीं करते, केवल स्वधर्म का पालन करते हैं उन्हें क्या कोई लाभ मिल सकता है? नहीं, कभी नहीं।

गंगा गंगेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥
रकारोच्चारमात्रेण बहिर्निर्यात्यघव्रजः ।
पुनर्न प्रविशत्यत्र मकारोऽस्ति कपाटवत् ॥
एकोपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः ।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ॥
त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरेर्भजन्नपक्वोपि पतेत्ततो यदि । यत्र क्ववा भद्रमभूदमुष्य किं को वार्थ आप्तो ऽ भजतां स्वधर्मतः (भागवत १।५।१७) ॥

भागवत ६/२ में लिखा है कि अजामिल ने अनेक घोर पाप किये थे किन्तु उसने विना श्रद्धा के अपने पुत्र को पुकारने में नारायण शब्द कहा तो उसके करोड़ों जन्म के पाप भस्म हो गये क्योंकि चोर, शराबी, मित्र-द्रोही, ब्रह्मघाती, गुरुपत्नीगामी, स्त्री राजा माता-पिता गाय का हत्यारा तथा अन्य बड़े से बड़े पापी किसी प्रकार ईश्वर का नाम ले लेने से निष्पाप और ईश्वर के प्रिय हो जाते हैं। अजामिल ने इसी लिये पुत्र का नाम नारायण रखा था।

अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यंहसामपि ।
यद् व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरेः ॥
एतेनैव ह्यघोनोस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम् ।
यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम् ॥
स्तेनः सुरापो मित्रध्रुक् ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे ॥
सर्वेषामप्यघवतां इदमेव सुनिष्कृतम् ।
भावकुभाव अनख आलस हू जपत नाम मंगल दिशि दसहू ॥

उसने मरते समय नारायण कह दिया तो पाप जल गये। वह यमलोक में क्यों जायगा? किसी भी अभिप्राय से, हास्य में, गाते समय, उपेक्षापूर्वक, गिरते फिसलते समय, अंगभंग के समय, जलते समय और किसी भी स्थिति में विना श्रद्धा के हरिशब्द मुख से निकल गया तो पाप और यमदूत उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे प्रज्वलित अग्नि के स्पर्श से ईंधन जल जाते हैं। वैर से, निर्वैर से, भय से, प्रेम से, कामना से, चाहे जैसे हो भगवान् का नाम ले लो। हे युधिष्ठिर मेरा तो निश्चित मत है कि मनुष्य भक्ति से भगवान् में उतना तन्मय नहीं होता जितना

वैर से होता है। अतः तुम उनसे वैर करो। गोपियों ने काम भाव से, कंस ने भय से और शिशुपाल आदि ने द्वेष से स्मरण किया और नाम लिया पर उन्हें भक्तों से कम फल नहीं मिला। कंस को तो योगियों से ऊंचा पद मिला (भागवत २०।४४।३९)।

तस्माद् वैरानुबन्धेन निर्वैरेण भयेन वा । स्नेहात् कामेन वा
युंज्यात् कथंचिन्नेक्षते पृथक् ॥ यथा वैरानुबन्धेन मर्त्यः
तन्मयतामियात् । न तथा भक्तियोगेन इति मे निश्चिता मतिः ॥
गोप्यः कामाद् भयात् कंसो द्वेषात् चैद्यादयो नृपाः ।
वैरेण पूतपाप्मानस्तमीयुरनुचिन्तया (७।१।२८) ॥

पौराणिक कथा है, विष्णु के दूत यमदूतों को भगाकर एक व्यभिचारिणी नारी को इसलिये वैकुण्ठधाम ले गये कि उसने एक एकादशी को भोजन नहीं किया था। कारण यह था कि उसदिन घर में बहुत कलह करने के बाद वह कुपित हो गई थी। एक हिंसक डाकू वृक्ष के नीचे सोया था। कौवे का वीट उसके ललाट पर गिरा तो संयोगवशात् उससे वैष्णवों वाला श्वेत तिलक बन गया और वह विष्णुलोक चला गया। भागवत, गीता, भीमसेनी, वैशाख, पुरुषोत्तम, काशी, अयोध्या गंगा, भस्म, तिलक, माला आदि के माहात्म्यों की ऐसी कई सौ कथायें हैं। हर मज़हब में इनकी भरमार है। अलाउद्दीन, कुतुबुद्दीन, शहाबुद्दीन, फीरोज, महमूद, मुहुम्मद, बाबर, जहांगीर, औरंगजेब, क्लाइव, डायर आदि ने जो किया वह धर्म था, आस्तिकता थी। परिणाम यह है कि आस्तिक कहे जाने वालों में हमें वास्तव आस्तिक बड़े परिश्रम से ढूंढ़ना पड़ता है। क्या वे नास्तिक इन आस्तिकों से श्रेष्ठ नहीं हैं जिनका हृदय दया और धर्म से ओतप्रोत है? हम कार्लमार्क्स को इसलिये नास्तिक कहते हैं कि वह पूजा नहीं करता था। हम महावीर, बुद्ध, कपिल, कणाद और जैमिनि आदि को इसलिये नास्तिक कहते हैं कि वे मुख से ईश्वर के नाम का जप नहीं करते थे। हम रावण को इसलिये आस्तिक कहते हैं कि वह शिव का पुजारी था, वेदों का भक्त था और वेदभाष्यकार था। क्या हमारी यह परिभाषा उचित है? सत्य यह है कि जिसको ईश्वर की सत्ता में और कर्मफलदातृता में विश्वास है वह पाप कर ही नहीं सकता। एक योगी का वचन है—मेरी वाणी कभी भी मिथ्या नहीं बोल सकती। मेरे मन और इन्द्रियों की कभी भी असत् मार्ग में

गति नहीं हो सकती, क्योंकि मैं आस्तिक हो गया हूं। हरि मेरे उत्कण्ठित एवं निर्मल हृदय में जाग गये हैं।

न भारती में ऽग मृषोपलक्ष्यते न वै क्वचिन्मे मनसो मृषा गतिः।
न मे हृषीकाणि पतन्त्यसत्पथे यतो हृदोत्कण्ठ्यवता धृतो हरिः॥

भगवान् महावीर

हमने जैनियों को वेदविरोधी नास्तिक कह कर उनसे नाता तोड़ लिया है परन्तु जैन धर्म के चौबीसों तीर्थंकर राजकुमार थे और वे सत्य के अन्वेषण में राजसी भोगों का सर्वथा परित्याग कर योग की उच्च साधना में युवावस्था में ही तत्पर हो गये थे। भागवत ५।५ में जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभ देव का उपदेश है कि यह दुर्लभ मानव शरीर दुःखमयं विषयों के उपभोग के लिये नहीं है। कर्मकाण्ड छोड़ो, अविद्या के बन्धनों से मुक्त हो और आत्मज्ञान के जिज्ञासु बनो। अन्य तीर्थंकरों ने भी अपने समय में प्रचलित यज्ञ सम्बन्धी दिग्विजय और हिंसा से खिन्न होकर अहिंसा का मार्ग पकड़ा और मांस मदिरा की आहुति ग्रहण करने वाले ईश्वर और देवों को छोड़ दिया। आचार्य मल्लिषेण ने अपनी स्याद्वादमंजरी में लिखा है कि याज्ञिक द्विज तर्कसंगत बात नहीं सुनते। इनमें बहुत दुराग्रह और विडम्बना है। ये कहते हैं कि इस जगत् का निर्माता सब जीवों में स्थित, अविनाशी, दयालु ईश्वर है। वह यज्ञ करने वालों, कराने वालों और उसमें मरने वाले जीवों को स्वर्ग भेज देता है। इनसे पूछिये कि पशुओं का गला काट कर और खाल उधेड़ कर वेदी के चारों ओर रक्त का कीचड़ फैलाने वाले यदि स्वर्ग जाते हैं तो नरकों में कौन जायेगा। इनके देव मृग आदि पशुओं का चर्म पहनते हैं और इनके योगी मृग आदि के चमड़े पर बैठकर योगाभ्यास करते हैं। ये कहते हैं कि वेदमन्त्रों के प्रभाव से वे पशु और याजक स्वर्ग जाते हैं पर वेदमन्त्रों से विवाहिता नारी विधवा क्यों हो जाती है, इसका कोई उत्तर नहीं देते। कहते हैं कि कर्मकाण्ड में कहीं त्रुटि हुई होगी।

वस्तुतः वेद अपौरुषेय नहीं, आप के बनाये हैं। निराकार ईश्वर उन वर्णात्मक वेदों का उच्चारण कैसे करेगा जो तालु जीभ दांत आदि से विहीन है। वेदों के अनेक मन्त्रों में जीवहत्या का निषेध है। उसके बाद यह कहना कि वैदिकी हिंसा हिंसा नहीं होती, अपने कथन का उल्लंघन है। ऐसी हिंसा द्वारा स्वर्ग पाने की

अभिलाषा अपने पुत्र की हत्या द्वारा राज्य पाने सदृश है। अतः ये वचन ईश्वर के नहीं, निर्दय मनुष्यों के हैं।

कर्तास्ति कश्चिज्जगतः स चैकः स सर्वगः स स्ववशश्च नित्यः।
इमाः कुहेवाकविडम्बनाः स्युस्तेषां न येषामनुशासकस्त्वम् ॥
यूपं छित्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम्।
यद्येवं गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते ॥
देवोपहाख्याजेन यज्ञव्याजेन ये ऽ थवा।
घ्नन्ति जन्तून् गतघृणास्ते घोरां यान्ति दुर्गतिम् ॥
ताल्वादिजन्मा तनुवर्णवर्गी वर्णात्मको वेद इति स्फुटं च।
पुंसश्च ताल्वादि ततः कथं स्यादपौरुषेयोयमिति प्रतीतिः ॥
न धर्महेतुर्विदितास्ति हिंसा नोत्सृष्टमत्यार्थमपोद्यते च।
स्वपुत्रघातान्नृपतित्वलिप्सा सब्रह्मचारिस्फुरितं परेषाम् ॥

जैनधर्म के जो आचार तर्कसंगत नहीं हैं वे बाद के हैं। जैसे अति अहिंसा, मुखाच्छादन, केशलुंचन, लम्बा उपवास, शरीर को सुखाना, कालमानों के वर्णन, भूगोलखगोलवर्णन, दो चन्द्र सूर्य आदि। जैन धर्म पुनर्जन्म, परलोक और कर्मफल को मानता है। उसके पंचशील वैदिक हैं।

क्या भगवान् बुद्ध नास्तिक थे

हम इस समय अनेक परम्परागत सिद्धान्तों को आंख मूंद कर मान रहे हैं और जो उनके विरुद्ध बोलते हैं उन्हें नास्तिक कहते हैं। इस समय संसार का हर धर्म ग्रन्थ अपौरुषेय (ईश्वरोक्त) है पर उनके अनुयायी आपस में लड़ कर रक्त की धारा बहा रहे हैं। हमारे ईश्वर अपने बच्चों का मांस खाते हैं, रक्त पीते हैं, मदिरा पीते हैं, अनेक नारियों को पत्नी बनाते हैं और ऐसे ईश्वर को तथा देवों को न मानने वाला नास्तिक कहा जाता है। बुद्ध भगवान् ने ईश्वर, देवों, देवियों, धर्म आदि की यह दुर्दशा देख कर दुखी होकर घर छोड़ा, भौतिक सुखों का परित्याग किया, योगाभ्यास किया और सत्य को जाना। उनके पहले अनेक योगियों ने ऐसा किया था। भगवान् ने उनके ग्रन्थ पढ़े, उनके संग में वास किया तथा उनकी अनुभूतियों का स्वागत किया। उन्होंने जो कुछ कहा अपने अनुभव के

आधार पर कहा परन्तु उनका एक भी शब्द ऐसा नहीं है जो हमारे प्राचीन महान् ग्रन्थों में न हो। संक्षिप्त उदाहरण ये हैं–

महाभारत शान्ति पर्व (अध्याय २६२) में लिखा है कि हे जाजलि! संसार में इस समय अनेक घोर आचार इसलिये प्रचलित हैं कि उनका सम्बन्ध परम्परा से है। निपुण वृद्धगण भी अनेक दोषों पर ध्यान नहीं दे रहे हैं। वस्तुतः वे भी वहां अबोध बन गये हैं। यह भीषण दोष है। वस्तुतः हेतु और परिणाम को भली भांति सोचे बिना किसी भी सिद्धान्त को और आदेश को नहीं मानना चाहिये। मनीषी केवल उसी धर्म को मानते हैं जिसकी उपपत्ति है, जिसमें शंकाओं के समाधान हैं। वे लोकाचार के अन्धानुकरण को अनुचित कहते हैं। दूरदर्शी धर्मशील यति उसी धर्म को मानते हैं जो तर्कसंगत है, सविमर्श है, अनुभूत है और हितावह है।

ईदृशानशिवान् घोरान् आचारान् इह जाजले ।
केवलाचरितत्त्वात्तु निपुणोऽपि न बुद्ध्यते ५२ ॥
कारणाद् धर्ममन्विच्छेत् न लोकचरितं चरेत् ।
सर्वदा हीदृशं धर्मं प्रशंसन्ति मनीषिणः ५४ ॥
उपपत्त्या सुसम्पन्नो निपुणेनोपलक्षितः ।
सततं यतिभिर्धर्मो धर्मशीलैश्च सेव्यते ॥ ५५ ॥

किन्तु खेद है कि इस समय हम प्रत्यक्ष कहे जाने वाले ज्योतिष शास्त्र में भी प्रत्यक्ष विरुद्ध अनेक मिथ्या सिद्धान्तों को इसलिये मान रहे हैं कि वे पोथी में लिखे हैं। ऐसी पोथी में जो सूर्य को नीचे और चन्द्रमा को ऊपर स्थित कहती है।

आत्मा, परमात्मा, ब्रह्माण्ड, परमाणु, शरीर आदि अनेक ऐसे पदार्थ हैं जिनका सूक्ष्म ज्ञान सुगम नहीं है अतः वास्तविक विद्वान् कहते रहे कि मैं इनके विषय में इतना ही जान सका हूं, मेरी अनुभूति इतनी ही है। भगवान् बुद्धने इसी कारण कई विषयों को अव्याकृत (अकथनीय) कहा है। बुद्ध ने ही नहीं, वेदों ने भी कहा है कि यह सृष्टि कब पैदा हुई और इसका प्रलय कब होगा, इसे स्पष्टतया न कोई जानता है, न बता सकता है। विद्वद्गण (देव) इसकी उत्पत्ति के बहुत दिनों बाद पैदा हुये हैं अतः वे भी इसके विशेषज्ञ नहीं हैं। इसका रहस्य तो महाकाश में स्थित सृष्टि का अध्यक्ष एवं निर्माता परमात्मा ही जानता है पर वह भी जानता है या नहीं इसे हम नहीं जानते।'

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेन अथो को वेद यत आबभूव ॥
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् सो अंग वेद यदि वा न वेद ॥

ऋग्वेद नासदीय सूक्त

फिर भी हमने सृष्टि का आरंभ दिन आदि निश्चित कर दिया है और युगों के वे लम्बे-लम्बे मान भी निश्चित कर दिये हैं जिनके विषय में वेद मौन हैं। वेद जिन्हें शुभ कहते हैं उन इन्द्र, अग्नि, शिव, यम, भग, सूर्य, विष्णु, वसु, वरुण आदि के नक्षत्र इस समय अशुभ हैं, तीक्ष्ण हैं, दारुण हैं, उग्र हैं, क्रूर हैं; सूर्य पाप ग्रह है, मंगल अमंगल है, भद्रा अभद्रा और भरणी भीषण है।

बुद्ध भगवान् की सारी उक्तियां हमें गीता उपनिषदों और वेदों में मिल जाती हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि उन्होंने बार बार ईश्वर शब्द का प्रयोग नहीं किया है, कहीं-कहीं ब्रह्म, ब्रह्मा, यम, देव, यमपुरी आदि शब्द लिखे हैं। गीता के कुछ वचन ये हैं—इनमें और बुद्ध की उक्तियों में आश्चर्यजनक साम्य है।

गीतामृत

जो मनुष्य भोग और ऐश्वर्य में आसक्त हैं, जिन्होंने अपनी बुद्धि उन दोनों को बेंच दी है, जो उन्हें पाने के लिये भले बुरे सब कर्म करते हैं वे शान्ति कभी भी नहीं पा सकते। वे व्यवसायी हैं ॥ २।४४ ॥ शान्ति वह पाता है और बुद्धि उसकी पवित्र हैं जो भोगों से विरत है, जिसकी इन्द्रियां वश में हैं २।६४। उसकी कामनायें वैसे ही पूर्ण हो जाती हैं जैसे नदियों के जल अपने आप समुद्र में चले जाते हैं। कामनाओं का दास यह प्रसाद कभी नहीं पाता २।७०। कामनायें अनन्त हैं। मनुष्य इनसे कभी तृप्त नहीं होता। ये ज्ञान को ढक कर पाप कराती हैं अतः महाभोजी महापापी काम और क्रोध का संयम रूपी अग्नि में हवन कर दो। जो संयम और परोपकार रूपी यज्ञ करता है वह परमात्मा और देवों की कृपा पाता है। इस यज्ञ में ईश्वर प्रतिष्ठित है। यही वास्तव यज्ञ, योग और ईश्वरपूजन है ४।२७ जो ऐसे यज्ञ नहीं करते उन्हें इस लोक में, परलोक में और दूसरे जन्मों में शान्ति नहीं मिलती ४।३१। द्रव्ययज्ञ से ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है ४।३३। यह त्यागी सन्तों

की सेवा से पूर्ण होता है ४।३४। इससे परम शान्ति मिलती है किन्तु इसे भोगों से विरत संयमी पुरुष ही कर सकता है ४।३९।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृत चेतसाम् । व्यवसायात्मिका
बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥ वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा
प्रतिष्ठिता । आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ यथा
नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः । स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥ महाशनो
महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् । आत्मसंयमयोगाग्नौ
जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञात् ज्ञानयज्ञः
परन्तप । नायं लोकोस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरु सत्तम ॥
तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया । उपदेक्ष्यन्ति ते
ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः । श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।

ऐसा योगी ईश्वरीय प्रकाश का दर्शन पाता है। अन्तर्मुखी वृत्ति वाला सज्जन अक्षयं सुख एवं शान्ति पाता है। बाहरी सुख अन्त में दुःख देते हैं। उनसे विरक्त भक्त ही शान्ति पाते हैं। जो जितेन्द्रिय है, ज्ञानविज्ञानवान् है, दूसरों के दुःख से दुखी और सुख से सुखी होता है वह सर्वत्र शान्ति पाता है। ईश्वर उसकी रक्षा करते हैं। वह मरने के बाद उत्तम गति पाता है। उसका पुण्य दूसरे जन्म में सहायक होता है।

स ब्रह्मयोग युक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ५।२१
ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एवते ५।२२
लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणं सर्वभूतहिते रताः ५।२५
जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ६।७
आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ६।३२
शुचीनां योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पूर्वदैहिकम् ६।४६

भौतिक विज्ञान से प्राप्त आसुरी सम्पत् अनेक बन्धनों में बांध कर अशान्ति देती है और दैवी सम्पत् शान्ति, तृप्ति, संमान आदि देती है। आसुरी सम्पत् वाले अपने उग्र कर्मों द्वारा शान्ति का क्षय और विश्व का अहित करते हैं। उनकी

अनन्त कामनायें और अनन्त आशायें युद्ध आदि पाप कराती हैं और कभी पूर्ण नहीं होतीं। वे सदा अन्याय से धन कमाते हैं, अनेकों की हत्या करते हैं और अन्त में नरकों में जाते हैं। वे दूसरे जन्मों में भी इसी प्रकार पाप करते हैं और अधम गति पाते हैं। तुम उस सुख की कामना करो जो प्रारंभ में कष्टप्रद होकर भी परिणाम में अमृत तुल्य होता है। उसकी कामना मत करो जो इन्द्रियों को विषयों से जोड़ कर प्रारंभ में सुख और अन्त में घोर कष्ट देता है, विष बन जाता है और मनुष्य को मोहित कर देता है। तुम तम और सत्त्व को तथा बन्धन और मोक्ष को पहचानो, दीर्घ कामनाओं से निवृत्त हो, अध्यात्मवादी बनो और जान लो कि निर्मोह मनुष्य ही उस अव्यय पद को पाते हैं।

दैवीसम्पद् विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता १६।८
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः।
चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः १६।११
आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थं अन्यायेनार्थसंचयान् १६।१२॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
प्रसक्ताः कामभोगेषु मूढा यान्त्यधमां गतिम् १२।१६
यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तं आत्मबुद्धिप्रसादजम् १८।३७
यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
विषयेन्द्रियसंयोगात् तत्तामसमुदाहृतम् १८।३९

अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामा गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् १५।५ जिनका ज्ञान माया के द्वारा हरा जा चुका है, जो नराधम असुर बन चुके हैं और अनेक दुष्कर्मों में रत हैं वे ईश्वर की कृपा नहीं पा सकते ७।२२। मुझे सदाचारी ज्ञानी सबसे प्रिय है, वह मेरी आत्मा है ७।१७। उसका पुनर्जन्म नहीं होता ५।१७। ऐसा मनुष्य ब्राह्मण और शूद्र को एक दृष्टि से देखता है। उसका भेदभाव समाप्त हो जाता है ५।१८। ज्ञान प्राप्त होने पर सत्त्व की वृद्धि होती है और देह का हर द्वार प्रकाशित हो जाता है १४।११। रज का उदय होने पर लोभ, अशान्ति और भोगवासना की वृद्धि होती है १४।१२। तमोगुण के बढ़ने पर प्रमाद, मोह, अज्ञान आदि बढ़ जाते हैं। रज और तम की वृद्धि में मरा मनुष्य दूसरे जन्म में

बाल्यावस्था से ही दुराचारी हो जाता है और सत्त्व की वृद्धि में मृत मानव जन्म से ही निर्मल बुद्धि युत रहता है १४।१४। सदाचार का फल उत्तम और दुराचार का घोर कष्टप्रद होता है १४।१६। सुमति और संयमी मनुष्य शान्ति पाता है और पापी विनष्ट हो जाता है ४।३९। किसी को मत सतावो, समदर्शी बनो ६।२९। तुम निराश मत हो। अपना उद्धार स्वयं करो। तुम्हीं अपने सबसे बड़े मित्र और शत्रु हो ६।५। जितेन्द्रिय मनुष्य अपना बंधु है और ईश्वर उसके योगक्षेम की सारी व्यवस्था स्वयं करते हैं ९।२२ मैं हर जाति के सदाचारी को शुभ गति देता हूं, स्त्रियों को भी ९।३२। ईश्वर तुम्हारे भीतर बैठा है, उसे बाहर मत ढूंढो, अन्तर्मुखी बनो १३।२२। जीव मेरा अंश है पर अपने को भूल गया है १५।७। श्रद्धायें कई प्रकार की होती हैं। तुम अन्ध श्रद्धावान् मत बनो १७।८। शरीर को त्रास मत दो, असुर मत बनो १७।६। तामस राजस भोजन कर के बुद्धि को दूषित मत करो। करने पर कष्ट, शोक और रोग पावोगे १७।९। कर्मों का परित्याग कर सन्यास का ढोंग मत रचो, दोष छोड़ो, वस्त्र नहीं, मन रंगो १८।३। ईश्वर की पूजा कुछ पदार्थों से नहीं, अपने सत्कर्मों से करो, विश्वनाथ को भिखारी और अपने को दाता मत समझो १८।४६।

हे अर्जुन! तुम अधर्म में रत मनुष्यों को बार-बार स्वजन मत कहो। स्वजन वह है जो धर्मपरायण है २।११। तुम जान लो कि आत्मा अमर है २।२८। धर्म क्या है, इसे सोचो २।३१, नहीं तो नरकगामी होगे २।३३। वेदवादी बड़ी पुष्पित मनोहारिणी भाषा बोलते हैं, अपण्डित हैं, कामनाओं के दास हैं, स्वर्ग का सुख ही उनके लिये सब कुछ है। वे भोग और ऐश्वर्य में आसक्त हैं, यज्ञों में नाना प्रकार की क्रियायें करते हैं, उनका चित्त भोगों द्वारा हरा जा चुका है, उनकी बुद्धि व्यवसायिनी है, उसका समाधि से कोई नाता नहीं है २।४४। कर्मकाण्ड कराने वाले वेद सत्त्व, रज, तम, तीनों गुणों से भरे हैं पर तुम्हें तो केवल सत्त्व में रहना है २।४५। बड़ा जलाशय पा लेने पर छोटा अनावश्यक है, ज्ञान प्राप्ति के बाद वेद निरर्थक हैं २।४६। सोमपायी एवं कामकामी याज्ञिक कभी मुक्त नहीं होते ९।२१। कर्मकुशलता ही योग है २।५०। वैदिक यज्ञों से विचलित होकर तुम्हारी बुद्धि जब समाधि में निश्चल होगी तभी योगी बनोगे २।५३ जिसकी इन्द्रियां वश में हैं उसी की बुद्धि पवित्र है २।६१। काम और क्रोध तुम्हारे वैरी हैं, पापी काम का पेट बहुत बड़ा है ३।३७। यह ज्ञान को ढक देता है ३।३९। ज्ञानयज्ञ इन द्रव्ययज्ञों से

श्रेष्ठ है ४।३३ और जितेन्द्रिय को ही ज्ञान एवं शान्ति की प्राप्ति होती है ४।३९। जिसकी आत्मा बाह्य स्पर्शों में आसक्त नहीं है वह आत्मवेदी अक्षय सुख पाता है ५।२१, स्पर्शजन्य सुख तो दुःख के उत्पादक हैं, नश्वर हैं, विवेकी उनमें नहीं रमता ५।२२। जो सुख का अनुभव भीतर करता है, काम के वेग से मुक्त है, वह योगी ही सुखी है ५।२४। ईश्वर की कृपा और शान्ति वे पाते हैं जिनके पाप क्षीण हो गये हैं। जो अपने पराये की भावना से मुक्त होकर सबके हित में लगे हैं ५।२५। जो यह जानता है कि ईश्वर सबके मित्र हैं, केवल मेरे ही नहीं, वही शान्ति पाता है ५।२९। अन्नजल का त्याग व्रत और योग नहीं है ६।१६। अपनी ही भांति दूसरे के सुख को सुख और दुःख को दुख समझो और जान लो कि ईश्वर सर्वत्र बैठे हैं ६।३२। जो दूसरों का कल्याण करता है उसकी दुर्गति नहीं होती ६।४०। उसका पुनर्जन्म उत्तम होता है ६।४३। १४।१६। मनुष्य जिन भावों का स्मरण करते हुये शरीर छोड़ता है उन्हें अगले जन्म में जन्म से ही पाता है ८।६। तुम उत्तरायण में मरो। ज्ञान के प्रकाश की प्राप्ति ही उत्तरायण है और अज्ञान रूपी तम ही दक्षिणायान है ८।२४, १४।१४। मुझे लोग पुष्प, फल, जल आदि चढ़ाते हैं पर मैं उन्हें तभी ग्रहण करता हूं जब चढ़ाने वाला जितेन्द्रिय और सदाचारी होता है ९।२६। मैं जिस पर कृपा करता हूं उसे बहुत धन नहीं देता। उस पर कृपा कर उसके हृदय में स्थित अज्ञान और दुराचार रूपी तम को ज्ञान दीप से नष्ट कर देता हूं, उसे सदाचारी बना देता हूं १०।११। मैं शस्त्रधारियों में राम, रुद्रों में शंकर विद्याओं में अध्यात्म और नारियों में कीर्ति हूं १०।२३। मैं नेत्रों से नहीं, दिव्य दृष्टि से देखा जाता हूं।

मेरा भक्त और प्रिय वह है जो दयालु, निरहंकार, निर्मम, सन्तोषी, निष्पाप और सबका प्रिय है १२।१४। जिससे समाज ऊब नहीं जाता, जिसकी निन्दा नहीं करता १२।१५। जो पाखण्डी मनुष्य कुछ कामनाओं के वशीभूत होकर घोर तप करते हैं, शरीर सुखाते हैं, शरीर में स्थित भूतों को और हृदय में स्थित ईश्वर को कष्ट देते हैं उन्हें निश्चित रूप से असुर जानो १७।६। सर्वदा सात्त्विक और पवित्र भोजन करो। नहीं तो रोगी, दुखी और तामस हो जावोगे १७।१०। बड़ों की सेवा, शौच, नम्रता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा शारीरिक तप हैं १७।१४। सत्य, प्रिय, हित भाषण और स्वाध्याय वाणी का तप है १७।१५। मन को प्रसन्न और विशुद्ध रखना, मौन, जितेन्द्रियता और भाव शुद्धि मानस तप है १७।१६। नियत कर्मों को

नहीं, दोषों को छोड़ो, यही सन्यास है १८।७। ईश्वर सबके हृदय में स्थित हैं १८।६१। भगवान् ने चार वर्णों की व्यवस्था जन्म के नहीं, गुण और कर्म के आधार पर की है। स्वाभाविक गुणों के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के कर्म निश्चित किये गये हैं १८।४१।

भगवान बुद्ध के सदुपदेश

त्रिपिटक में प्रायः इनके उपदेशों का संग्रह है। ये तीन पिटक (पेटारे) हैं सुत्तपिटक, विनयपिटक और अभिधम्म पिटक। सुत्तपिटक में पांच निकाय हैं। खुद्दक निकाय में १५ ग्रन्थ हैं। धम्मपद उसी में है। शेष दोनों पिटकों में भी कई ग्रन्थ हैं। विश्व की लगभग सभी भाषाओं में धम्मपद का अनुवाद हो चुका है। यहां त्रिपिटक और धम्मपद के कुछ उपदेश लिखे जा रहे हैं। महाकवि अश्वघोष का बुद्धचरित एक उच्चकोटि का काव्य है। उसमें लिखा है कि समाज की दुःस्थिति देख कर बुद्ध को युवावस्था में ही सत्य को जानने की उत्कट इच्छा जागृत हो गई। वे गृह छोड़ने लगे तो लोगों ने समझाया कि पुनर्जन्म, परलोक, ईश्वर, योगाभ्यास का फल आदि विषय विवादास्पद हैं। कुछ लोग इन्हें सत्य और कुछ काल्पनिक कहते हैं अतः आप प्राप्त लक्ष्मी और सुख का त्याग न करें। बुद्ध भगवान ने कहा कि मेरी बुद्धि शुभ मार्ग में स्थित है, दूसरों की विवादास्पद बातों में आस्था नहीं है, मैं तप द्वारा सत्य को प्राप्त करने के बाद ही लौटूंगा, बीच में नहीं।

पुनर्भवोऽस्तीति च केचिदाहुः सर्गं वदन्तीश्वरतश्च केचित् ।
प्रयत्नवन्तोपि हि विक्रमेण मुमुक्षवः खेदमवाप्नुवन्ति ॥
एवं यदा संशयितोऽयमर्थो भोग्या ततश्चेयमुपस्थिता श्रीः ।
न मे क्षमं संशयजं हि दर्शनं न चाकृतार्थः प्रविशेयमालयम् ॥
अदृष्टतत्त्वस्य सतोपि किन्तु मे शुभाशुभे संशयिते शुभे मतिः ।
अव्रेत्य तत्त्वं तपसा शमेन च स्वयं ग्रहीष्यामि यदत्र निश्चितम् ॥

त्रिपिटक के कुछ उपदेश

उन्होंने तप द्वारा सत्य को पाया और आनन्द से कहा कि किसी सिद्धान्त को इसलिये मत मानो कि वह परम्परागत है या किसी ग्रन्थ में लिखा है। उसे तर्क और अनुभव की कसौटी पर स्वयं परखो। गुप्तज्ञान का उद्घोष करने वालों में अनेक तिरस्कृत हो चुके हैं अतः वे परीक्षणीय हैं। सत्य और ज्ञान चमकते हैं, गुप्त नहीं रहते। मैंने गुप्त कहे विना सत्य का प्रचार किया है। मेरे पास छिपा कर रखने योग्य कुछ भी नहीं है। विशुद्ध धर्म के सिद्धान्त अनुभूत और प्रत्यक्ष होते हैं, सुबोध और स्पष्ट होते हैं उनमें पाण्डित्य की गुत्थियां नहीं होतीं। वे परलोक में नहीं, इसी लोक में फल देते हैं। सत्य धर्म का कोई सम्प्रदाय नहीं होता, उसमें मतभेद नहीं होता। जो युक्तियुत और तर्कसंगत है वही धर्म है और जो इसे आचरण में लाता है, धारण करता है वही धार्मिक है, केवल वक्ता नहीं। यह धर्म ईश्वर है और इसका पालन ही ईश्वरपूजा है, केवल बाह्योपचार नहीं।

हे आनन्द! हमें अपने मन के दोषों पर विजय पानी है, उन्हें समाप्त करना है। इससे आन्तरिक शान्ति मिलेगी। यही प्राप्तव्य है, यही पारितोषिक है और यही यज्ञ है। सावधान हो कर इच्छाओं को निर्विकार बनावो, मन को नियंत्रित करो और दृष्टि को भीतर ले जावो तो वह दैवी शक्ति प्राप्त होगी ज़ो छिपी है, ढकी है। देवों का भरोसा छोड़ो और स्वयं देव बनो तो इसी लोक में, इसी जीवन में तुम पर दैवीप्रभा छा जायेगी और सुषुप्त शक्तियां जाग उठेंगी। हमारे भीतर उनका एक भण्डार है। ध्यान और ज्ञान द्वारा मन की चंचलता के रुक जाने पर अपना वह वास्तव रूप ज्ञात होता है जिससे हम अपरिचित हैं। पूर्व जन्मों का, पूर्व जन्म के कर्मों का और साधक बाधक विषयों का बोध होने लगता है।

हे आनन्द! मैं सत्कर्म का पक्षपाती हूं। वही हमारी सम्पत्ति है, वही उत्तराधिकार है, वही आश्रय है और वही जाति है। हम अपना शुभाशुभ स्वयं बनाते हैं। हमारे पिछले कर्मों ने ही हमारा आज का जीवन बनाया है। पुनर्जन्म और कर्मों के फल स्वयं सिद्ध हैं। उन्हें सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। कर्मफल से कभी भी छुटकारा नहीं होता। सदाचार एक विशाल ज्योति है। वह सोई हुई दैवी शक्ति को जगा देती है। उसके प्रति निष्ठा ही धर्मनिष्ठा है, ईश्वरनिष्ठा है और दुर्वासनाओं एवं दुराचार से मुक्ति ही वास्तव मोक्ष है। अहिंसा सदाचार का एक विशिष्ट अंग है और सबसे स्नेह मुख्य सदाचार है। सुख से स्वयं

जीना और दूसरों को जीने देना, उनका शोषण न करना ही धर्म है पर वास्तव सुख शारीरिक नहीं, मानसिक होता है और वह निर्मल एवं उदार मन वालों को ही मिलता है। सुख औरं शान्ति में अन्तर है। निर्मल मन वाला शान्ति पाता है और देता है। उसके पास जाने से उसकी शान्ति तरंगों का प्रभाव पड़ता है पर जिसका मन सविकार है, कामी है, लोभी है, हिंसक है, अशान्त है वह अपने पास में बैठे लोगों की शान्ति हर लेता है। मनुष्य के मन की तरंगे पूरे वायुमण्डल को प्रभावित कर देती हैं। हमें धर्म और शान्ति की प्राप्ति के लिये मन, वचन और शरीर तीनों के विकारों से मुक्त होना है। इसके लिये सावधानी आवश्यक है। वही सन्ध्या है, पूजा है, यज्ञ है, प्रार्थना है, धर्मनिष्ठा है और ब्रह्मनिष्ठा है।

एक मनुष्य का पाप पूरे समाज को कष्ट देता है और पुण्य शान्ति देता है किन्तु दूसरों का अहित करने वाला अपना भी अहित करता है और दूसरों का हितैषी निश्चित रूप से अपना हित करता है। धर्म वह है जो सब प्राणियों को प्रेम द्वारा एक दूसरे का मित्र बना कर निकट लाता है, धरती को स्वर्ग बनाता है। सात्त्विकता का, धर्म का और प्रेम का उदय ही स्वर्ग है, इससे भिन्न स्थिति ही नरक है और ये दोनों इसी जन्म में इसी लोक में मिल जाते हैं।

हे आनन्द! संसार में कुछ पदार्थ अकथनीय (अव्याकृत) हैं। हमें उनके निर्णय के प्रपंच में फंस कर समय और शक्तिका दुरुपयोग नहीं करना है। वे हों, न हों, हमें हर स्थिति में अपने कर्तव्य का पालन करना है। इससे सबका कष्ट दूर होगा और शान्ति मिलेगी। तुम्हारे शरीर में विषाक्त बाण लगा है और निकालने वाला वैद्य सामने खड़ा है तो बाण निकलवा लो। उसके गोत्र, वर्ण, नाम आदि का पता मत लगावो, नहीं तो मर जावोगे।

यहां दार्शनिकों के और दूसरो के परस्पर विरोधी अनेक मत प्रचलित हैं। ये मतों की बेड़ियां हैं, घोर वन हैं, प्रदर्शन हैं। सत्य में मतभेद नहीं होता अतः ये असत्य हैं। जिसने आर्य धर्म नहीं जाना और जो इनमें फंस गया वह दुःखों से कभी मुक्त नहीं हो सकता। मैं तुम्हें चार आर्य सत्य बता रहा हूं। (१) संसार मे दुःख है। मनुष्यों ने शोक में इतना आंसू और युद्ध में इतना रक्त बहाया है जितना समुद्रों में जल है। (२) मनुष्य तुच्छ स्वार्थों और दुष्कामनाओं का दास बन कर इन दुःखों को बढ़ाता है। (३) इनका निरोध करने पर दुःख समाप्त हो जाते हैं। (४) निरोध के सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि आदि आठ उपाय हैं।

हिंसा और चोरी नहीं करना, झूठ और कठोर नहीं बोलना, लोभ और क्रोध को दबाना, मांस मदिरा आदि के व्यापार से और कपटी विद्याओं से धन नहीं कमाना तथा सावधान होना सम्यक् स्मृति है। इससे दिव्य कर्ण, दिव्य दृष्टि और सिद्धियों की प्राप्ति होती है। मनुष्य दूसरे जन्मों और दूसरों के मनोभावों को जान लेता है। चित्त की एकाग्रता ही सम्यक् समाधि है। इसमें चित्त को निर्विकार बनाना पड़ता है। आठो उपायों का सारांश है सदाचार, सत्कर्म।

(कुछ लोग बुद्ध के दुःखवाद को निराशा वाद कहते हैं पर सत्य यह है कि जो धर्म सदाचार और अपने पुरुषार्थ से दुःख की निवृत्ति का उपाय बताता है वह निराशावादी नहीं है। निराशावादी वह है जो कर्म छोड़ कर भाग्य और देवों की शरण में जाने की संमति देता है)।

भगवान् बुद्ध और धम्मपद

हमारे यहां श्रीमद् भगवद् गीता का जो महत्त्व है, बौद्धधर्म में वही धम्मपद का है। बुद्ध भगवान् किस विचार के हैं, इसे जानने के लिये यहां धम्मपद के कुछ वचन उद्घृत किये जा रहे हैं।

न आकाश में, न समुद्र के मध्य में, न पर्वतों की गुफाओं में कोई ऐसा स्थान है जहां छिप कर मनुष्य अपने पापकर्मों के फल से अपने को बचा ले ९।१२॥ पापकारी इस लोक में और मरने के बाद परलोक में अपने पापों को सोच कर पछताता है और पीड़ित होता है १।१५। पुण्यात्मा अपने शुभ कर्मों का स्मरण कर इस लोक में और परलोक में प्रमुदित होता है। १।१६॥ दुष्टबुद्धि, मूढ़ मनुष्य कटु फल देने वाले पापकर्मों को कर के स्वयं ही अपना शत्रु बन जाता है ५।७ वह पाप को तब तक मधु के समान मीठा मानता है तब तक उसका परिपाक नहीं होता। हो जाने पर रोता है ५।१० पाप ताजे दूध की भांति तुरत फल नहीं देता। वह बाद में पापी का पीछा करता है और भस्म से ढकी अग्नि की भांति प्रज्वलित होकर उसे भस्म कर देता है ५।१२। पाप हो जाय तो पुनःपुनः न करे क्योंकि पाप का संचय निश्चित रूप से घोर कष्ट देता है ९।२। मनुष्य पुण्यकर्म बार-बार करे, उसका व्यसनी हो जाय क्योंकि पुण्य की वृद्धि दोनों लोकों में सुख देती है ९।३। पापी तभी तक सुखी है जब तक उसके पाप का परिपाक नहीं हुआ है ९।४। पुण्यात्मा भी तब तक कष्ट पाता है जब तक उसके पुण्य का परिपाक नहीं होता

९।५। पाप का फल मेरे पास नहीं आयेगा, यह कभी भी मत सोचो। पानी की बूंद से घड़ा धीरे-धीरे भरता है ९।६। पुण्य का फल नहीं मिल रहा है तो हताश मत हो। पानी की बूंदों से घड़ा धीरे-धीरे भरता है ९।७। दूषित मन वाले के पीछे दुःख वैसे ही लगे रहते हैं जैसे रथ के अश्व के पीछे पहिये १।१। निर्मल मन वाले के पीछे सुख छाया की भांति चलते रहते हैं १।२। विद्वत्ता की अपेक्षा आचरण श्रेष्ठ है १।१९। उद्योगी, दूरदर्शी और धर्मात्मा का यश धीरे-धीरे बढ़ता रहता है २।४। सदाचार का गन्ध चन्दन, अगर और जूही के गन्ध से उत्तम है ४।१२। पापियों के पास बैठोगे तो उससे प्रभावित होगे, तुम्हारी हानि होगी ६।३॥

प्राणियों के पापों और पुण्यों के शुभाशुभ फल निश्चित हैं। वे छाया की भांति साथ लगे रहते हैं। जैसे बछड़ा सहस्रों गायों के बीच अपनी माता को पहचान लेता है उसी प्रकार कर्म कर्ता से चिपके रहते हैं। हमें तटस्थ होकर शान्त चित्त से सोचना है कि यह व्यवस्था कौन करता है। क्या जड़ परमाणु ऐसी विचित्र सृष्टि बना सकते हैं। तारों में, ग्रहों में, पृथ्वी में और हमारे शरीरों में जो आश्चर्यमयी सुव्यवस्था है, क्या उसे जड़ परमाणु कर सकते हैं। क्या यह व्यवस्था जड़ प्रकृति द्वारा हो सकती है। क्या परमाणु अदृश्य कर्मफलों को देख सकते हैं? क्या अचेतन चेंतन हो सकता है? परमाणुओं को कौन जोड़ता है? उन्हें गति कौन देता है? वृक्ष, पशु, मानव आदि के चेतन में अन्तर क्यों है? क्या बुद्ध भगवान् ने ये प्रश्न नहीं सुने थे? उन्होने ब्रह्म शब्द का बार-बार प्रयोग क्यों किया है? सत्य यह है कि वे जानते थे कि ईश्वर है पर उसके स्वरुप का बोध कठिन है, उसकी व्याख्या असंभव है और सत् कर्म ही उसकी कृपाप्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है, बाह्योपचार और प्रदर्शन नहीं। वे धम्मपद में आगे कहते हैं–

वैर की शान्ति अवैर से ही होती है, वैर से नहीं १।१५। काषाय वस्त्र का अधिकारी वह है जिसने काषायों (दोषों) को छोड़ दिया है १।१०। असार को सार और सार को असार समझने वाले रूढ़िवादी सर्वदा निष्फल रहते हैं १।११। बढ़ई लकड़ी को सुन्दर बनाते हैं और पण्डित अपने मन को, सबके मनों को, ६/५। सहस्रों को जीतने की अपेक्षा अपने मन को जीतना श्रेयस्कर है ८।४। सहस्रों वर्षों तक हवन करते रहने की अपेक्षा एक महात्मा का पूजन उत्तम है ८।७। सज्जनों और योगियों का पूजन महान् यज्ञ है ८।९। इससे शक्ति, विद्या, यश, आयु और सुख की वृद्धि होती है ८।१०। भले का अल्पायु बुरे का दीर्घायु से श्रेष्ठ है ८।१६। जीवन

सबको प्रिय है अतः किसी की हत्या मत करो १०।२। इसका फल इस जीवन में और दूसरे जन्म में भी पावोगे १०।३, बहुत कष्ट पावोगे १०।१२। नग्नत्व, जटा, उपवास, धूलिलेपन आदि से कोई लाभ नहीं है १०।१३। संसार में आग लगी है। उसे बुझावो, हंसो नहीं, आनन्द मत मनावो, अज्ञानान्धकार के नाश के लिये ज्ञानदीपक ढूंढो, ११।१। मानव देह भाग्य से मिलता है, धन कमाने में ही इसका अपव्यय मत कर दो १४।४। धन का अन्त नहीं है। इसकी वर्षा भी तुम्हें तृप्त नहीं कर पायेगी १४।९। पर्वत, वृक्ष, चौरा आदि की पूजा से कामना पूर्ण नहीं होगी १४।११। सत्य की, धर्म की और सन्तों की पूजा करो, उनकी शरण में जावो १४।१४। नाम और रूप के इच्छुकों ने संसार का बहुत अहित किया है। सुख चाहते हो तो इनमें आसक्त मत हो १७।१। असत्य को सत्य से और कोप को अकोप से जीतो तो देवों के पास पहुंच जावोगे १७।४ भले और ज्ञानी जिसकी प्रशंसा करते हैं वह देवों और ब्रह्मा से प्रशंसित होता है १७।१०। तुम्हारी आयु समाप्त हो रही है, यम के पास जाना है, अतः मार्ग के लिये कुछ संचित कर लो १८।४। हिंसा मत करो, झूठ मत बोलो, चोरी मत करो, कामी मत बनो, किसी भी नशा का सेवन मत करो, अपनी जड़ अपने से मत खोदो १८।१४। हिंसक मनुष्य आर्य नहीं है १९।१५। भोगों के अभिलाषी मूर्ख स्वयं अपनी हत्या कर रहे हैं २४।२२। हिंसा छोड़ो, शान्ति पावोगे। हिंसायें कई प्रकार की हैं २६।८। थोड़े सुख के त्याग से अधिक सुख मिले तो थोड़ा सुख छोड़ दो २१।१। मनुष्य बाल पकने से वृद्ध नहीं होता। जिसमें दया, धर्म, सत्य आदि संयम हैं वही वृद्ध है १९।६। अपना उद्धार स्वयं करो तो देव तुम्हारे सहायक होंगे २५।२१।

ब्राह्मण वह है जो मन, वचन और शरीर से पाप नहीं करता २६।९, भोगों में लिप्त नहीं होता। न हिंसा करता है, न कराता है। जो ज्ञानी है, सुशील है और पूर्वजन्म, सुगति, दुर्गति, स्वर्ग आदि का रहस्य जानता है २६।४१, जो शुचि, धर्मात्मा और सत्यवादी है २६।११ जो निर्मल है, सत्य का ज्ञाता है और ध्यानी है २६।४। जो ऐसे ब्राह्मण को कष्ट देता है उसे धिक्कार है २६।७। हे ब्राह्मण! तुम भोग रूपी लोहेका गोला मत निगलो, ध्यान में लग जावो। गोले से जलते हुये हाय हाय मत करो १५।१२। जो परलोक और कर्मफल पर विश्वास नहीं करता उसके लिये कोई भी पाप अकरणीय नहीं है १३।१०।

धम्मपद के १३।४, १३।१०, १५।४ १७।१० और १८।१ श्लोकों में मृत्यु-राज, परलोक, देव, आभास्वर देव, ब्रह्मा, यमपुरुष आदि शब्द आये हैं अतः बुद्धभगवान् को नास्तिक और अनीश्वरवादी कहना अनुचित है।

उन्हें यह बात रुचिकर नहीं थी कि कल्याणप्रद स्वकर्तव्य की उपेक्षा कर उन अनेक विषयों का चिन्तन किया जाय जिनका यथार्थ बोध तर्क, बुद्धि और अनुमान से अशक्त है। संसार कब बना, कैसे बना, वह शाश्वत है या नश्वर, सीमित है या अनन्त, ईश्वर का क्या रूप है, क्या स्वभाव है, इन प्रश्नों का उत्तर वे मौन से देते थे। इन्हें अव्याकृत (अकथनीय) कहते थे। उनका यह मौन नई नहीं, पुरानी प्रथा थी। उन्होंने अपने समय के अनेक तत्वज्ञानी योगियों का सत्संग किया था, उनके उपदेशों का मनन किया था और प्राचीन अध्यात्मविद्या का निष्ठा के साथ अध्ययन किया था। उनका ज्ञान केवल पुस्तकीय या श्रुत नहीं प्रयोगात्मक था।

महाभारत की एक कथा है-बाष्कलि ने आचार्य बाह्व से ब्रह्म के विषय में चार पांच बार कुछ प्रश्न किये पर आचार्य अन्त तक चुप रहे और उन्होंने इस मौन को ही उत्तर कहा। भगवान् शंकर की स्तुति का पुष्पदन्तगंधर्वकृत महिम्नस्तोत्र नामक एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। उसके अन्त में योगी और महाकवि पुष्पदन्त ने लिखा है कि हे महेश्वर! मैं ईश्वरतत्त्व से सर्वथा अनभिज्ञ हूं और आपके स्वरूप के विषय में कुछ नहीं जानता। हे महादेव! आप जैसे भी हों, मेरा आप को बार बार प्रणाम है।

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर ।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः ॥

भगवान् बुद्ध उपनिषदों से और योगियों की ऐसी उक्तियों से अपरिचित रहे होंगे, यह असंभव है। उन्होंने बता दिया कि दुःख का कारण हमारी अविद्या है, तृष्णा है, विषय लोलुपता है और उसकी निवृत्ति का अष्टांगिक मार्ग है सम्यक् दृष्टि, संकल्प, वाणी, कर्मान्त, आजीविका और समाधि आदि। तो क्या ये आदेश नास्तिक के हैं?

योगी पतंजलि और योगी बुद्ध

हम पतंजलि को ईश्वरवादी और बुद्धदेव को अनीश्वरवादी मानते हैं पर दोनों की क्रियाओं में अद्भुत साम्य है। बुद्ध के सर्वज्ञ, धर्मराज, समन्तभद्र,

भगवान्, मारजित् (कामेश्वर), विनायक, श्रीघन आदि नाम विचारणीय हैं। उनका एक नाम है षडभिज्ञ। जिसके पास दिव्य नेत्र, दिव्य कर्ण, परचित्तज्ञान, पूर्वजन्मस्मृति, आत्मज्ञान, आकाशगमनशक्ति और कायसिद्धि है उसको षडभिज्ञ कहते हैं। दान, शील, क्षमा, ध्यान, प्रजा आदि बलों से युत होने के कारण वे दशबल कहे जाते हैं। उनका एक मुख्य नाम है अद्वयवादी और हमारे पुराण उन्हें भगवान् का नवम अवतार मानते हैं।

(१) योगिराज पतंजलि ने लिखा है (१।२७) कि प्रणव (ओंकार) ईश्वर का वाचक है और इसके जप से विघ्नों का नाश तथा आत्मा का ज्ञान होता है (१।२९)। बौद्धधर्म में जप का मुख मन्त्र है 'ओं मणिपद्मे हुम्'। बौद्ध साधक इसका जप करते हैं और अनेक वर्षों तक ओंकार के विधिवत् उच्चारण का अभ्यास करते हैं। मणिपद्मे का आधुनिक अर्थ कुछ भी हो पर विष्णु भगवान् कौस्तुभ मणि और पद्म धारण करते हैं। बौद्धों के हर मन्त्र में हमारी ही भांति ओम लगा है। (२) पतंजलि के क्रियायोग और बुद्ध के सम्यक् कर्मान्त में कोई अन्तर नहीं है। (३) बौद्धदर्शन का मुख्य सिद्धान्त प्रतीत्यसमुत्पाद है। उसका आरंभ अविद्या से होता है। उसमें बताया गया है कि अविद्या से क्रमशः संस्कार, विज्ञान, तृष्णा, दुःख आदि उत्पन्न होते हैं। पतंजलि ने अपने योगशास्त्र (२।३) में लिखा है कि अविद्या, राग, द्वेष आदि पांच क्लेश हैं। २।४ में लिखा है कि अविद्या से ही सब पैदा होते हैं। २।२४। में लिखा है कि अविद्या ही सब क्लेशों का हेतु है। (४) बुद्ध भगवान् कहते हैं कि सुख, शुचिता, नित्यता आदि के विषय में हमें भ्रम है। खाज को खुजलाने में हमें आनन्द आता है और उस समय उससे भिन्न आनन्द भूल जाता है। महर्षि पतंजलि ने (२, ५ में) लिखा है कि अनित्य, अशुचि, दुःख आदि को नित्य, शुचि और सुख आदि समझ लेना ही अविद्या है। (५) बुद्ध भगवान् ने ध्यान और समाधि को ही दुःखनाश का सर्वश्रेष्ठ उपाय बताया है। पतंजलि ने बार बार कहा है कि ध्यान से और समाधि से सारे क्लेशों और दुर्वृत्तियों की समाप्ति हो जाती है (२।२, २।११)। (६) बुद्धदेव ने पंतजलि के पांच यमों को ही पंचशील कहा है। अस्तेय और अपरिग्रह में थोड़ा ही अन्तर है, अतः उन्होंने उन दोनों को एक मान लिया है और सुरा आदि नशीले पदार्थों का निषेध कर पांच की संख्या पूरी की है। यह शिक्षा उस समय अति आवश्यक थी क्योंकि इनका प्रयोग देवों की पूजा में भी होता था। (७) बुद्ध के त्रिरत्नों में

प्रबुद्ध गुरु की, धर्म की और साधु संघ की शरण में जाने का आदेश है। गौतम, कपिल, पतंजलि आदि की भी यही शिक्षा है। योग में गुरुदीक्षा अनिवार्य है और भक्तिमार्ग में गुरु ईश्वर तुल्य है। (८) बुद्ध और पतंजलि, दोनों के मत में ध्यान की कई विधियां हैं। उनमें से चाहे जो चुन लो (१।३९)। ऐसे अनेक प्रमाण हैं और उनका सारांश यह है कि पतंजलि और बुद्ध में कहीं विरोध नहीं है। चित्तशुद्धि और सत्कर्म ही दोनों का एक लक्ष्य है।

ईश्वरवादी महर्षि पतंजलि का कथन है कि चित्त की दूषित वृत्तियों का निरोध योग है। निरोध से साधक अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है, अपने को जान लेता है। यहां उन्होंने इस निरोध के कई उपाय बताये हैं। उनमें से एक है ईश्वर का ध्यान। किन्तु यहां सूत्र में वा शब्द लगा है (ईश्वर प्रणिधानाद्वा १।२३) तथा आगे लिखा है कि ऊपर बताये हुये साधनों में जो जिसको रुचिकर हो वह उसी का ध्यान या प्रयोग करे (यथाभिमतध्यानाद् वा १।३९)। सारांश यह है कि ईश्वर के ध्यान के विना अन्य उपायों से भी चित्त की शुद्धि हो सकती है। पतंजलि ने साधन पाद में पांच यमों और पांच नियमों के नाम गिनाते समय ईश्वर के ध्यान को सबसे अन्त में रखा है। इसका भाव यह है कि अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, शौच, सन्तोष, स्वाध्याय आदि का महत्त्व ईश्वर के ध्यान से कम नहीं है तथा इन सबों से विहीन ईश्वरध्यान का कोई महत्त्व नहीं है। कदाचित् कणाद, कपिल और जैमिनि ने अपने ग्रन्थों में इसी कारण सत्कर्म को ईश्वरपूजन से अधिक महत्त्व दिया है। वह प्रथम सोपान है और ईश्वरध्यान अन्तिम किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि ये योगी अनीश्वरवादी हैं।

जैन और बौद्धधर्म आरंभ में सदाचार के सरल उपदेश थे पर बाद में सूक्ष्म दर्शन बन गये। इनके पूर्व वेदों और उपनिषदों ने उन यज्ञों का विरोध किया था जो धनापहरण, हिंसा और कर्मकाण्ड से दूषित हो गये थे तथा समाज में कुछ क्रुरीतियां आ गई थीं। बुद्ध ने सरल भाषा में उनकी समीक्षा की पर बाद में बौद्धधर्म में सौत्रान्तिक, वैभाषिक, माध्यमिक और योगाचारी चार सम्प्रदाय बन गये और सरल सिद्धान्तों के बाल की खाल निकाली जाने लगी। तथागत ने अव्याकृत कहकर जिन विषयों की गहराई में जाने का निषेध किया था, बौद्धाचार्य उन्हीं में उलझ गये। विद्वत्ता प्रधान और साधना गौण हो.गई तथा बौद्धधर्म में तन्त्र, वज्रयान और वाममार्ग आ गये।

कपिल, कणाद और जैमिनि

कहा जाता है कि महर्षि कपिल, कणाद और जैमिनि ने अपने सांख्य, वैशेषिक और मीमांसा शास्त्रों में ईश्वर की चर्चा नहीं की है। वे नास्तिक हैं परन्तु पुराणों में बुद्ध की ही भांति कपिल भी ईश्वर के एक अवतार माने गये हैं और गीता (१०।२६) ने कपिल को सबसे बड़ा सिद्ध पुरुष कहा है। श्रीगौडपादाचार्य ने लिखा है कि कपिल ने २५ तत्त्वों का जो ज्ञान दिया है वह मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ मार्ग है।

पञ्चविंशतितत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रम वसेत् ।

जटी मुण्डी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशयः ॥

श्वेताश्वतर उपनिषत् (६।१६) का कथन है कि चेतनों का चेतन तथा सबकी कामनाओं को पूर्ण करने वाला, सृष्टि का कारण ईश्वर सांख्य और योग द्वारा जाना जाता है। गीता ३।३ में भी यही वर्णन है। योगेश्वर कृष्ण का कथन है कि सांख्य और योग एक हैं। उन्हें पृथक् समझने वाले अज्ञानी हैं।

तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।

एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ५।५

सांख्यदर्शन का एक सूत्र है-ईश्वरासिद्धेः १।९२। इसी के आधार पर कुछ लोग कपिल को अनीश्वरवादी कहते हैं पर इसका भाव यह है कि तर्क से ईश्वर को सिद्ध नहीं किया जा सकता। वहीं लिखा है कि अन्तःकरण का अज्ञान नष्ट हो जाने पर शुद्ध ज्ञान हृदय में परमात्मा को प्रकाशित करता है। तब ईश्वर सिद्ध हो जाता है। ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा। (सांख्यदर्शन ३।५७।) इससे पहले का सूत्र है-स हि सर्ववित् सर्वकर्ता ३।५६। अर्थात् सर्वज्ञ ईश्वर ही सब कुछ करता है।

भागवत ३।२५ में कपिल मुनि अपनी माता से कहते हैं कि मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है। वह विषयों में आसक्त होने पर बन्धन का और ईश्वर में आसक्त होने पर मोक्ष का हेतु बन जाता है। योगी ईश्वर की प्राप्ति के लिये जो प्रयास करते हैं उनमें भक्ति सर्वश्रेष्ठ है। संग आत्मा का एक महान् बन्धन है पर वही संग भक्तों और सन्तों के साथ होने पर मोक्ष का द्वार बन जाता है। पुरुष (ईश्वर) और प्रकृति सदा साथ-साथ रहते हैं। जैसे गन्ध पृथ्वी से और रस जल से पृथक् नहीं रहता उसी प्रकार प्रकृति पुरुष से पृथक् नहीं रहती।

चेतः खल्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम् ।
गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये ॥ १५ ॥
न युज्यमानया भक्त्या भगवत्यखिलात्मनि ।
सदृशोऽस्ति शिवः पन्था योगिनां ब्रह्मसिद्धये ॥ १९ ॥
प्रसंगमजरं पाशं आत्मनः कवयो विदुः ।
स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ॥ २५ ॥
पुरुषं प्रकृतिर्ब्रह्म न विमुंचति कर्हिचित् ।
यथा गन्धस्य भूमेश्च भावोऽपां च रसस्य हि ॥ २७।१८ ॥

महर्षिकणाद ने वेद को आगम (शब्द) प्रमाण कहा है, उसे अपौरुषेय माना है और अपने वैशेषिक शास्त्र में परमात्मा को आत्मा में मिला दिया है। इन्होंने तत्त्वज्ञान को दुःख की निवृत्ति का साधन माना है क्योंकि इससे अविद्या का नाश होता है और आत्मशुद्धि पर विशेष ध्यान दिया है।

विभवान् महानाकाशस्तथा चात्मा (वैशेषिक ७।१।२२)।

वेद को मानने वाला ईश्वर की सत्ता को कभी भी अस्वीकार नहीं कर सकता। महर्षि कणाद द्वारा रचित 'नाड़ीविज्ञान' नामका एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। उसके प्रथम श्लोक में उन्होंने भगवान् शंकर की वन्दना की है। महर्षि जैमिनि की भी यही स्थिति है। उनके ग्रन्थ का प्रथम सूत्र है-अथातो धर्मजिज्ञासा। वे कहते हैं कि यज्ञों से ही शुभ गति प्राप्त होती है। यज्ञों में परमात्मा और देवों को आहुतियां दी जाती है। वेद स्वयं कहते हैं कि अग्नि, इन्द्र, सूर्य, वायु आदि नाम ईश्वर के हैं। वैशेषिकों का एक वर्ग ईश्वर का स्पष्ट वर्णन करता है, स्तोत्र पढ़ता है और कहता है कि ईश्वर की इच्छा से ही परमाणुओं में स्पन्दन होता है, वे ईश्वरेच्छा से ही जुड़ते हैं अतः कपिल, कणाद और जैमिनि को अनीश्वरवादी मानना अनुचित है।

निराकार ईश्वर

हमारे यहां अध्यात्मज्ञान की सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थराशि उपनिषत् है। इसे विदेशियों और विधर्मियों द्वारा भी बहुत संमान प्राप्त हुआ है। ये योगियों की अनुभूत वाणियां हैं। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में प्रक्षेप बहुत हुआ है। आजकल उपनिषदों की संख्या तीन सौ के पास पहुंच रही है। राधा, भस्म, माला, तुलसी, चन्दन, बेल,

आदि की ही नहीं, अल्ला की भी उपनिषद् बन गई है पर प्राचीन उपनिषदें दस ग्यारह हैं। इनमें बताया गया है कि ईश्वर वर्णनातीत, इन्द्रियों से अग्राह्य, गोत्र आंकृति नेत्र कर्ण हाथ पैर आदि से हीन किन्तु सर्वव्यापी, नित्य, अतिसूक्ष्म, अविनाशी और विश्व का मूल (बीजं) है। उसे धीर पुरुष दिव्य दृष्टि से देखते हैं। वह वाणी द्वारा नहीं बताया जा सकता पर वाणी उसी के बल से बोलती है। वह श्रोत्र से नहीं सुना जाता है पर श्रोत्र की शक्ति उसी की देन है। यदि समझते हो कि मैंने उसे जाना है तो निश्चित है कि तुमने उसके विषय में कुछ ही जाना है। जो उसे अविज्ञेय और असीमित कहता है वह कुछ जान रहा है पर जो कहता है कि मैं ने जान लिया वह नहीं जानता है। ईश्वर जानने वालों के लिये अज्ञात और न जानने वालों को ज्ञात है पर जिसने उसके विषय में कुछ भी नहीं जाना उसका मानव जन्म व्यर्थ है।

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रं अवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम् । नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद् भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः (मुण्डकोपनिषत् १।१।६) ॥

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते । तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि
नेदं यदिदमुपासते ॥ यत् चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि
पश्यति! यत् श्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ॥
यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः । अविज्ञातं विजानतां
विज्ञातमविजानताम् ॥ यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि
त्वं नूनं वेत्थ । यतो वाचा निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ।
न चेदिहावेदीन् महती विनष्टिः (केनोपनिषत्) ।

बृहदारण्यक उपनिषत् (३।१।२) में लिखा है कि किसी महान् योगी को भी ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान नहीं रहता। महाराज जनक ने एक बार एक सहस्र गायें अलंकृत की थीं। उनकी सींगें पर्याप्त सोने से मढ़ी थीं और सभामें अनेक विद्वान् बैठे थे। जनक ने कहा कि आप ब्राह्मणों में जो ब्रह्मवेत्ता हो वह गायें ले जाय परन्तु किसी को साहस नहीं हुआ। तब याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य सामश्रवा को गायों को हांकने का आदेश दिया। जनक के होता आश्वल ने याज्ञवल्क्य से पूछा कि इतने विद्वानों में क्या आप ही ब्रह्मनिष्ठ हैं। याज्ञवल्क्य ने कहा कि ब्रह्मनिष्ठ को तो हम सब प्रणाम कर रहे हैं। रही बात गायों की, हमें उनकी आवश्यकता है।

नमो ब्रह्मनिष्ठाय कुर्मो गोकामा एव वयम् ।

अतः निश्चित है कि इस सृष्टि का विधायक ब्रह्म है पर हम उसके विषय में कुछ ही जानते हैं, पूरा नहीं। ईश्वर सूक्ष्म है, सबके हृदय में बैठा है, तिल में तेल और दूध में घी की भांति व्यापक है और नेत्रों से नहीं, दिव्य दृष्टि से देखा जाता है। जो ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार करते हैं वे उसे कैसे पावेंगे? वह ढूंढ़ने वालों को अवश्य मिलता है। जो ईश्वर को अस्वीकार करते हैं वे असत् पुरुष हैं और मानने वाले भाग्यशाली सत्पुरुष हैं।

अंगुष्ठमात्रः पुरुषः। तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिः। न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्। हृदा मनीषा ... अमृता भवन्ति। अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते (कठ २।३।१२)। असद् ब्रह्मेति वेद चेदसदेव स भवति। अस्ति ब्रह्मेति चेद् वेद सन्तमेनं ततो विदुः (तैत्ति. उप. २।६)। ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति (गीता १८।६१)। सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः (गीता १५।१५)। बहिरन्तश्च भूतानां दूरस्थं चान्तिके च तत् (गीता १३।१५)।

गीता में कृष्ण भगवान् कहते हैं कि किसी महापुरुष के शरीर को भगवान् का शरीर मत समझो। सूक्ष्म ईश्वर का अंश शरीर में रहता है पर शरीर ईश्वर नहीं है। कुछ बुद्धिहीन भक्त मेरे उत्तम एवं अव्यय परम भाव को न जान कर मुझ अव्यक्त (निराकार) को व्यक्त (साकार) हुआ मानते हैं। कारण यह है कि योगमाया से आच्छादित बुद्धि वाले लोग मेरा वास्तव स्वरूप नहीं जानते। मूढ़ समाज यह नहीं समझता कि मैं अजन्मा और अमर हूं। सत्य यह है कि मैं सब प्राणियों का स्वामी अजन्मा ईश्वर हूं। मूढ़ जनता इस वास्तविकता को न जान कर मुझे मनुष्य कह कर मेरी अवहेलना करती है। ऐसे भ्रष्ट चित्त वालों की आशायें, कर्म और ज्ञान निरर्थक हैं। वे मोहिनी राक्षसी एवं आसुरी प्रकृति के आश्रय में हैं। जिन महात्माओं की दैवी प्रकृति है वे मुझे सब्र प्राणियों का आदि और अव्यय मानते हैं।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।

परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ७।२४

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।

मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ७।२५

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।

परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ९।११
मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ९।१२
महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ९।१३

जो मुझे अजन्मा, अनादि और विश्वेश्वर जानता है वह अमूढ़ है, सब पापों से मुक्त हो जाता है। मेरा यह शरीर क्षेत्र है, गृह है और मैं इसके भीतर बैठा हूं। मैं तुम्हें वह ज्ञान दे रहा हूं जिसे पाने पर मनुष्य अमृतपायी हो जाता है। शरीर में स्थित ब्रह्म सब इन्द्रियों से हीन होने पर भी सब इन्द्रियों का काम करता है। तुम मेरे इस शरीर को ब्रह्म मत समझो। ब्रह्म निराकार है और वह इसके भीतर है। सृष्टि के आरंभ में इसी निराकार से सब साकार पैदा होते हैं १०।३, १३।१। देह और देही में अन्तर है। देह नश्वर है पर देही (आत्मा) ईश्वर का अंश है और अमर है २।१८। वह वस्त्रों की भांति शरीर बदलता रहता है २।२२

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते १३।१
अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ८।२२

साकार ईश्वर और अवतारवाद

परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण इसी गीता में यह भी कहते हैं कि जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब तब मैं धर्म और धर्मिष्ठों की रक्षा के लिये तथा दुष्टों के संहार के लिये जन्म लेता रहता हूं ४।८। मेरा वह जन्म किसी विभूतिमान् महापुरुष के रूप में होता है। जान लो कि ऐसे जितने भी ऊर्जस्वी महात्मा हैं वे सब मेरे एक विशिष्ट अंश हैं १०।४१। बुद्धिमानों की बुद्धि, तेजस्वियों का तेज, तपस्वियों का तप और बलवानों का बल मैं ही हूं। वह मेरा ही एक अंश है ७।११। इतना ही नहीं, जल का रस, सूर्य चन्द्रमा की प्रभा, अग्नि का तेज, पृथ्वी का गन्ध, मनुष्यों का पौरुष और प्राणियों का जीवन मैं ही हूं ७।९। सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, अग्नि, वायु, स्कन्द, बृहस्पति, राम, कपिल, विष्णु, शंकर, कुबेर, भृगु, नारद, चित्ररथ, वासुकि, वरुण, राम आदि मैं ही हूं (गीता अध्याय १०)। हे अर्जुन! निराकार ईश्वर की उपासना करने वाले भक्त मेरी कृपा अवश्य पाते हैं

परन्तु देहधारी को विदेह का ध्यान करने में बहुत क्लेश होता है १२।५। अतः साकार ईश्वर की उपासना हेय नहीं है।

शंका होती है कि ईश्वर सब के हृदय में बैठे हैं तो मनुष्य नाना प्रकार के पाप क्यों करते हैं। उत्तर है, ईश्वर माया से आच्छादित हैं, सुषुप्त हैं, अस्त हैं। कहीं कुछ अस्त हैं, कहीं पूर्ण अस्त हैं। योगशास्त्र में उनके जागरण और उदय के अनेक उपाय बताये गये हैं। उनमें एक है, ईश्वर का ध्यान। प्रश्न है, हम निराकार का ध्यान कैसे करें। याज्ञवल्क्य सरीखे बड़े बड़े ज्ञानी उन्हें नहीं जान सके तो हम अज्ञानी उनका स्तोत्रपाठ कैसे करें?

श्वेतकेतु से उनके पिता ने कहा कि बरगद का एक फल लावो। वे फल ले आये, उसे तोड़ा और कहा कि इसके भीतर अनेक बीज हैं। पिता ने कहा, बीज तोड़ो और बतावो, उसके भीतर क्या है। तोड़ने के बाद श्वेतकेतु ने कहा, मैं बता नहीं सकता, पता नहीं क्या है। पिता ने कहा, इसी प्रकार अनिर्देश्य अतीन्द्रिय ब्रह्म से दृश्य विश्व उत्पन्न हुआ है। श्वेतकेतु के सामने प्रश्न था, मैं इसका ध्यान और गुणगान कैसे करुं। इसीलिये इसी उपनिषद् (३।१४) में सगुण ब्रह्म का भी वर्णन है। सचमुच मनुष्य के लिये प्रारंभ में निराकार निर्गुण का स्मरण और यशोगान कठिन है, असाध्य है। हम साकार ईश्वर के और उनके भक्तों के चरित्र से, उपदेश से, दर्शन से और चरणस्पर्श से बहुत कुछ पाते हैं। ये क्रियायें हमारे हृदय में सुषुप्त पुनीत भावों को जगा देती है। उनकी अनुपस्थिति में इनके चरित्र के ग्रन्थ उतनी ही सुप्रेरणा देते हैं पर निराकार की उपासना में यह सब नहीं मिलता। श्रीकृष्ण भगवान गीता में कहते हैं कि मनुष्य भक्तिपूर्वक मुझे जो पत्र, पुष्प, फल, जल आदि समर्पित करता है उसे मैं ग्रहण करता हूं, खाता हूं (९।२६)। यह साकार का ही पूजन है।

उपनिषदों में और योगशास्त्र में ब्रह्मज्ञान का सर्वश्रेष्ठ साधन मन है पर वे दोनों कहते हैं कि मन जहां तक पहुंचता है, ब्रह्म उससे आगे है। जहां शब्द नहीं, स्पर्श नहीं, रूप नहीं, रस नहीं, गन्ध नहीं, दया नहीं, लीला नहीं, क्रिया नहीं, शिक्षा नहीं, वहां हमारा मन क्या करेगा। हम माया से ग्रस्त चंचल चित्त वालों को तो सगुण साकार की ही शरण में जाना होगा। इसीलिये उपनिषदों में अमूर्त के साथ मूर्त रूप के ध्यानका भी वर्णन है। वायु अन्तरिक्ष अमूर्त हैं और सूर्य चन्द्र आदि मूर्त हैं।

हम अनेक महान् योगियों को प्राण या नाद सदृश मनोग्राह्य विषय का ध्यान करते देखते हैं। बाबा गोरखनाथ के शिष्य योगीन्द्र स्वात्माराम ने अपनी हठ योगप्रदीपिका में लिखा है कि नाद सरीखा कोई दूसरा लय नहीं है। यह शुद्ध सुषुम्णामार्ग में सुनाई देता है। जो तत्त्वबोध प्राप्त करने में असमर्थ और हताश हैं उनके लिये यह परम उपयुक्त है। यह लोकोत्तर आनन्द का दाता है। आदिनाथ शंकर ने लय की जो अनेक विधियां बताई हैं उनमें यह मुख्य है। श्रीशंकराचार्य ने इसे प्रणाम किया है।

अशक्यतत्त्वबोधानां मूढानामपि शान्तिदम् ।
प्रोक्तं गोरक्षनाथेन नादोपासनमुच्यते ॥
सोऽयमेवास्तु मोक्षाख्यो मास्तु वापि मतान्तरे ।
मनःप्राणलये कश्चिदानन्दः सम्प्रवर्तते ।
सुषुम्णासरणौ दिव्यो नास्ति नादसमो लयः ॥
श्रीआदिनाथेन सपादकोटिलयप्रकाराः कथिता जयन्ति ।
नादानुसन्धानकमेकमेव मन्यामहे मुख्यतमं लयानाम् ॥
नादानुसन्धान नमोऽस्तु तुभ्यं त्वां मन्महे तत्त्वपदं लयानाम् ।
भवत्प्रसादात् पवनेन साकं विलीयते विष्णुपदे मनो मे ॥

ईश्वर की साकार मूर्तियां दो प्रकार की हैं। एक वे हैं जो अवतार कहीं जाती हैं। हम उन्हें अवतार इसलिये कहते हैं कि उनके हृदयों में ईश्वर का पूर्ण उदय हो चुका है। श्रीकृष्ण भगवान् का यह कथन महत्त्वपूर्ण है कि हमें उनके शरीरों को बहुत महत्त्व न दे कर उनके चरित्र और उपदेश का स्मरण कर अपने हृदय में सोये सत्त्व को और भगवान् को ज़गाना है। यद्यपि चरित्र और उपदेश शरीर द्वारा ही होते हैं तथापि उनका प्रेरक हृदयस्थ ईश्वर है। हम अनेक स्थानों में यह दृश्य देख रहे हैं कि शरीर सुन्दर है पर मन तामस है। शरीर सुन्दर नहीं हैं पर मन सुन्दरता का सागर है। शरीर को महत्त्व देने वाले अपनी और समाज की क्षति करते हैं।

ईश्वर की दूसरे प्रकार की मूर्तियां काल्पनिक हैं। इनमें अनेक देवदेवियां भी हैं। हम जानते हैं कि क, ख आदि ध्वनियों के आकार नहीं होते, हमने उनके अनेक आकार मान लिये हैं किन्तु उनके प्रभाव से कई सहस्र वर्ष पूर्व के सन्तों के भावों को उनके ग्रन्थों में पढ़ लेते हैं। राष्ट्रों के सारे ध्वज और नमस्कार की सारी

विधियां काल्पनिक हैं पर उनके द्वारा हम विना बोले अपने भाव प्रकट कर देते हैं। गणित के सारे संकेत काल्पनिक हैं पर वे न होते तो गणितज्ञ अपनी बात कह नहीं पाते। इस प्रकार महर्षियों ने हमारी भलाई और सुविधा के लिये निराकार ब्रह्म और शक्तियों के रूपों की भी साधार और हितकारी कल्पनायें की हैं। उनके माध्यम से निराकार तक पहुंचा जा सकता है। उन्होंने लिख दिया है कि ब्रह्म निर्गुण होते हुये भी सब गुणों का धाम है।वह अचिन्त्य, अपरिमित और निराकार है, फिर भी हम भक्तों की सफलता के लिये उसके रूप की कल्पना कर रहे हैं।

अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ।
भक्तानां कार्यसिद्ध्यर्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना ॥

सन्देह न करें, काल्पनिक मूर्तियां विधिवत् ध्यान करने पर मानव रूप में सामने भी आ जाती हैं। यह मानस ध्यान का चमत्कार है। इस विषय में भारतीय ग्रन्थों के अतिरिक्त फ्रेंच योगिनी श्री नील के ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद 'प्राचीन तिब्बत' पठनीय है। उन्होंने लामा साधकों की काल्पनिक मूर्तियों को मानव रूप में घूमती हुयी स्वयं देखा था। वे अपने विषय में लिखती हैं कि मैं ने अपनी कल्पना से लामा का एक भव्य चित्र बनाया। विधिवत् ध्यान के प्रभाव से कुछ दिनों बाद वह मेरे साथ घूमने लगा और उसे दूसरे लोग भी देखते रहे। बाद में उसे हटाना चाहा पर वह कार्य कठिन था। प्रयास करने पर वह धुंधला होते होते कुछ दिनों में समाप्त हो गया। एक लामा ने कुछ शिष्यों को यह शिक्षा दी। इष्टदेव छाया की भांति उनका साथी हो गया पर बाद में उन्हें यह बोध हो गया कि यह ध्यान के अभ्यास का प्रभाव है।"

ऐसे ग्रन्थों से हमें कई शिक्षायें मिलती हैं। (१) हमारा शरीर अनेक महान् शक्तियों का भण्डार है। हमें उन सुषुप्त शक्तियों को जगाना चाहिये। (२) हम अपनी इच्छा शक्ति से देव बना सकते हैं, उसे बाहर भेज सकते हैं। (३) हमें अपने हृदय में सुषुप्त ईश्वर को जगाना चाहिये और मस्तिष्क में स्थित कोशों का बन्द द्वार समूह खोलनाचाहिये (४) कुछ देव सत्य हैं। उनसे सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है पर कल्पना से उत्पन्न देव हमारे बनाये हैं। गोसाईं जी को जिन राम ने चन्दन लगाया वे ध्यानजन्य भी हो सकते हैं।

आकाश में केवल एक गुण शब्द है, उससे उत्पन्न वायु में शब्द और स्पर्श दो गुण हैं। वायु से उत्पन्न अग्नि में शब्द, स्पर्श, रूप तीन गुण हैं। वायु के पुत्र जल में

इन तीनों के अतिरिक्त रस भी है और वायु से उत्पन्न पृथ्वी में गन्ध के साथ पांच गुण हैं। इसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म में सब गुण स्थित हैं। कृष्ण भगवान् ने उद्धव से कहा कि आचार्यों ने तत्त्वों की भिन्न भिन्न संख्यायें बताई हैं, यह मतभेद नहीं है, एक तत्त्व में कई तत्त्व स्थित हैं।

एकस्मिन्नपि दृश्यन्ते प्रविष्टानीतराणि च ।
पूर्वस्मिन् वा परस्मिन् वा तत्त्वे तत्त्वानि सर्वतः ॥

श्रीमद्भागवत ११।२२।६

वैज्ञानिक भी तत्त्वसंख्या बढ़ा रहे हैं। जल पहले एक तत्त्व था पर अब वह ओ, एच का संयोग है। पहले परमाणु अविभाज्य था, अब उसमें एलेक्ट्रान, प्रोटान और न्यूट्रान का नृत्य हो रहा है। इसी प्रकार प्रबोध होने पर हम मानेंगे कि साकार और निराकार एक ही वस्तु के दो रूप हैं। हिम भी जल है और शीतल वायु की अदृश्य शीतलता भी जल है। इसलिये उपनिषदें कहती हैं कि अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु आदि सब ब्रह्म हैं और उन सबों में ब्रह्म की उपासना की जा सकती है। ईश्वर के मूर्त (साकार) और अमूर्त (निराकार) दो रूप हैं।

वेद का साकार ईश्वर

वेद ईश्वर की प्रार्थनाओं से भरे हैं पर उनमें निराकार के साथ साकार की प्रार्थनायें भी हैं। भगवान् शंकर के अभिषेक में पढ़े जाने वाले कुछ यजुर्वेद के मन्त्रों में यह प्रार्थना है कि हे प्रभो! आप के कोप को, बाणों को और हाथों को प्रणाम है। गिरि में शयन करने वाले रुद्रदेव! आप हमारी रक्षा करें और हमें अपने उस तनु से देखें जो शिवा, अघोर, पुण्यप्रकाशिनी और कल्याणकारिणी है। हे गिरीश! शत्रुओं पर चलाने के लिये लिये हुये अपने हाथ में स्थित बाणों को शान्त करें। उनसे किसी को न मारें। हे जटाधारी कपर्दिन्! अपने धनुष की ज्या उतार दें, बाण को फल से और म्यान को तलवार से रहित कर दें। आप सुमन और शिव हो जायें। अपने आयुधों को किसी ऊंचे वृक्ष पर रख कर हाथ में केवल पिनाक लेकर आयें। मूजवान् पर्वत से आयें और अपना जलपान लें।

नमस्ते रुद्र मन्यव उतोत इषवे नमः । बाहुभ्यामुत ते
नमः १६।१॥ या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी ।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि १६।२ ॥

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे । शिवां गिरित्र तां
कुरु मा हिंसीः १६।३ ॥ विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो
बाणवानुत १६।१० ॥ मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव ।

परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिं वसान आचार पिनाकं बिभ्रदागहि १६।५१ ॥ एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि १६।६१ ॥

उपनिषदों में निराकार ब्रह्म का विशद वर्णन है पर केनोपनिद् में यह भी लिखा है कि ईश्वर ने एक बार यक्ष का रूप धारण कर अग्नि और वायु का अहंकार दूर किया और इन्द्र के आने पर वे अदृश्य हो गये। इन्द्र को उमा ने बताया कि ये ईश्वर थे।

किमेतद् यक्षमिति ३।१३, सा ब्रह्मेति होवाच ४।१

सारांश यह है कि हमारे वेदों और उपनिषदों में निराकार के साथ साकार ईश्वर की उपासना का भी वर्णन है। हमारे गौतम, पतंजलि, कपिल, बादरायण आदि योगी निराकार के साथ साकार के भी उपासक थे। साकार उपासना प्रथम सोपान है और सामान्य मानवों के लिये अन्तिम भी है। इसके द्वारा भी वह पद पाया जा सकता है जो अन्य श्रेष्ठ उपायों से उपलब्ध होता है।

अष्टमूर्तिशिव-तत्त्व का सूक्ष्म से स्थूल होना स्वाभाविक है। निराकार को साकार होना पड़ता है। सूक्ष्म आकाश से ही स्थूल, स्थूलतर अन्य चार महाभूत उत्पन्न हैं। सूक्ष्म शिवतत्त्व स्थूल होकर आठ नामों वाला हो जाता है। वे हैं, रुद्र, शर्व आदि अर्थात् सूर्य, जल, वायु आदि किन्तु खेद है कि इनकी कथायें अब मूल से च्युत होकर विकृत हो गई है।

साकार की दुर्दशा

किन्तु हमें उन्हीं साकार मानवों को ईश्वर का अवतार मानना है जिनमें ईश्वर का पूर्ण उदय हो चुका है। जिनमें रज और तम का सर्वथा अभाव है और सारी दैवी सम्पत् जागरूक है। परन्तु खेद है कि आज इन अवतारों का जो चरित्र और उपदेश उपलब्ध है वह संशयविहीन, तर्कसंगत, शिक्षाप्रद, हितावह और विद्वन्मान्य नहीं है। वह कविकल्पनाओं से बहुत दूषित हो गया है। वेदादि महान् ग्रन्थों में निराकार, सर्वव्यापी, ब्रह्माण्डाकार ईश्वर का जो आलंकारिक वर्णन है वह साकार अवतारों पर भी थोप दिया गया है। परिणाम यह है कि उनका सौम्य

प्राकृतिक रूप उग्र और विकृत हो गया है। उसके कुछ उदाहरण यहां लिखे जा रहे हैं, अन्य ग्रन्थ के मध्य में है। कुछ अन्य निराकार पदार्थों की कथायें भी विचारणीय हैं।

(१) वेदों की आकृतियां

निराकार ईश्वर की सांस से निकले शब्दात्मक वेदों की चार आकृतियां हैं। हमारे संगीतग्रन्थों में रागों रागिनियों के भी आकार का वर्णन है पर वह साधार है किन्तु वेदों की आकृतियों का आधार अज्ञात है। आकृतियां भीषण हैं पर हेमाद्रि ने उन्हें सौम्य और मांगलिक कहा है। ऋग्वेद का मुख गधे सरीखा नहीं, गधे का है। वह श्वेतवर्ण, द्विभुज, मालाधर, प्रेमी और वक्ता है। यजुर्वेद का मुख बकरे का है। वह पीतवर्ण, मालाधारी, वज्रपाणि और मंगलप्रद है। सामवेद का मुख घोड़े का है। वह श्यामवर्ण, मालाधर और कुंभधर है। अर्थववेद मर्कटानन, श्वेतवर्ण, कुंभधर और मालाधर है। वैदिक शिक्षा में लिखा है कि उच्चारण में थोड़ी सी भी त्रुटि होने पर वेदमंत्र यजमान और पुरोहित का सर्वनाश कर देते हैं। पता नहीं ये गर्दभ, बकरे, घोड़े और वानर मुख वाले कैसे शुद्ध मन्त्र पढ़ते हैं

ऋग्वेदः श्वेतवर्णः स्याद् द्विभुजो रासभाननः ।
अक्षमालाधरः सौम्यः प्रीतो व्याख्यानतत्परः ॥
अजास्यः पीतवर्णः स्याद्यजुर्वेदोऽक्षसूत्रधृक् ।
वामे कुलिशपाणिश्च भूतिदो मंगलप्रदः ॥
नीलोत्पलदलाभासः सामवेदो हयाननः ।
अक्षमालान्वितो वामे दक्षे कुंभधरः स्मृतः ॥
अथर्वणाभिधो वेदो धवलो मर्कटाननः ।
अक्षमालान्वितो वामे दक्षे कुंभधरः स्मृतः ॥

ये वेद राम के जन्म के समय और कृष्ण की सभा में दोनों की स्तुति करते हैं और गोपी भी बन जाते हैं। पता नहीं, रामायण महाभारत, मनुस्मृति आदि के मुख और वर्ण आदि कैसे हैं।

(२) वेद निगले और उगले गये

वैशम्पायन ने याज्ञवल्क्य को यजुर्वेद पढ़ाया था। एक दिन उन्होंने कुपित गुरु की आज्ञा से पढ़े हुये सारे मन्त्र उगल दिये। ब्राह्मण के शरीर से किसी का वमन

खाना अधर्म था इसलिये वैशम्पायन के शिष्य तीतर पक्षी बन कर याज्ञवल्क्य का सारा वमन निगल गये। तब यजुर्वेद शुक्ल से कृष्ण हो गया और संहिता तैत्तिरीय संहिता कही जाने लगी। इससमय यह लगभग चारो वेदों के बराबर है। खिन्न याज्ञवल्क्य ने सूर्य की प्रार्थना की तो उन्होंने देवशरीर से नहीं बल्कि घोड़ा बन कर वे मन्त्र पढ़ाये जो वैशम्पायन और अन्य आचार्यों को अज्ञात थे (भागवत १२।६)। यजुर्वेद बकरानन है और सूर्य घोड़ानन। इन आननों से वेद पढ़ने में जितनी सुविधा होती है उतनी मानवमुख से नहीं।

यजूंषि तित्तिरा भूत्वा तल्लोलुपतयाऽददुः ६५

वाजिरूपधरस्तस्मै मुनयेऽदात् प्रसादितः ७३

(३) वेद चुराये गये

ब्रह्मा सो रहे थे और चारो वेद उनके चारो मुखों से निकल रहे थे। हयग्रीव दानव उन्हें चुरा ले गया, तब विष्णु भगवान ने मत्स्य रूप धारण कर उसकी हत्या की और वेदों का उद्धार किया (भागवत ८।१४)।

मुखतो निःसृतान् वेदान् हयग्रीवोन्तिकेऽहरत् ८।

दधार शफरीरूपं वेदान् प्रत्याहरत् हरिः ५७

(४) धरती पर कहीं दूध का सागर नहीं है। वेदमत में आकाश ही क्षीरसागर है और उसमें मेघरूपी ऐरावत का, मेघरूपी उच्चनादकारी अश्व का, चन्द्रमा का, सूर्य रश्मि रूपी लक्ष्मी का, जल रूपी अमृत का और तारा रूपी अप्सराओं का वास है। मेघरूपी गिरि में बैठे रुद्र बिजली रूपी मोहिनी अप्सरा को देख कर द्रवित होते हैं तो अमृत रूपी जल बरसता है पर हम मानते हैं कि विष्णु के मोहिनी रूप को देख कर कामेश्वर शिव का वीर्यपात होता है।

(५) महाभारत का कथन है कि अनेक सूक्ष्म जीव तर्क से जाने जाते हैं, नेत्र से देखे नहीं जाते। नेत्र की पलक गिरने में कई मर जाते हैं अतः जगत् श्मशान है। शिव पुराण का कथन है कि जगत् श्मशान है और शिव इसमें सर्वत्र बैठे हैं। वे श्मशानवासी मानव नहीं है। संसार के सारे ऐश्वर्य के धारक होने से वे ईश और ईश्वर हैं। ऐश्वर्य को ही भूति और विभूति कहा जाता है। शिव श्मशान में बैठ कर चिता की राख धारण करने वाले मानव नहीं हैं। संसार के सारे जीवधारी भूत (प्राणी) हैं तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश महाभूत हैं। शिव इनके

नाथ हैं, भूतेश्वर हैं। अनेक भुवन मुण्ड हैं और काले मेघ सर्प हैं। दिशायें ही शिव के अम्बर (वस्त्र) हैं अतः वे दिगम्बर हैं। मानवरूप धारी शिव नरमुण्ड और सांप नहीं पहनते, न समाज में नंगे घूमते हैं। तीन गुण ही उनके त्रिशूल हैं।

सूक्ष्मयोनीनि भूतानि तर्कगम्यानि कानिचित्।
पक्ष्मणोऽपि निपातेन येषां स्यात् स्कन्धपर्ययः॥
स आदिः सर्वजगतां कोऽस्य वेदान्वयं ततः।
सर्वं जगच्चास्य रूपं दिग्वासाः कीर्त्यते ततः॥
श्मशानं चापि संसारस्तद्वासी कृपयार्थिनाम्।
भूतयः कथिता भूतिस्ता बिभर्ति स भूतिभृत्॥
गुणत्रयमयं शूलं तन्तु शूली बिभर्ति सः॥

(६) विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार पृथ्वी, जल आदि पांच महाभूत शिव के पांच मुख हैं और दस दिशायें दस हाथ हैं। उनमें स्थित शस्त्र अस्त्र उनकी शक्तियों के सूचक हैं और वे दसो दिशाओं की रक्षा करते हैं। वेदों के मत में वात, अन्न और वर्षा ही शिव के बाण हैं। इच्छा, ज्ञान, क्रिया शक्तियों का सूचक त्रिशूल है और नाग, खड्ग तथा चन्द्र उनके कोप, ज्ञान एवं ऐश्वर्य के प्रतीक हैं। वृषभ वाहन धर्म का प्रतीक हैं। वही शिव का आधार है और तप, शौच, दया, सत्य उसके चार पाद हैं। शिव की इच्छाशक्ति का स्पन्दन ही उनका ताण्डव नृत्य है। सृष्टि और प्रलयकाल में यह विशेष रूप से होता है। इसीलिये कहा जाता है कि शिव संध्याकाल में नाचते हैं। शिव की अर्धनारीश्वर मूर्ति बता रही है कि शक्ति और शक्तिमान् में अभेद है। प्रणवनाद अर्धमात्रा है और यही उनके ललाट पर स्थित अपूर्ण चन्द्र है। महर्षि याज्ञवल्क्य के मत में अनेक लोक मुण्डमाला हैं, भस्म ज्योति है तथा सिंहचर्म विकास का और गजचर्म माया का परिचायक है। योगी और मरीचियां रुद्रके गण हैं तथा ग्रह ही नाग हैं। रुद्र का शुक्लवर्ण शान्तिस्थापना का सूचक है और ललाटस्थ चन्द्रमा सोमतत्त्व है।

(७) स्कन्द और गणेश

पुरुष ही शिव हैं, प्रकृति ही उमा है और उन दोनों के संयोग से स्कन्न (गिरा) वीर्य ही स्कन्द है। छ ऋतुयें ही उनके छ मुख हैं और १२ मास ही बारह हाथ हैं। स्कन्द महत्तत्व या अहंकार है और उसके बाद उत्पन्न आकाशतत्त्व ही

गणेश है। गणेश ने सुमति नाम का दांत रखा है और कुमति नाम का दांत उखाड़ कर हाथ में दबा रखा है। पृथ्वी में स्थित अग्निशक्ति ही गणेश का वाहन मूषक है, और लम्बा उदर आकाश का सूचक है। आकाश, वायु, अग्नि, जल और अग्नि के गुणों में एक विचित्रता यह है कि आकाश का गुण शब्द बड़ा है, अधिक व्यापक है और स्पर्श, रस आदि गुण क्रमशः कम व्यापक हैं। इसी प्रकार गणेश का शुण्ड नीचे क्रमशः पतला है (वराहपुराण)।

कृत्यभेदानुसारेण द्विचतुःषड्भुजादिकम् ।
वस्तुतो विश्वरूपास्ता देव्यो बोधात्मिकाः स्मृताः ॥
पुरुषो विष्णुरित्युक्तः शिवो वा नामतः स्मृतः ।
अव्यक्तं चास्त्युमा देवी श्रीर्वा पद्मनिभेक्षणा ॥
तत्संयोगादहंकारः स च सेनापतिर्गुहः ।
ऋतवः षण्मुखान्यस्य मासाश्च गुहपाणयः ॥

वेदों में निराकार ब्रह्म के विषय में यह आलंकारिक वर्णन है कि उनके सहस्र (अगणित) सिर, नेत्र, हाथ, पैर आदि हैं तो हमने अनेक निराकार गुणों और शक्तियों को देव देवी कहकर उनकी भी विचित्र आकृतियां बना दीं और भक्तों ने उन कल्पनाओं को इतिहास मान लिया। अब हमें दृढ़ विश्वास है कि महान् होने के लिये अनेक मुख हाथ आदि का होना आवश्यक है। रावण दस मुख और बीस भुजाओं विना महावीर नहीं हो सकता था। यद्यपि हमारे वेदों और पुराणों में लिखा है कि ब्रह्मा की सृष्टि में एक सिर और दो हाथ पैरों वाला मानव ही सर्वश्रेष्ठ प्राणी है तो भी हम ने इन्द्र को सहस्र नेत्र, विष्णु को चार भुज, ब्रह्मा को चार मुख, शिव को पांच मुख, स्कन्द को छ मुख, वेदों को वानरानन, बकरानन, गर्दभानन, घोड़ानन और गणेश को गजानन बना दिया। गणेश जी यद्यपि नूतन काल्पनिक देव हैं तथापि आज हर शुभ कर्म में सर्वप्रथम उन्हीं की पूजा होती है। उनके जन्म और आकार की परस्पर विरुद्ध २६ पौराणिक कथायें मैंने अपने ग्रन्थ 'हमारा ज्योतिष और धर्मशास्त्र' में लिखी हैं। सबसे प्रसिद्ध कथा यह है कि पार्वती जी एक बार घर में नंगी नहा रहीं थी। शिव उसी समय भीतर आ गये। पार्वती लजा कर उठ गई और रुष्ट हो गईं। सखियों के कहने से उन्होंने शरीर में उपटन लगाया, उसकी झुर्री से एक बालक बनाया, उसे द्वारपाल बनाया और एक लाठी दे दी। दूसरे दिन पार्वती के स्नान के समय शिव पुनः आये तो उसने रोका। शिव समझाने लगे तो उसनें सिर पर लाठी मार दी। शिव ने गणों को बुलाया तो गणेश

ने केवल लाठी से उन सबों को घायल कर दिया। पार्वती और सखियां प्रसन्न हो गईं। ब्रह्मा आये तो गणेश ने उनकी दाढ़ी मूछ नोच डाली और साथियों सहित उन्हें भगा दिया। कुपित पार्वती ने दो भीषण शक्तियां रचीं और उनके द्वारा शिव को हरा दिया। उनके त्रिशूल पिनाक भूमि पर गिर पड़े। फिर भी शिव ने गणेश का सिर काट दिया। विष्णु भगवान ने एक गजराज का सिर काटा तो उसकी पत्नियां रोने लगीं। तब उनकी कृपा से उसे नया सिर निकल आया और गणेश के सिर पर वही लगाया गया।

पता नहीं, विष्णु ने गजराज की ही भांति गणेश के गले से दूसरा सिर क्यों नहीं निकाल दिया अथवा भूमि पर गिरा गणेश का ही सिर क्यों नहीं लगा दिया। मानव के गले पर हाथी का गला कैसे बैठा और गणेश जी हाथी के मुखसे वेद कैसे पढ़ते हैं, पत्नी और बच्चों से बात कैसे करते हैं, बात समझ में नहीं आती। वेद में इन लम्बोदर एकदन्त गजानन का वर्णन नहीं है।

(८) काशी अयोध्या

शिव का मुख्य निवासस्थान काशी है। प्रकाश से युत विशुद्ध चित्तवृत्ति ही काशी है। वह महाश्मशान है क्योंकि वहां सारे विकार भस्म हो जाते हैं। वहां दैवी ज्योति का दर्शन होता है अतः वह आनन्दवन और गौरीमुख है। त्रिगुणों से परे जो तुरीय अवस्था है वही त्रिशूल का अग्रभाग है। उसी में शिव तारक मंत्र देते हैं। गंगा एक तेजः पुंज है। यह काशी स्थिति में ही मिलती है। अयोध्या चित्त की वह स्थिति है जिसमें मनुष्य युद्ध से विरत हो जाता है। उस समय हर प्राणी उसका भिन्न हो जाता है। वेद ने शरीर को भी देवपुरी अयोध्या कहा है। स्वर्ग और अनेक तीर्थ इसी में हैं। मस्तकस्थ सहस्रार चक्र ही शिव का मूजवान् पर्वत है। मथुरा (मधुरा), अवन्ती, उज्जयिनी आदि भी मन की विशुद्ध स्थितियां हैं। इन्हीं को उत्तरायण भी कहते हैं। इनमें मरे को शुभ गति मिलती हैं और ये स्थितियां किसी भी स्थान को काशी प्रयाग आदि तीर्थ बना देती हैं। हमें द्वारका में पहुंच कर कोशों के बन्द द्वार खोलने हैं।

(९) अर्धनारीश्वर शिव

अर्धनारीश्वर शिव के शरीर का आधा भाग शिव और आधा उमा है। इसका भावार्थ यह है कि शक्तिमान् और शक्ति एक दूसरे से जुड़े हैं। वे कभी पृथक् नहीं।

हो सकते। महाकवि कालिदास ने रघुवंश के प्रारंभ में लिखा है कि उमाशंकर वाणीशब्द की भांति संयुक्त हैं। शिवपुराण का कथन हैं कि चन्द्रचन्द्रिका, सूर्यप्रभा, अग्निउष्णता आदि की भांति उमाशंकर सम्पृक्त हैं।

न शिवेन विना शक्तिर्नच शक्त्या विना शिवः।
प्रभया च विना यद्वद् भानुरेष न विद्यते ॥
रुद्रो विष्णुरुमा लक्ष्मी रुद्रोवह्निरुमा प्रभा।
रुद्रः सोम उमा कान्तिस्तस्मै तस्यै नमो नमः ॥

(१०) भागवत १२।११ में यह वर्णन है कि पृथ्वी भगवान् का चरण है, सूर्य नेत्र है, वायु नाक है, दिशायें कान हैं, लोकपाल भुज हैं, चन्द्रिका दन्तपंक्ति है, वृक्ष रोम हैं और मेघ सिर के केश हैं। चेतन आत्मज्योति कौस्तुभ मणि है, उसकी प्रभा श्रीवत्स है, त्रिगुणात्मिका माया वनमाला है, वेद पीताम्बर है और प्रणव यज्ञोपवीत है। सांख्य योग कानों के कुण्डल हैं, ब्रह्मलोक मुकुट है, प्रकृति शेषशय्या है और सत्त्व ही नाभि का कमल है। प्राणतत्त्व कौमोदकी गदा है, जलतत्त्व पांचजन्य शंख है, तेज सुदर्शन चक्र है, आकाश खड्ग है, काल शार्ङ्ग धनुष है, कर्म तरकस है, इन्द्रियां बाण हैं, मन रथ है, अन्तःकरण की शुद्धि ही दीक्षा है और पाप न करना ही उनकी पूजा है।

इन्द्रियाणि शरानाहुर्दीक्षा संस्कार आत्मनः।
परिचर्या भगवत आत्मनो दुरितक्षयः ॥ १७ ॥

ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान, वैराग्य नामक छ भग ही भगवान् के लीलाकमल हैं। धर्म और यश उनके चंवर और पंखे भी हैं। निर्भय धाम छाता है, तीन वेद गरुड हैं, उनकी शक्ति ही लक्ष्मी है, आगम शास्त्र ही पार्षद हैं, आठ सिद्धियां ही नन्द सुनन्द आदि आठ द्वारपाल हैं, वे ही ब्रह्मा और शिव हैं तथा वे ही यज्ञ हैं। गरुड के पंख से सदा सामवेद के सुस्वर निकलते रहते हैं (३।२१।३४)। पद्मपुराण (उत्तरखण्ड २२।८) का कथन है कि वैकुण्ठ अयोध्या है। वहां युद्ध नहीं होता। वहां एक सिंहासन है। वह वेद (ज्ञान) रूप और शिव (कल्याण) रूप है।

नारायणोपनिषत् का कथन है कि विष्णु के तीन पद हैं द्यो, आकाश और पृथ्वी या सत्व, रज, तम अथवा ईश्वर जीव प्रकृति। शेषशय्या अंनन्त है। आकाश क्षीरसागर है। मन का मंथन ही उसका मन्थन है। मन में देव और दैत्य दोनों

स्थित हैं। काले मेघ असुर हैं और सूर्य की गोरी किरणें देव हैं। जल अमृत है। असुर मेघ इसे ले कर भागते हैं तो बीच में मोहिनी बिजली आ जाती है। उसे देख देव-देव मोहित होते हैं, अमृत (जल) की वर्षा होती है और मेघ ऐरावत हाथी भी है।

शैववैष्णववाद

वेद, शास्त्र, पुराण बार-बार कहते हैं कि ईश्वर एक है और उसके ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि अनेक नाम हैं किन्तु इस समय ये तीन ईश्वर हो गये हैं। ब्रह्मा सृष्टि को पैदा करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और शिव केवल संहार करते हैं। पुराणों के अनुसार मुनिगण अनेक बार यह निर्णय करना चाहते हैं कि हम जान लें, इनमें कौन बड़ा है। वेद कहते हैं कि एक हिरण्यगर्भ ब्रह्मा ही सब प्राणियों के पति हैं, उन्होंने ही धरती आकाश को धारण किया है तो हम अन्य किसका यजन पूजन करें। वेदों में ब्रह्मा सम्बन्धी ऐसे अनेक मन्त्र हैं। दो ये हैं–

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥

यज्ञों में प्रथम आहुति प्रजापति को ही दी जाती है पर इस समय उनका भाग्य विपरीत है, उन पर अनेक दुराक्षेप हैं और उनकी पूजा बन्द हो गई है, उनका कहीं मन्दिर नहीं है, हम उन्हें भूल गये हैं। पुराणों के परीक्षण में प्रायः विष्णु बड़े सिद्ध होते हैं और शिव के लिंगके विस्तार की परीक्षा में विष्णु सत्यवादी और पितामह ब्रह्मा मिथ्यावादी सिद्ध हो जाते हैं।

वेदों शास्त्रों में आकाश को विष्णुपद (व्यापक स्थान) कहा गया है। आकाश गंगा इसके ऊपरी भाग में है। शिव व्योमकेश कहे जाते हैं। आकाश का ऊपरी नीला भाग उनकी जटा है और तारामयी गंगा उसमें बैठी हैं। दिशायें ही विश्वव्यापी विश्वनाथ शिव के अम्बर (वस्त्र) हैं, इसलिये वे दिगम्बर (नंगे) हैं। नीले मेघ गिरि हैं और बिज़ली उनकी कन्या गिरिजा है। वह शिव को गोद में और चन्द्रमा ललाट में है। ब्रह्माण्डाकार शिव सम्बन्धी यह वर्णन महाकवियों ने मानव शिव पर थोप दिया और लिखा कि नंगे शिव नंगी गिरिजा को गोद में ले

कर बैठे रहते हैं। गोसाईं जी ने लिखा कि शिव की दो पत्नियां हैं। गंगा उनके सिर पर बैठी हैं, पर्वत की कन्या बाईं ओर गोद में है, चेतन चन्द्रमा ललाट में बैठा है और गले में एक बड़ा सांप लटका है।

वामांके च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके

भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्

भागवत में लिखा है कि एक बार महर्षिगण शंकर का दर्शन करने आये तो देखा कि वे दिन में ही नंगी पार्वती को गोद में ले कर बैठे हैं। पार्वती झट सांड़ी पहनने लगीं, ऋषि चले गये और शंकर ने शाप दे दिया कि अब यहां आने वाले नारी हो जायेंगे। नारी के सामने यह कर्म अनुचित नहीं है परन्तु वस्तुतः यह कथा आकाश से सम्बन्धित है।

तान् विलोक्याम्बिका देवी विवासा व्रीडिता भृशम् ।

भर्तुरंकात् समुत्थाय नीवीमाश्वथ पर्यधात् ९।१।२९

क्षीरसागर के मन्थन की कथा भी ऐसी ही है। धरती पर कहीं क्षीर का सागर नहीं है। आकाश ही वह सागर है और उसी में उन चौदह रत्नों की स्थिति संभव है। देवों और असुरों ने मिल कर समुद्रमन्थन किया। सूर्य की किरणें ही गोरे देव हैं, मेघ ही काले दैत्य हैं और वे दोनों मिल कर जल रूपी अमृत देते हैं।

हम गरुड़ को एक पक्षी और विष्णु का वाहन समझते हैं पर गरुड़ का वैदिक अर्थ कुछ और है। इसे १।१७ की टीका में पढ़ें। वैष्णवों का कथन है कि विष्णु के पद से निकली गंगा शिव की जटा में हैं अतः विष्णु बड़े हैं और शिव छोटे, किन्तु अमरकोष में स्पष्ट लिखा है कि आकाश का ही नाम विष्णु (व्यापक) पद (स्थान) है।

शिव के अर्धनारीश्वर रूप की ही भांति उनका एक हरिहरात्मक रूप भी है। इसके वाम भाग में हरि और दक्षिण में हर हैं। वायुपुराण में यह वर्णन है कि यह सारा विश्व रुद्रनारायणात्मक है। वेदों का कथन है कि विश्व अग्नि और सोम नामक दो तत्त्वों से बना है। अग्नि रुद्र है और सोम नारायण है, विष्णु है। ये दोनों एक में मिले हैं।

विश्वरुपमिदं सर्वं रुद्रनारायणात्मकम् ।

अग्निसोमात्मकं जगत् । अग्निर्वै रुद्रः सोमो विष्णुः ॥

पुराण भी कहते हैं कि जैसे दो घटों में रखे एक जल में भेद नहीं होता उसी प्रकार हरि और हर में अभेद है। जैसे एक मिट्टी से बने पात्रों में और एक सोने से बने आभूषणों में अन्तर नहीं होता उसी प्रकार हरि हर अभिन्न हैं। इनमें भेद का विधान करने वाले सहस्त्रों कल्पों तक कुंभीपाक आदि घोर नरकों में रहते हैं। वे अविद्या से मोहित हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव को एक मानने वाले परमानन्द पाते हैं और एक के निन्दक के सारे पुण्य भस्म हो जाते हैं।

स एवाहं महादेवः स एवाहं जनार्दनः। उभयोरन्तरं नास्ति घटस्थजलयोरिव ॥ ये भेदं विदधत्यद्धा ह्यावयोरेकरुपयोः। पच्यन्ते नरके ते वै मूढाः कल्पसहस्रकम् ॥ अविद्यामोहिता– त्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः। स याति परमानन्दं यः पश्यत्येकरुपिणम् ॥ यथैकस्या मृदो भेदो नानापात्रे न वस्तुतः। आभूषणेषु हेम्नश्च नो भेदोस्ति तयोस्तथा ॥

यो विष्णुः स स्वयं रुद्रो यो रुद्रः स जनार्दनः (कूर्मपुराण)।

हरिरूपो महादेवो भेदकृन्नरकं व्रजेत् (नारदपुराण)।

विष्णुरुद्रान्तरं ब्रूते मूढधीः स पतत्यधः (विष्णुपुराण)।

अयं परस्त्वयं नेति पिशाचास्ते न संशयः (शिवपुराण)।

मां विष्णोर्ब्रह्मणो भिन्नं वदन्तो नारका नराः (वाराहपुराण)।

विष्णोरन्यं प्रपश्यन्ति ये मां ब्रह्माणमेव च। कुतर्कमतयो मूढाः पच्यन्ते नरकेषु ते (भविष्यपुराण)

इस सिद्धान्त के समर्थक अनेक वेदमन्त्र हैं फिर भी अपने को वेदानुयायी कहने वालों ने इसके विरुद्ध वैष्णव और शैव नामक दो ऐसे पन्थ बनाये हैं जिन्होंने हिन्दुत्त्व के बीचों बीच एक गहरी खाईं खोद दी हैं। उसे पाटने में अनेक सन्तों और आचार्यों ने अपना जीवन बिता दिया फिर भी वह वैसी ही बनी है। कुछ समन्वयवादियों ने तो उसकी गहराई और बढ़ा दी है। तीनों के कुछ वचन ये हैं–

माध्व का वैष्णव मत

एक बार पार्वती ने शंकर से पूछा कि चर्म, हड्डी, मुण्ड, भस्म आदि का पहनना वेद के विरुद्ध है तो आप इन्हें क्यों पहनते हैं। शंकर ने कहा कि एक बार

दैत्यों से पराजित देव विष्णु की शरण में गये तो उन्होंने मुझसे कहा कि तुम दैत्यों को पथभ्रष्ट करो। उन्हें बहकाने के लिये तामस पुराण और पाशुपतशास्त्र बनावो। उनमें लिखो कि कपाल आदि का पहनना धर्म है। न चाहते हुये भी मैं ने वे ग्रन्थ लिख दिये और उन्हें मान कर दैत्यगण विषयासक्त, पापी, बलहीन और पराजित हो गये। अब उन तामस शास्त्रों का नाम सुनो जिन्हें ब्राह्मणों ने मेरी कृपा से लिखा। कणाद का वैशेषिक, गौतम का न्याय, कपिल का सांख्य, बृहस्पति का चार्वाक शास्त्र, बुद्ध के पिटक, शंकराचार्य का मायावाद इत्यादि। मैंने ही ब्राह्मण रूप धारण कर ये सब लिखाये हैं और जगत् को मोहित किया है। ये सब लेखक नरकगामी हैं। दैत्यों को मोहित करने के लिये ही बौद्धावतार हुआ है।

कपालभस्मचर्मास्थिधारणं श्रुतिगर्हितम् ।
तत्त्वया धार्यते देव गर्हितं केन हेतुना ॥
कणादेन तु यत् प्रोक्तं शास्त्रं वैशेषिकं महत् ।
गौतमेन तथा न्यायं सांख्यं च कपिलेन वै ॥
धिषणेन च यत्प्रोक्तं चार्वाकमतिगर्हितम् ।
दैत्यानां नाशनार्थाय विष्णुना बुद्धरुपिणा ॥
मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते ।
मयैव कथितं देवि मोहनार्थं कलौ युगे ॥
ये मे मतमवष्टभ्य चरन्ति पृथिवीतले ।
ते नरा धर्मरहिता गच्छन्ति नरकं सदा ॥

पद्मपुराण, वराहपुराण

ततः कलौ सम्प्रवृत्ते संमोहाय सुरद्विषाम् । बुद्धो नाम्ना
जिनसुतः कीकटेषु भविष्यति (भागवत ७।३।८४)॥

विष्णु के शंख, चक्र, गदा आदि आयुधों को तपा कर शरीर पर उनका चिह्न बनाने, ऊर्ध्वपुण्ड धारण करने, वैष्णव नाम रखने आदि से मरने पर विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। शरीर पर इन चिह्नों को देखकर यमदूत भाग जाते हैं। इनसे हीन अवैष्णव पापी, चाण्डाल, नारकी और गधे हैं। इन्हें छूने और नमस्कार करने वाला नरक जाता है। रुद्रपूजक ब्राह्मण शूद्र है। उसके साथ भोजन करना पाप है। उसके द्वारा स्थापित मूर्ति में हरि नहीं आते।

तापादिपंचसंस्कारा महाभागवताः स्मृताः।
चक्रादिहेतिभिस्तप्तस्ताप इत्यभिधीयते ॥
संस्कारः प्रथमस्तापो द्वितीयः पुण्ड्रधारणम् ।
अन्ये त्ववैष्णवाः प्रोक्ता हीनास्तापादिभिर्द्विजाः ॥
रौरवं गर्दभाः प्राप्य चाण्डालीं योनिमाप्नुयुः ।
रुद्रः शूद्रस्यार्चनीयः स्थापितं तेन नार्चयेत् ॥ वसिष्ठस्मृति

इनकी हारीत स्मृति में लिखा है कि जिसके शरीर पर चक्रादि चिह्न न हों वह चाण्डाल और शव के समान है। शिवपूजन और भस्मधारण से ब्राह्मण शूद्र और शराबी तुल्य हो जाता है। इनकी पराशरस्मृति में लिखा है कि विना चक्रधर विप्र को खिलाने वाला अपने पितरों को मूत्र, विष्ठा, वीर्य खिला रहा हैं। इनके नारायणसार संग्रह में दस महर्षि, छ पुराण और छ स्मृतियां तामस हैं। इनकी भरद्वाजसंहिता में लिखा है कि पिता वैष्णव नहीं है तो उसकी सेवा मत करो। ब्रह्मा शिव सूर्य आदि देवों को मत पूजो। जिनके कण्ठ में तुलसी की माला है, बाहु में शंख चक्र का चिह्न है और ललाट में तिलक है वे शूद्र भी सबको पवित्र कर देते हैं। जनार्दन की भक्ति से और दो वैष्णव मंत्रों से हीन द्विज भी शूद्र हैं। ये शरीर को दागते समय ऋग्वेद का एक मन्त्र पढ़ते हैं। उसका अर्थ है, तुम तपस्वी बनो। शरीर को चक्रादि से दागो।

रुद्रार्चनेन विप्रस्तु शूद्रेण समतां व्रजेत् ।
भस्मधारणतो विप्रः सुरापो भवति ध्रुवम् ॥
अचक्रधारिणं विप्रं श्राद्धे यो भोजयिष्यति ।
रेतोमूत्रपुरीषादि स पितृभ्यः प्रयच्छति ॥
स जीवन्नेव चाण्डालो धर्मघ्नो ब्राह्मणाधमः ।
कणादं गौतमं शक्तिमुपमन्युं च जैमिनिम् ॥
दुर्वाससं च कपिलं मार्कण्डेयं बृहस्पतिम् ।
भार्गवं जमदग्निं च दशैतांस्तामसानृषीन् ॥
मात्स्यं कौर्मं तथा लिंगं शैवं स्कान्दं तथैव च ।
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि प्रचक्षते ॥
सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये न भक्ता जनार्दने ।
श्वपचोऽपि महीपाल विष्णुभक्तो द्विजाधिकः ॥

ये कण्ठलग्नतुलसीनलिनाक्षमाला ये बाहुमूलपारिचिह्नितशंखचक्राः।
ये वा ललाटपटले लसदूर्ध्वपुण्ड्रास्ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति ॥
पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते अतप्ततनूर्न तदामोश्नुते ७।३।१६

शैवमत

दुर्योधन का भेजा मूक नामक दानव वराह का रूप धारण कर तप में रत अर्जुन को मारने चला। शिव ने उसे मार डाला। उसी का अवतार शिवद्रोही मध्व है या मधु दानव है। पद्मपुराण के पातालखण्ड में शिव और भस्म की प्रशंसा है अतः इसका विरोधी उत्तरखण्ड प्रक्षिप्त है। देवी भागवत, बृहन्नारदीय, आश्वलायन आदि के मत में इन वैष्णव चिह्नों का धारण वेदविरुद्ध है। महाभारत के अनुसार श्रीकृष्ण शिव के भक्त हैं। आप शिवनिर्माल्य कह कर गंगा को भी अपवित्र कहते हैं, यह अनुचित है। शंकराचार्य ने शिव, विष्णु, राम, कृष्ण आदि सब देवों के स्तोत्र लिखे हैं। हमारी दृष्टि में शिव और विष्णु, एक ही ईश्वर के दो नाम हैं। जिन कथाओं में ब्रह्मा विष्णु को शिव से छोटा कहा गया है वे बाद की कल्पनायें हैं, हमें अमान्य हैं।

समन्वयवादी गोसाईं जी—राम महिमा

शंकर रामरूप अनुरागे नयन पंचदस अति प्रिय लागे
जगपेखन तुम देखन हारे विधि हरि शंभु नचावन हारे
उपजहिं जासु अंशते नाना विष्णु विरंचि शंभु भगवाना
विष्णु चारि भुज विधि मुख चारी विकट वेष मुखं पंच पुरारी शंकर रामरूप अनुरागे नयन पंचदस अति प्रिय लागे. जय राम रमारमणं शमनं भवताप भयाकुल पाहि जनम्
अवधेश सुरेश रमेश प्रभो शरणागत मांगत पाहि विभो
रघुनन्द निकन्दन द्वन्द्वघनं महिपाल विलोकिय दीन जनम्

हरिहि हरिता विधिहिं विधिता शिवहिं शिवता जो (रामने) दई।

गोसाईं जी के शिव के विवाह में बाराती खर, श्वान, सुअर, सियार मुख थे। मुख हीन, बहुमुख थे, ताजे रक्त से लथपथ थे और नग्न शिव को देख स्त्रियां भाग रही थीं पर पुराणों ने लिखा है—

वयं धन्याः स्त्रियः सर्वाः पुरुषाः सकला अपि। न श्रुतो वर इत्येवं
नास्माकं दृष्टिगोचरः। ये ये पश्यन्त्यदो रूपं तेषां वै सार्थकं जनुः ॥

अर्थात् आज हम सारे स्त्रीपुरुष धन्य हैं। हमने ऐसा सुन्दर वर न देखा था न सुना था। इन वरदेव और इस बरात के दर्शन से हमारा जन्म सार्थक हो गया (देखिये मेरा 'उमोद्वाह महाकाव्य)।

एक के स्थान में अनेक ईश्वर मानने वालों और सत्कर्म को छोड़ अनेक देवों की पूजा करने वालों को योगेश्वर कृष्ण ने सावधान किया है और श्री कबीरदास ने उनके वचनों का अनुवाद किया है। कृष्ण भगवान् नन्द बाबा से कहते हैं कि हे पिताजी! मनुष्य अपने स्वभाव के अधीन है और स्वभाव पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार बनता है। कर्मों के अनुसार ही वह भला बुरा शरीर, सुख दुःख और शत्रुमित्र पाता है अतः कर्म ही हमारा गुरु और ईश्वर है तथा ईश्वर एक है। जैसे अपने पति को छोड़ अनेक जारों के पास दौड़ने वाली व्यभिचारिणी नारी शान्ति नहीं पाती, ठीक उसी प्रकार सत्कर्म को छोड़ अनेक देवों की उपासना करने वाला मनुष्य कभी शान्त नहीं रहता।

देहानुच्चावचान् जन्तुः प्राप्योत्सृजति कर्मणा ।
शत्रुर्मित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः ॥
आजीव्यैकतरं भावं यस्त्वन्यमुपजीवति ।
न तस्माद् विन्दते क्षेमं जारं नार्यसती यथा ॥ श्रीमद्भागवत १०।२४
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः (गीता) ।
साहेब कहिये एक तो दूजा कह्यो न जाय ।
दूजा साहेब जो कहे वाद विडम्बन आय ॥
रही एक की भइ अनेक की वेश्या बहुत भतारी ।
कह कबीर काके संग जरिहै बहुत पुरुष की नारी ॥
नारि कहावै पीउ की रहै और संग सोय ।
जार मीत हिरदय बसै खसम खुसी का होय ॥
जनन मरन ते रहित है मेरा साहेब सोय ।
मैं बलि जावूं पीउ की जिन सिरजा सब कोय ।

हां, ईश्वर एक है पर ऐसे सन्त अनेक हैं जिनके अभाव में हम ईश्वर का ज्ञान और अनुग्रह नहीं पा सकते। हमारे लिये वे भी पूज्य हैं। निराकारवादी अनेक साकार ईश्वरदूत धरती पर न आये होते तो हम ईश्वर को नहीं जान पाते। वे हमारे गुरु और पूज्य हैं।

प्रथमोध्यायः

गणानां प्रियाणां निधीनां कवीनां प्रजानां पशूनां पतिं शंकरं त्वा ।
अजं हे वसो सिद्धिबुद्धीशमीडे विदेहं शिवं क्षेमलाभाकरं त्वा ॥ १ ॥

सब प्राणी ईश्वर के गण हैं पर सिद्ध पुरुषों को विशेष रुप से उनका गण कहा जाता है। ईश्वर उनके पति हैं। हमारे सब प्रियों के और सारी निधियों के पति हैं। निधियां (कोश) अनेक हैं। उनमें पद्म महापद्म शंख मकर कच्छप कुन्द मुकुन्द नील खर्व विशिष्ट हैं। पातीति पतिः। जो पालन संरक्षण करता है वह पति है। विद्वान् को कवि कहते हैं। गीता ८।९ में ईश्वर भी कवि हैं। हम प्रजा हैं, ईश्वर प्रजापति हैं, ब्रह्मा हैं। यजुर्वेद २३।१७ में सूर्य, अग्नि, वायु आदि देवों को पशु कहा गया है। पशु देव हैं, हमें कुछ देते हैं और ईश्वर पशुपति तथा हमारे शं (कल्याण) कर हैं। ईश्वर अज हैं पर कभी कभी जन्म भी लेते हैं। वेद में लिखा है, अजायमानो बहुधा विजायते। सुवर्ण, रत्न, औषध, ग्रहकिरण, राजा, देव, वायु और अग्नि आठ वसु (धन) हैं पर मुख्य वसु ईश्वर हैं। वे सर्वत्र बसे हैं और अणिमा महिमा गरिमा लधिमा प्राप्ति प्राकाम्य ईशित्व वशित्व नामक आठ सिद्धियों के स्वामी हैं। वे हमारी बुद्धि के प्रेरक और क्षेम तथा लाभ के आकर (कोष) हैं। उन्हें प्रणाम है।

गणानां त्वा गणपतिं प्रियपतिं निधिपतिं हवामहे ॥ यजुः २३।१९
प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते ॥ यजु ३१।१९
गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनाम् ॥ ऋग्वेद २।२३।१
निषुसीद गणपते त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम् । ऋग्वेद १०।११२।९

आजकल इन मन्त्रों से जिन गजानन गणेश की पूजा की जाती है उनका वर्णन वैदिक साहित्य में नहीं है। वेदों में २८ देवं २८ नक्षत्रों के स्वामी हैं पर उनमें गणेश जी नहीं हैं। गृह्यसूत्रों में, वेदों में, वाल्मीकि रामायण में और कालिदास के ग्रन्थों में शिव का वर्णन है पर गणेश का नहीं। महाभारत की कुछ प्रतियों में वे उसके लेखक कहे गये हैं पर उसके बाद उनकी कहीं चर्चा नहीं है। पुराणों में उनके जन्म की परस्पर विरूद्ध अनेक कथायें हैं और अनेक रूप हैं। उनसे सम्बन्धित मुद्गल आदि पुराणों में वे सब देवों के और शिव के भी पिता हैं। उनकी सिद्धि बुद्धि नाम्नी दो पत्नियां और क्षेम लाभ नामक दो पुत्र हैं। वस्तुतः ये चारों निराकार हैं और वास्तव गणपति ईश्वर ही हैं ॥ १ ॥

यमग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः परं ब्रह्म विप्रा उपेन्द्रं हरं वा ।
तमिन्द्रं विधिं नैकनामानमेकं शिवं सर्वगं नौमि विश्वंभरं त्वा ॥ २ ॥

विप्रगण जिन्हें अग्नि, यम, मातरिश्वा (वायु), परब्रह्म, उपेन्द्र (विष्णु) और हर कहते हैं, जिनके इन्द्र विधि आदि अनेक नाम हैं पर जो एक हैं, सर्वव्यापी हैं सारे विश्व का धारण भरण करते हैं उन शिव (मांगलिक) को प्रणाम है ॥ २ ॥

आजकल हमारे यहां ब्रह्मा, विष्णु, शिव नामक तीन ईश्वर माने जा रहे हैं। ये क्रमशः सृष्टि के उत्पादक, पालक, संहारंक कहे जाते हैं। वैष्णव विष्णु को और शैव शिव को बड़ा तथा दूसरे को छोटा कहते हैं पर सबसे अधिक संहार विष्णु भगवान् करते हैं। उन्होंने ही मधु कैटभ रावण कंस आदि को मारा है। इन तीन के अतिरिक्त महाविष्णु और परम शिव आदि भी हैं पर वस्तुतः ईश्वर एक हैं, उनके नाम अनेक हैं औंर शक्तियां अनेक हैं। ये शक्तियां देवों में और हममें भी हैं। यह सिद्धान्त वेद पुराण, दोनों को मान्य है।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः(ऋ-१।१६४।४६)॥ न द्वितीयो न तृतीयो न चतुर्थः। स एक एव। सर्वे देवा अस्मिन्नेकवृतो भवन्ति (अथर्व १३।४।१६) ॥ यो देवानां नामधा एक एव १७।२७॥ विश्वतश्चक्षुरुत देव एकः (१७।१९) तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ॥ तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ३२।१ एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति (कठोपनिषद् २।२।१२)॥
त्वं ब्रह्मा त्वं च विष्णुस्त्वं त्वं रुद्रस्त्वं प्रजापतिः ।
त्वमग्निर्वरुणो वायुस्त्वमिन्द्रस्त्वं सुधाकरः (मैत्र उप. ४।१२)
अहमेको नान्यः कश्चिन्मत्तो व्यतिरिक्तः। यो मां वेद स सर्वान् देवान् वेद। यो वै रुद्रः स ब्रह्मा विष्णुरिन्द्रः
सर्वम् । स एकस्तस्मै नमः (अथर्वशिर उपनिषत्) ॥
यः करोति त्रिदेवेषु भेदबुद्धिं नराधमः ॥
नरके स वसेन्नूनं यावदाचन्द्रतारकम् ॥

जलेशं धनेशं मृडं मन्मथेशं भवं शंभवं शक्तिरत्नाकरं त्वा ।
भगेशं भगं मंगलं मंगलेशं महेशं भजे साध्यसिद्धेश्वरं त्वा ॥ ३ ॥
नमाम्यर्यमन् विश्वकर्मन् विभोऽर्हन् अहिर्बुध्न्य वास्तोष्पते श्रीधरं त्वा ।
स्मराम्यप्सरःकिन्नरादित्यरक्षोमहाराजविद्याधराधीश्वरं त्वा ॥ ४ ॥
भजे मित्र दैत्येश यक्षेश पूषन् वसुत्वष्टृरुद्रादिदेवेश्वरं त्वा ।
खवाताग्निवार्भूमहाभूतनाथं नभोभूजलादिस्थभूतेश्वरन्त्वा ॥ ५ ॥

यो विष्णुः स स्वयं रुद्रः स विधिः स जनार्दनः ।
एतेषु योऽन्तरं ब्रूते स पापोऽस्ति विमूढधीः ॥
विष्णोर्भिन्नं तु पश्यन्ति ये शिवं च प्रजापतिम् ।
कुतर्कमतयो मूढाः पच्यन्ते नरकेषु ते ॥
एक एव जगद्रक्षणप्रलयोत्पादकृत्प्रभुः ।
स विष्णुः स शिवो धाता चेन्द्रो मित्रो यमो मरुत् ॥

हे परमात्मा! वरुण और कुबेर देव जल और धन के स्वामी कहे जाते हैं पर जल, वायु, अग्नि, धन आदि के वास्तव स्वामी तो आप ही हैं। आप मृड (सुखदाता), सारे भव (संसार) में व्याप्त, शंभव (कल्याण के उत्पत्तिस्थान) और सब शक्ति रूपी रत्नों के रत्नाकर (सागर) हैं। शक्तियां ही रत्न हैं। ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य, वीर्य, महिमा और प्रयास आदि अनेक भग हैं और आप भगेश हैं, भगदेव हैं, वेदमें आपका एक नाम मंगल है (असौ यस्ताम्रः सुमंगलः), आप माता सर्वमंगला के पति हैं, महेश हैं तथा साध्यों और सिद्धों के स्वामी हैं, आपको प्रणाम है ॥ ३ ॥ हे विभो (सर्वव्यापी) शिव! आप नियामक होने से अर्यमा हैं, विश्व के निर्माता हैं, अर्ह (पूज्य) हैं, अहिर्बुध्न्य हैं वास्तुपति हैं, श्री नाम्नी शक्ति के धारक हैं तथा अप्सरा, महाराजिक आदि देवजातियों के स्वामी हैं ॥ ४ ॥ आप मित्र, पोषक, यक्ष, दैत्य, आठ वसु, त्वष्टा, एकादश रुद्र आदि देवों के स्वामी हैं। आप आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी नामक पांच महाभूतों के तथा नभ, भूमि, जल आदि में स्थित भूतों (जीवों) के स्वामी हैं, आप को प्रणाम है ॥ ५ ॥

ददानं भजे सुष्ठुगन्धान् सुमादौ फलेऽन्ने रसान् खेऽनिले सुस्वरं त्वा
नमाम्यर्पयन्तं नरे पादपादौ गुणौघं जलादौ सुधानिर्झरं त्वा ॥ ६ ॥
स्मराम्यग्निसौदामनीतारकोल्कादिनेशादिकज्योतिषां भास्करं त्वा ।
वरेण्योरुभर्गोयुतं नौमि भर्गं शिवं त्र्यम्बकं च त्रिलोकेश्वरं त्वा ॥ ७ ॥
शरीरे स्थितं देवपुर्यष्टमूर्तिं समीरेऽम्बरे शम्बरे कौ चरं त्वा ।
सुधांशौ रयिं भास्करे प्राणरूपं प्रभो पावकं नौमि वैश्वानरं त्वा ॥ ८ ॥
त्वमुग्रोऽसि वायौ च रुद्रोऽसि वह्नौ च रवे भीम ईशानसंज्ञो दिनेशे ।
पशूनां पतिर्मानसे शर्व उर्व्यां भवश्चामृते त्वं महेशो निशेशे ॥ ९ ॥

हे प्रभो! आप ने पुष्प, चन्दन, कस्तूरी, कपूर आदि में सुगन्ध, फल अन्न घृत आदि में सुरस, आकाश और वायु में सुस्वर, मनुष्य वृक्ष आदि में अनेक गुण और जल वायु आदि में सुधाके निर्झर स्थापित किये हैं, आपको नमस्कार है ॥ ६ ॥ आप अग्नि, बिजली, तारा, उल्का, सूर्य आदि ज्योतियों के भास्कर (प्रकाशक) हैं। श्रेष्ठ और उरु (बहुत) भर्ग (तेज) से युत भर्ग हैं, तीनों लोकों के निवासी और स्वामी हैं ॥ ७ ॥ गीता (अध्याय ७ और १५) में कहा गया है कि जल का रस, सूर्य- चन्द्र की प्रभा, मनुष्यों का पौरुष, पृथ्वी का गन्ध, अग्नि का तेज, प्राणियों का जीवन, तपस्वियों का तप, बलवानों का बल और शरीर की उष्णता ईश्वर की शक्ति है। हमारा शरीर देवपुरी है और उसमें आप अष्टमूर्ति का वास है। आप निराकार, और साकार दोनों हैं। पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश सूर्य चन्द्र और आत्मा में बैठे हैं। चन्द्रमा में रयि (शक्ति) रूप से, सूर्य में प्राण रूप से और अग्नि में पावक (पवित्रकर्ता) रूप से बसे हैं। आप को प्रणाम हैं ॥ ८ ॥

(आदित्यः प्राणश्चन्द्रमा रयिः। यन्मूर्तममूर्तं तत्सर्वं रयिः। मूर्तिरेव रयिः। आदित्यो रश्मिषु प्राणान् धत्ते (प्रश्नोपनिषत् १।५,६)।)

वायु में स्थित आप का नाम उग्र है। आप अग्नि में रुद्र, आकाश में भीम, सूर्य में ईशान, आत्मा में पशुपति, पृथ्वी में शर्व, अमृत (जल) में भव और निशेश (चन्द्रमा) में महादेव रूप में स्थित हैं ॥ ९ ॥

नवद्वार्वती देवपूरष्टचक्रा तनूर्यास्त्ययोध्या तदन्त:सरन्त्वा ।
प्रकाशावृतेऽस्याः स्थितं चित्तनाके भजे द्वारकाकाश्ययोध्येश्वरं त्वा ॥ १० ॥
नमाम्युज्जयिन्या अवन्त्याश्च तन्वा मनोमूजवच्छैलगेहं सुरं त्वा ।
सहस्रारकैलासगं योगिवन्द्यं भजे सप्तपू:सर्वतीर्थेश्वरं त्वा ॥ ११ ॥
तनो: सूक्ष्मकोशेष्वसंख्येषु खादौ नमामीश चित्रव्यवस्थाकरं त्वा ।
श्रवोनेत्रनासोदरादावदृश्यं च संस्थापकं नौमि यन्त्रं वरं त्वा ॥ १२ ॥

वेदों का कथन है कि हमारा तन देवों की अयोध्या नाम्नी पुरी है। इसके निवासी देव अपने-अपने कामों में सदा लगे रहते हैं और आपस में कभी युद्ध नहीं करते। इस पुरी में नवद्वार हैं अत: यह द्वारका है। इसमें आठ चक्र हैं और दिव्य प्रकाश से आवृत इसके चित् रूपी नाक (स्वर्ग) में शिव स्थित हैं अत: इसे काशी भी कहते हैं। इसके भीतर वे आठो चक्रों में घूमते (सर) रहते हैं। उन द्वारकाधीश, काशीनाथ और अयोध्येश्वर को प्रणाम है ॥ १० ॥

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या । यस्यां हिरण्मय: कोष: स्वर्गो ज्योतिषावृत:
(अथर्ववेद १०।२)॥

मानव ईश्वर की सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। उसमें चेतना का पूर्णत्व है। ऐतरेयोपनिषत् (२।३) का कथन है कि देवों ने अपने निवास के लिये ईश्वर से स्थान मांगा तो उन्होंने गाय, अश्व आदि दिये पर वे उन्हें अच्छे नहीं लगे। अन्त में मनुष्य को मंगाया तो वे प्रसन्न हो कर उसमें बस गये। अग्नि वाणी में, वायुदेव प्राण में, आदित्य नेत्र में, चन्द्र हृदय में और अन्य देव अन्य अंगों में बसे। सारांश यह कि मानवदेह देवपुरी है।

यह शरीर अवन्ती और उज्जयिनी पुरी भी है। इसके द्वारा हमारा अवन और उज्जय होता है। इसका मन मूजवान् और सहस्रारचक्र कैलास पर्वत है। योगियों के आराध्य ईश्वर इन दोनों में रहते हैं। वे सात पुरियों और सब तीर्थों के स्वामी हैं। उन्हें नमस्कार है॥ ११ ॥

हे विश्वनाथ! हमारे शरीर में अगणित सूक्ष्म कोश स्थित हैं और उन सबों में एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। उन सबों में और ख (आकाश), वायु, सागर, पृथ्वी, अग्नि आदि में आप ने चित्र (विचित्र) व्यवस्था की है। सब ग्रह और असंख्य तारे एवं धूमकेतु आदि अपने अपने मार्गों में नियमित गति से घूम रहे हैं पर कभी टकराते नहीं। हमारे श्रवण, नेत्र, नासिका, उदर, मस्तिष्क, हृदय, नाडी,

श्रियं श्रीमतां नौमि तेजस्वितेजो धियं धीमतां साग्निमन्त्राध्वरं त्वा ।
ददानं यतिभ्यः कृतिभ्यः सतीभ्यः सुबुद्धिं शिवां वाक्पतिभ्यो गिरं त्वा ॥ १३ ॥
यथास्त्यूर्णनाभेस्तनौ तन्तुजालं मयूरस्य कोशे वपुः सुन्दरं वा ।
वटस्कन्धपर्णानि बीजेऽस्य तद्वज्जगत्कारणं नौमि विश्वोदरं त्वा ॥ १४ ॥

मलमूत्रस्थान, चक्र आदि में आप ने ऐसे वर (श्रेष्ठ) यन्त्र स्थापित किये हैं जो अदृश्य हैं पर उनके कृत्यों को देखकर चित्त चकित हो जाता है। नासिका सैकड़ों गन्धों को सूंघ कर उनके नाम बता देती हैं। कान में कोई दृश्य यन्त्र नहीं है पर वह हर ध्वनि के सूक्ष्म भेदों को जान लेता है। यही स्थिति नेत्र, उदर, बुद्धि आदि की भी है। हे प्रभो! जड़ प्रकृति ऐसी रचना नहीं कर सकती और करती है तो वह भी आप की ही माया है, शक्ति है, पत्नी है, पुत्री है, चेतन है। आप को बार-बार प्रणाम है ॥ १२ ॥

हे प्रभो! श्रीमानों की श्री, तेजस्वियों का तेज और बुद्धिमानों की धी आप ही हैं। आप ही अग्नि, मंत्र और यज्ञ आदि सब कुछ हैं। आप यतियों, कृतियों (कुशल विद्वानों) और सती नारियों को सुमति तथा वक्ताओं को सुवाणी देते हैं, आप को नमस्कार है ॥ १३ ॥

बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् । ७।१० ॥
अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ ९।१६ ॥
गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् । ९।१८ ॥ (गीता)

हे प्रभो! ऊर्णनाभि (मकड़ी) के देह में सारे तन्तुजाल बैठे हैं, वह उन्हें निकालती है और निगल जाती है। मयूर के अण्डे में उसका सुन्दर शरीर बैठा रहता है। वटवृक्ष के बड़े-बड़े स्कन्ध आदि उसके छोटे से बीज में बैठे रहते हैं, औषधियां पृथ्वी से पैदा होकर अन्त में उसी में समा जाती हैं, वैसे ही आप जगत् के कारण हैं और सारा विश्व आप के उदर में है, आप को प्रणाम है ॥ १४ ॥

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति ।
यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि तथाक्षरात् संभवतीह सर्वम् ॥
यथा न्यग्रोधबीजस्थः शक्तिरूपो महाद्रुमः ।
तथा हृदयबीजस्थं सर्वमेतत् चराचरम् (मुण्डकोपनिषत्) ॥

तिले तैलमिक्षौ सिता दघ्नि सर्पिर्यथास्ते तथा सर्वगं ब्रह्म नत्वा ।
स्वरूपस्य यस्योपमा नास्ति युक्ता भजे तं विरुपाक्ष विश्वोत्तरं त्वा ॥ १५ ॥
सुदीप्ताद्यथा पावकाद् विस्फुलिंगास्तथा त्वद्भवं वेद्मि सर्वां ससत्त्वम् ।
अवैमीश यत् सुन्दरं यच्च सत्यं शिवं शंकरं सर्वतत्त्वेऽसि तत्त्वम् ॥ १६ ॥
अपाणिश्रवोदृक्पदं यस्य गात्रं न शुक्लं न नीलं न बालार्करागम् ।
तमीडे त्रयीलोचनं ज्ञानदेहं विभो शंकर त्वां जने सानुरागम् ॥ १७ ॥
भजेऽहं त्रिलोकश्मशाने चरन्तं हरं सर्व भूतेश्वरं वीतरागम् ।
गुणात्मत्रिशूलान्वितं विश्वमूलं खलानां कृते बिभ्रतं कोपनागम् ॥ १८ ॥

तिल में स्थित तेल, ईख में स्थित सिता (चीनी) और दधि या दूध में स्थित सर्पि (घृत) की भांति जो ब्रह्मदेव सर्वव्यापी है, जिनके स्वरूप की कोई समुचित उपमा नहीं है उन विरुपाक्ष (रूप और इन्द्रियों से रहित) एवं विश्वोत्तीर्ण शिव को प्रणाम है ॥ १५ ॥

जैसे प्रदीप्त अग्नि से चिनगारियां निकलती हैं उसी प्रकार सारे सत्त्व और तारों ग्रहों आदि के तेज आप ही से उत्पन्न हैं अतः वे सब शुभ हैं। किसी ग्रह या तारा को अशुभ नहीं मानना चाहिये। हे ईश! मेरा मन कहता है कि सब तत्त्वों में जो सत्य, सुन्दर, शिव और शंकर है वह सब आप का ही अंश है ॥ १६ ॥ हे विभो! हमने आप के शुक्ल, नील और सूर्योदयकालीन सूर्यवत् लाल, तीन वर्ण सुने हैं किन्तु आप के मूल रूप में न हाथ हैं, न कान हैं, न नेत्र हैं, न पैर हैं। आप गात्रविहीन हैं। ज्ञान ही आप के तीन नेत्र हैं। आप विभु (सर्वव्यापी) हैं तथा अपने जनों पर सानुराग हैं ॥ १७ ॥

विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदी दिव्यचक्षुषे । श्रेयः प्राप्ति-
निमित्ताय नमः सोमार्धधारिणे (मार्कण्डेयपुराण) ॥

तीनों लोकों में प्रतिक्षण अनेक जीव मर रहे हैं अतः वे श्मशान हैं और आप उनमें घूमते रहते हैं। प्राणियों को भूत और पृथ्वी, जल आदि पांच तत्त्वों को महाभूत कहा जाता है। आप भूतेश्वर हैं। सत्त्व, रज, तम, तीन गुण ही आप के त्रिशूल हैं। दुष्टों को दण्ड देने के लिये आप त्रिशूल और नाग धारण करते हैं। आपका कोप ही नाग है। आप विश्व के मूल और वीतराग हैं, आप को प्रणाम है ॥ १८ ॥

श्मशानं चापि संसारः गुणत्रयमयं शूलम् ।
भूतयः कथिता भूतिर्भूता जीवा धरादिकाः (शिवपुराण) ॥

सहस्राक्षपादं न पश्यामि गुह्यं विजानामि नो त्रैतमद्वैतवादम् ।
अदृश्यत्रिपादं नमाम्यप्रमेयं विराजं शिवं सर्वदृश्यैकपादम् ॥ १९ ॥
विदुर्नो बुधा धूतपापा दुरापं यमव्यक्तमाश्चर्यवद्विश्वहेतुम् ।
तमज्ञोऽहमज्ञानमेनो विनेतुं दयासागरं नौमि संसारसेतुम् ॥ २० ॥
ग्रहर्क्षादिकक्षाहिभिर्वेष्टितागं हरित्केशमाशाम्बरं व्योमकेशम् ।
नमामीलितैरीड्यदेवासुरेशं महादेव शंभो भवेशं महेशम् ॥ २१ ॥
निराकारनानाविधाकारवेषं निराधारदासव्यथामारकेशम् ।
जगत्कारकं धारकं नारदं त्वां शिवशंकरं तारकं तारकेशम् ॥ २२ ॥
द्रवं वारि नद्यां नगाग्रे कठोरं तदेवाणु शीतानिलेऽक्ष्णा न दृश्यम् ।
विरूपाक्ष वन्दे तथा विश्वरूपं सतां शंकर त्वामदृश्यं च दृश्यम् ॥ २३ ॥

हे प्रभो! मैं अद्वैत, द्वैत, त्रैत आदि वादों का रहस्य नहीं जानता पर वेद में पढ़ा है कि आप को सहस्रों शीर्ष नेत्र, पद आदि हैं तथा आप विराट् और गुह्य दोनों हैं। आप असीमित हैं, हम जो देख रहे हैं वह आप का एक पाद है और जिसे नहीं जानते वह तीन पाद है ॥ १९ ॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥

आप इस आश्चर्यजनक विश्व के हेतु (उत्पादक) हैं। आप को बड़े-बड़े पण्डित और निष्पाप सन्त भी पूरा नहीं जान सके क्योंकि आप दुराप हैं। फिर भी मैं अपने अज्ञान और अपराध को समाप्त करने के लिये आप दयासागर और संसारसागर के सेतु की शरण में आया हूं ॥ २० ॥ आप का शरीर ग्रह, नक्षत्र आदि की कक्षा रूपी सर्पों से आवेष्टित है। दिशायें और आकाश आप के केश हैं और दिशायें ही वस्त्र हैं। आप इसी कारण दिगम्बर कहे जाते हैं। आप पूजितों के पूज्य, देव असुर सब के स्वामी तथा भवेश और महेश हैं। हे महादेव शंभो। मैं आपकी शरण में हूं ॥ २१ ॥ आप निराकार होते हुये भी समय पर अनेक आकार और वेष धारण कर लेते हैं क्योंकि निराधार दासों की व्यथाओं के मारकेश हैं। जगत् के कारक ही नहीं, धारक और नारद (सुखद) भी हैं। हमारे तारक ही नहीं, तारकों के स्वामी और तारकासुर के मारक हैं ॥ २२ ॥ हे नाथ! आप रूप और इन्द्रियों से रहित (विरुपाक्ष) होने पर भी विश्वरूप हैं। निराकार और साकार दोनों हैं। शीतल वायु में जल अदृश्य है, सूक्ष्म है पर वही नदी में द्रव है, दृश्य है तथा पर्वत के शिखर पर कठोर हिम हो जाता है। यही स्थिति आप के रूपों की है।

महत्ताण्डवं यस्य शम्पाभ्रनादः सझंझानिलस्तं नटाधीश्वरं त्वा ।
पयोदाहिमाल्यावृतं भूतिभूतिं दधानं भजे मेघढक्काकरं त्वा ॥ २४ ॥
घनान् पक्षिपुर्हस्तिरक्षोऽद्रिकल्पान् विभित्वा ददानं शिवं पुष्करं त्वा ।
नमाम्यन्धकारिं गजारिं पुरारिं गिरित्रं गिरीशं च वीरेश्वरं त्वा ॥ २५ ॥

इतनी बड़ी साकार सृष्टि के रचयिता आप का साकार होना असंभव नहीं है ॥ २३ ॥

झंझावात से युत शम्पा (विद्युत्) और अभ्र (मेघ) का नाद जिनका ताण्डव नृत्य है, पयोद (मेघ) रूपी अहियों (सर्पों) की माला से जो भूषित हैं, नाना प्रकार की भूतियां (ऐश्वर्य) ही जिनकी भूति (भस्म) हैं तथा जो मेघ रूपी ढक्का (डमरु) को धारण करते हैं उन नटराज को प्रणाम है ॥ २४ ॥ वेदों में वायु, बिजली और वर्षा के योग को शिव का ताण्डव नृत्य कहा गया है। वायु में संगीत है और वर्षा का जल शिव का पसीना है। पुराणों का कथन है कि पहले पर्वतों और अश्वों को पंख थे, इन्द्र ने उन्हें काट दिया पर वस्तुतः मेघ ही पर्वत और अश्व हैं। उनकी आकृतियां पक्षी, पुर, हाथी, राक्षस, अद्रि (पर्वत) आदि सदृश भी होती हैं। रुद्र (या इन्द्र) उनका भेदन कर शिव (पवित्र) पुष्कर (जल) देते हैं। इसी से वे अन्धकारि, पुरारि, गजारि, आदि कहे जाते हैं। इन्द्र भी इसी से पुरन्दर, वृत्रघ्न, शम्बरारि आदि कहे जाते हैं। रुद्र मेघरूपी गिरियों (पर्वतों) में शयन करते हैं, उनमें बैठ कर भक्तों का त्राण करते हैं इसलिये गिरित्र गिरिश आदि कहे जाते हैं। उन वीरेश्वर को प्रणाम है ॥ २५ ॥

हस्काराविद्युतस्पर्यतो जाता अवन्तु नः । मरुतो मृडयन्तु नः १।२३।१२॥ आते पितर्मरुतां....रुद्र प्रजाभिः २।३३।१॥ वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ५।५८।७ रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ५।५९।८ त्वं तमिन्द्र पर्वतं वज्रेण पर्वशश्चकर्तिथ । अवासृजोऽपः १।५७।६॥ नवतिं नव च पुरः शम्बरस्य २।१९।६॥ शतं शम्बरस्य पुरः २।१४।६॥ पंचाशत् कृष्णा निवपः सहस्रात् ४।१६।१३॥ यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तम् २।१२।११ जघान वृत्रं स्वधितिर्वनेव रुरोज पुरो अरदन्न सिन्धून् ।
बिभेद गिरिं नवमिन्न कुभं १०।८९।७ (ऋग्वेद) ॥

भिषग्राज वाताम्बुभूखादिगानां विषाणां बहूनां नमाम्यद्मरं त्वा ।
तमोभाम्बुवातान्नदुग्धौषधादौ मधुस्थापकं चामृतत्वेश्वरं त्वा ॥ २६ ॥
घनाद्रिस्थमीढुष्टमार्द्रेश साधोः कृते नौमि पीयूषधाराधरं त्वा ।
अघोरं च मृत्युंजयं चाशुतोषं च शंभुं दयाया महासागरं त्वा ॥ २७ ॥
म्रियन्ते समे प्राणिनो यत्र तस्मिन् भ्रमन्तं त्रिलोकश्मशानेऽमरं त्वा ।
करे बिभ्रतं द्योकपालं च वज्रं कपालिन्नमामि क्षरेष्वक्षरं त्वा ॥ २८ ॥

हे वैद्यनाथ! आप वायु, जल, पृथ्वी, आकाश आदि में स्थित अनेकों विषों के अद्मर (भक्षक) हैं और आप ने अन्धकार, प्रकाश, जल, वायु, अन्न, दूध, औषध आदि में मधुओं की स्थापना की है। अमृतत्व के स्वामी आप को प्रणाम है॥ २६॥

मधु वाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ।
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ।
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमानस्तु सूर्यो माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ यजुर्वेद १३।२९

हे प्रभो! आप घन (मेघ) रूपी पर्वतों में स्थित मीढुष्टम (आनन्दवर्षक) हैं, पृथ्वी को सर्वप्रथम आर्द्र करने वाली दयावती माता आर्द्रा (तारा) के स्वामी हैं और साधुओं के लिये पीयूष के धाराधर (मेघ) हैं, अघोर हैं, मृत्युंजय हैं, आशुतोष हैं, कल्याणप्रद हैं तथा दया के महासागर हैं। आप को प्रणाम है ॥ २७ ॥

आपो हिष्ठा मयोभुवः । यो वः शिवतमो रसः । उशतीरिव मातरः । अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम् । देवीरापः (यजुर्वेद) । आर्द्रया रुद्र एति प्रथमानः (तैत्तिरीय ब्राह्मण) ॥

त्रिलोक एक श्मशान है, सब प्राणी इसी में मरते हैं और इसमें आप अमर शिव सदा घूमते रहते हैं। द्यो (आकाश) रूपी कपाल और वज्र (विद्युत्) आपके हाथ में है। इसी से कपाली और वज्री कहे जाते हैं। आप अक्षर (शाश्वत, अमर) हैं और क्षरों (नश्वरों) में स्थित हैं। आपको प्रणाम है ॥ २८ ॥

श्मशानं चापि संसारस्तद्वासी कृपयार्थिनां (शिवपुराण) ॥
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते (गीता) ॥

असुर्यं वराहं दिवो यज्ञसाधं ह्वयामीश मेघेभचर्माम्बरं त्वा ।
श्रिया श्रेष्ठमीडे मयोदं जनानां वसुं देवतानां चरे स्थावरं त्वा ॥ २९ ॥
अहोरात्रनेत्राज्यनासानिलात्मन् चितिस्कन्धवेदत्वचं सूकरं त्वा ।
भजे सोमरक्ताग्निजिह्वानिलात्मन् हरे यूपदंष्ट्रं च सामस्वरं त्वा ॥ ३० ॥
कुमार्गे रते हृन्मृगे कामनार्ते नभोगे क्षिपन्तं त्रिकाण्डं शरं त्वा ।
भजे हे मृगव्याध सश्वन् पिनाकिन् हरं दुष्कृतां गर्वभूत्योर्हरं त्वा ॥ ३१ ॥

हे ईश! आप आकाश के वराह, असुर्य (महावीर), यज्ञसाधक और मेघ रूपी इभ (गज) के चर्मधर हैं। वह आप का अम्बर (वस्त्र) है। आप सर्वश्रेष्ठ श्रीमान्, जनों के आनन्दप्रद, देवों के सर्वश्रेष्ठ धन और चरों में स्थिर हैं ॥ २९ ॥

त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वंकुं कविमवसे निह्वयामहे १।११४।४
दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं हस्ते बिभ्रद् भेषजा शर्म वर्म १।११४।५
ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्न वा योषद्रुद्रादसुर्यम् २।३३।९
श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो २।३३।३
अर्हन्निदं दयसे विश्वमंभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति २।३३।१०
भिषक्तमं त्वां भिषजां शृणोमि २।३३।४ ऋदूदरः २।३३।५
भूरेर्दातारं सत्पतिम् २।३३।१२ (ऋग्वेद) ॥

अहोरात्र ही जिनके नेत्र हैं, यज्ञघृत ही नासिका है, वायु ही आत्मा है, चिति (वेदी) ही स्कन्ध है, वेद ही त्वचा है, सोमरस ही रक्त है, अग्नि ही जीभ है, यज्ञ ही मुख है, यूप (खंभा) ही दंष्ट्रा है, और सामवेद ही स्वर है, इन सूकर हरि को प्रणाम है ॥ ३० ॥

वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः ।
अग्निजिह्वो दर्भरोमा सामघोषस्वनो महान् ॥
अहोरात्रेक्षणो दिव्यश्चाज्यनासो महातपाः ।
दक्षिणाहृदयो योगी वाय्वात्मा सोमशोणितः ॥
भागवत ३।१३ हरिवंश पुराण ३।३४

हृदय रूपी चंचल मृग कामनाओं का दास होकर कुमार्ग में रत है और कल्पनाओं के आकाश में दौड़ रहा है। वह अनेक मानस कुयज्ञों की योजना बनाता है किन्तु पाप का आधिक्य हो जाने पर शिव मृगव्याध बन जाते हैं, उसके उदर में त्रिकाण्ड शर (बाण) चलाते हैं, और उनके साथ दो श्वान रहते हैं। वे

गुणात्मत्रिशूलान्वितं सूक्ष्मचारैर्युतं नौमि वातान्नवर्षाशरं त्वा ।

नमामि त्रिलोकस्थनानामृतंदं खभूद्योस्थरक्षोहणं पुर्दरं त्वा ॥ ३२ ॥

दुष्कर्मियों के गर्व और भूति (ऐश्वर्य) को हर लेते हैं। उन क्रोधरूपी पिनाक को धारण करने वाले हर को प्रणाम है ॥ ३१ ॥ आकाशस्थ रोहिणी, मृगशीर्ष, आर्द्रा आदि नक्षत्रपुंजो की आकृतियों के आधार पर प्राचीन कवियों ने भांति-भांति की कल्पनायें की हैं। उन्होंने रोहिणी को मृगी, मृगनक्षत्र को मृग, उसके बीच के तीन तारों को त्रिकाण्ड बाण, उससे पूर्व के तेजस्वी तारे को व्याध शिव, उसके पास के दो तारों को दो श्वान और अन्य दो तेजस्वी तारों को शिवपत्नी आर्द्रा कहा है। लिखा है कि क़ामी ब्रह्मा ने अपनी कन्या सरस्वती पर आक्रमण किया तो वह मृगी बन कर भागी। ब्रह्मा ने मृग बन कर पीछा किया तो शिव ने उनके उदर में त्रिकांड बाण मारा किन्तु महाभारत का इसके विपरीत यह कथन है कि शिव ने एक कुयज्ञ पर बाण चलाया तो वह यज्ञ मृग बन कर अग्नि के साथ आकाश में भाग गया। वह दृश्य आज भी दृश्य है।

ततः स यज्ञं विव्याध रौद्रेण हृदि पत्रिणा ।
अपक्रान्तस्ततो यज्ञो मृगो भूत्वा सपावकः ॥
स तु तेनैव रुपेण दिवं प्राप्य व्यराजत ।
अन्वीयमानो रुद्रेण युधिष्ठिर नभस्तले ॥

महाभारत सौप्तिक पर्व अध्याय १८

सारांश यह कि शिव कुसंकल्प वाले मनोमृग और कुयाग पर बाण चलाते हैं, ब्रह्मा पर नहीं। ब्रह्मा शिव से भिन्न नहीं है। सारा सौन्दर्य ब्रह्मा का बनाया है अतः वे सरस्वती का सौन्दर्य देख कामातुर नहीं होते। वस्तुतः सरस्वती (विद्या) निराकार है।

हे प्रभो! सत्त्व, रज, तम नामक तीन गुण ही आप के त्रिशूल के तीन फल हैं। तीनों लोकों में आप के अनेक सूक्ष्म गुप्तचर घूम रहे हैं। वायु, अन्न और वर्षा ही उनके और आप के तीन बाण हैं। आप तीनों लोकों में स्थित अनेक प्रकार के अमृत हमें देते हैं तथा आकाश, भूमि और द्युलोक में स्थित अनेक राक्षसपुरियों

खलेभ्यः खरं भैरवं भीममुग्रं भजे हे महाकाल घोरं दरं त्वा ।
वधच्छद्मचौर्यानृतादौ रतेभ्यो गरं नौमि तेषां मुदो घस्मरं त्वा ॥ ३३ ॥
पदख्यातिवित्ताद्यसद्बन्धनेभ्यो जनानां सदा मुक्तये तत्परं त्वा ।
त्रयीलोचनं ज्ञानदेहं हृदिस्थं नमामीश दासावने सत्वरं त्वा ॥ ३४ ॥
उषामस्तकार्काक्षिसंवत्सरात्मन् लतावृक्षरोमन् स्रवन्तीशिरं त्वा ।
द्युपृष्ठं भकुल्याश्वमीडेऽनिलासुं तडिज्जृभकं व्यात्तवैश्वानरं त्वा ॥ ३५ ॥
हरित्पार्श्वमृत्वंगमीडेऽभ्रमांसं घनध्वानकम्पान्तरिक्षोदरं त्वा ।

का विनाश करते हैं। इसी से पुरन्दर, पुरान्तक और त्रिपुरारि कहे जाते हैं। आप को नमस्कार है। (बाणों की ही भांति शिव के पिनाकादि भी चिन्त्य है) ॥ ३२ ॥

नमोस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषवः १६।६५
नमोस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः १६।६६
नमोस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः १६।६४
गुणत्रयमयैरेभिस्त्रिभिरग्रैस्तरस्विभिः । त्रिगुणं
त्रिपुरं हन्ति त्रिशूलेन त्रिलोचनः (शिवपुराण) ॥

हे महाकाल! आप खलों के लिये खर (तीक्ष्ण), भैरव, भीम, उग्र, घोर और दर (भय) हैं तथा वध, कपट, चोरी, मिथ्यात्व आदि में रत पापियों के लिये गर (विष) धारक हैं। उनके प्रमोद के घस्मर (भक्षक) हैं। आप को प्रणाम है ॥ ३३ ॥ हे विश्वनाथ! पदवी, ख्याति, धन आदि असत् बन्धनों से अपने जनों को मुक्त करने के लिये आप सदा तत्पर रहते हैं और दासों के अवन (संरक्षण) में त्वरा (शीघ्रता) करते है। आप हमारे हृदयों में स्थित हैं, तीन वेद ही आप के तीन नेत्र हैं और विशुद्ध ज्ञान ही आप का शरीर है आपको प्रणाम है ॥ ३४ ॥

विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे (मार्कण्डेयपुराण) ।
ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति (गीता) ।
तं नामरूपम्हि असज्जमानं अकिंचनं नानुपतन्ति दुःखा (धम्मपद) ।

ईश्वर आशु (शीघ्र) चलने वाले अश्व हैं और उनका ब्रह्माण्ड रूपी देह अश्वत् (फूला) है। उषा उनका मस्तक है, सूर्य नेत्र है, संवत्सर आत्मा है, आकाश पीठ है, लतावृक्ष रोम हैं, स्रवन्ती (नदियां) शिरायें (नाड़ियां) हैं, भ (नक्षत्र) कुल्य

अहोरात्रपादं धरापादपीठं भमासादिसन्धिं सुभाषागिरं त्वा ॥ ३६ ॥

श्रुतं तेऽश्वनाम्नः सदाचारतोऽर्चा मते योगिनामस्ति यागोऽश्वमेधः ।

महान् दिग्जयश्चास्ति चित्ते स्थितानां असद् भावनानां निरोधो निषेधः ॥ ३७ ॥

सदाचारिणामुत्तमोस्त्यात्मयागः प्रभूतार्थसाध्याध्वरेभ्यः सुराणाम् ।

विनाप्यश्वमेधं सदाचारवन्तो लभन्तेऽनुकम्पां शिवस्यामराणाम् ॥ ३८ ॥

ब्रवीति श्रुतिर्माऽत्र हन्या द्विपादं पशुं वा मखे ते पशुस्त्वस्ति भानुः ।

श्रुतौ विष्णुरेवास्ति यज्ञश्च तस्मिन् पशुर्मातरिश्वास्ति होता कृशानुः ॥ ३९ ॥

(अस्थियां) हैं, वायु प्राण है, बिजली जंभाई है और वैश्वानर (अग्नि) व्यात्त (खुला मुख) है ॥ ३५ ॥

हरित् (दिशायें) दो पार्श्वं हैं, ऋतुयें अंग है, अभ्र (मेघ) मांस है, मेघ की गर्जना शरीरकम्प है, आकाश उदर है, दिनरात दो पाद हैं, पृथ्वी पैरों का आसन हैं, नक्षत्र मास शरीर की गांठे हैं और सारे सुशब्द उनकी वाणी हैं। उन अश्वरूपी जगन्नाथ को प्रणाम है ॥ ३६ ॥

उषा अश्वस्य शिरः सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणो व्यात्तमग्निः संवत्सर

आत्मा द्यौः पृष्ठमन्तरिक्षमुदरं दिशः पार्श्वे ऋतवोंगानि मासाः

पर्वाणि नक्षत्राण्यस्थीनि नभोमांसं वनस्पतयो लोमानि । बृहदारण्यकोपनिषत् १।१।१

हे परमेश्वर! मैने योगियों से सुना है कि अश्व नाम वाले आपका अपने सदाचाार से पूजन ही अश्वमेघ यज्ञ है और चित्त में स्थित असत् भावों का निरोध एवं निषेध ही महान् दिग्विजय है ॥ ३७ ॥ जिन देवयागों में बहुत धन, सामग्री और सेवकों की आवश्यकता पड़ती है उनकी अपेक्षा सदाचारियों का आत्मयाग श्रेष्ठ हैं। सदाचारी अश्वमेघ किये विना उसका रहस्य जान कर परमात्मा और देवों की कृपा प्राप्त कर लेते हैं। शतपथ ब्राह्मण (७।५।२) का कथन है कि सत्कर्म में तत्पर आत्मयाजी देवयाजी से श्रेष्ठ हैं ॥ ३८ ॥ वेद कहते हैं कि इन यज्ञों में द्विपादों और पशुओं की हत्या मत करो। तुम्हारे पशु (देव) तो भानु, मरुत् आदि हैं। उनके द्वारा यजन करो। वेद में विष्णु ही यज्ञ है, वायु पशु है और अग्नि होता है ॥ ३९ ॥

यजुर्वेद ने अनेक मंत्रों में कहा है कि गाय, एक खुर वाले अश्वादि, भेंड बकरी ऊर्णायु, द्विपाद आदि की हिंसा मत करो। पशु देव हैं, वे हमें कुछ देते हैं। अग्नि, सूर्य और वायु पशु हैं, इनका यज्ञ करो। सबसे बड़े पशु विष्णु हैं और वे यज्ञ एवं

वसन्तो घृतं ग्रीष्म इध्मो हविष्यं शरद्यस्य वन्दे तमाद्याध्वरं त्वा ।
बुधा यं विदित्वा लभन्तेऽतिमृत्युं भजे चेतनानां तमन्तश्चरं त्वा ॥ ४० ॥
समाधौ रता आत्मनात्मानमित्वा सुधीग्राह्यलोलेन्द्रियागोचरं त्वा ।
प्रपश्यन्ति यं ज्ञाननेत्रेण धीरास्तमीडे महादेवमाभास्वरं त्वा ॥ ४१ ॥

पशुपति हैं। यज्ञ से यज्ञ करो। देव यही करते हैं। पुरुष (ईश्वर) रुपी पशु को अपने हृदय रूपी यूप में बांध कर देव गण यज्ञ करते हैं। तुम भी वही करो ॥ ३९ ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः । देवा यज्ञं तन्वाना अबघ्नन्
पुरुषं पशुम् ३१।१५॥ अग्निः वायुः सूर्यः पशुरासीत् तेनायजन्त (२३।१७)॥ अश्वं
गां अविं द्विपादं एकशफं ऊर्णायुं मा हिंसीः (यजुर्वेद १३।४२-५०)॥

उन आदि यज्ञ विष्णु को नमस्कार है जिनके यजन में वसन्त ऋतु ही घृत था। ग्रीष्म ऋतु ही इध्म (ईंधन) था और शरद् ही हविष्य थी। जिन्हें जान लेने पर विद्वान् नाना प्रकार की मृत्युओं से मुक्त हो जाते हैं। उन्हें यह बोध हो जाता है कि यज्ञेश विष्णु सबके हृदय में बैठे हैं अतः किसी की हिंसा नहीं करनी चाहिये ॥ ४० ॥

यत्पुरूपेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। वसन्तोस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद् हविः ॥ सप्तास्यासन् परिधयः त्रिःसप्तसमिधः कृताः (यजुः ३१।१५)॥

समाधि में रत योगी अपने प्रयास से आत्मतत्व को जान लेते हैं और ज्ञानदृष्टि से आप के उस स्वरूप को देखते हैं जो चंचल इन्द्रियों द्वारा अज्ञेय है, सद्बुद्धि से ग्राह्य है। आभास्वर (तेजस्वी) है, और महादेव है। उसे नमस्कार है ॥ ४१ ॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ६।२०
सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ६।२१
न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ११।८
बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ५।२१ (गीता)
न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्

श्वेताश्वतरोपनिषत् ४।२०

नरोऽवाप्य यं चाल्यते नोरुदुःखैर्न लाभं यतो मन्यतेऽन्यं वरं वा ।
तमौत्सुक्यमुत्साहमृद्धिं ददानं भजे ध्यानगम्यावधूतेश्वरं त्वा ॥ ४२ ॥
विमर्शप्रकाशात्मकं वामदेवं कृशं नौमि भट्टारकं पीवरं त्वा ।
क्रियानन्दतृड्ज्ञानचिच्छक्तिमन्तं रतं पंचकृत्येषु मायेश्वरं त्वा ॥ ४३ ॥

मनुष्य आप को पा लेने पर महान् कष्टों से भी विचलित नहीं होता और उस स्थिति को सर्वश्रेष्ठ लाभ समझने लगता है। हे अवधूतेश्वर! आप का यह बोध ध्यान से प्राप्त होता है। उस स्थिति में आप अपने साधक भक्त को उत्सुकता, उत्साह और समृद्धि देते हैं ॥ ४२ ॥

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः । यस्मिन्
स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते (गीता ६.२२) ॥

परमात्मा शिव के दो रूप हैं। विमर्शमय और प्रकाशमय। विमर्श सृष्टि रचता है और प्रकाश सबको प्रकाशित करता है। परमशिव महेश्वर हैं और उनमें अगणित शक्तियां हैं, जिनमें पांच मुख्य हैं। क्रिया, आनन्द, इच्छा, ज्ञान, चेतना। ये शिव से पृथक् नहीं रहतीं। शिव शक्तिमय हैं और वामदेव हैं। वे अपने गुणों और शक्तियों का वमन करते हैं, प्रकाशन करते हैं। गुणी को अपनी शक्तियों के प्रकाशन में आनन्द मिलता है। शिव सदा सक्रिय रहते हैं। वे अणुतम और विशालतम हैं। कृश भी हैं और पीवर भी। दृश्य और अदृश्य दोनों हैं। उनका एक रूप विश्वमय है और दूसरा इन्द्रियातीत, विश्व से परे, विश्वोत्तीर्ण। विश्व उनका शरीर है। यह रूप मायामय है, सर्जनात्मक है। माया शिव की शक्ति है, वे माया के स्वामी हैं। वह सबको मापती है। मायामय रूप सकल है। शिव की चित् या चिति शक्ति के पराशक्ति, परावाक्, स्पन्द, स्फुरता आदि कई नाम हैं। शिव मकड़ी की भांति अपने में से सामग्रियां निकाल कर सृष्टि रचते हैं, प्रकृति से कुछ नहीं लेते। वे सृष्टि, स्थिति, संहार, विलय और अनुग्रह नाम के पांच कर्म करते हैं (इनमें पांच देवों की आवश्यकता नहीं पड़ती) संहार में विनाश नहीं होता, संहृति होती है, सब कुछ समेट लिया जाता है। सब व्यक्त अव्यक्त (सूक्ष्म) हो जाते हैं। शिव भट्टारक (अनुग्रहकारी) हैं (राजा और देव को भी भट्टारक कहते हैं) उनकी वामा शक्ति विश्व को उनके बाहर फेंकती है। शिव के पास विष है। सृष्टि को वही विकसित

नमाम्यब्धिकुक्षीन्दुहृद्धर्मवत्सं प्रभो देवबाह्योऽनुकम्पाधरं त्वा ।
स्वामायास्मितं विश्वदेहाश्विनासं जगत्प्राणगन्धर्वगीतस्वरं त्वा ॥ ४४ ॥
भगा एव लीलाम्बुजं सांख्ययोगौ श्रुतेः कुण्डले तं महःकन्धरं त्वा ।
भजे सत्क्रियाचामरं धर्मतूणं नभःश्रीपतिं वेदपीताम्बरं त्वा ॥ ४५ ॥
सधर्मः प्रबोधोस्ति यन्नाभिपद्मं गदा यस्य कौमोदकी शक्तितत्त्वम्
रसश्चांभसः पांचजन्योऽस्ति शंखः सुचक्रं च यस्यास्ति तेजश्च सत्त्वम् ॥ ४६ ॥
प्रकृत्यात्मिका शेषशय्या च कालो धनुर्यस्य शार्ङ्गो यशस्तालवृन्तम्
तमोंकारयज्ञोपवीतं विराजं हरिं खत्वचं नौमि चन्द्रांशुदन्तम् ॥ ४७ ॥
तमीडे मणिः कौस्तुभो यस्य शक्तिः स्थिता वत्सके वन्यमालास्ति माया ।
त्रिवेदात्मको यस्य यानं सुपर्णः खतत्त्वं कृपाणः खलक्ष्मीश्च जाया ॥ ४८ ॥

करता है (विष शब्द विष् धातु से बना है) विष् का अर्थ है फैलना। भट्टारक शिव को और उनकी शिवा शक्तियों को बार बार प्रणाम है (प्रत्यभिज्ञादर्शन)॥ ४३ ॥

सृष्टिसंहारकर्तारं विलयस्थितिकारकम् अनुग्रहकरं
देवं प्रणतार्तिविनाशनम् (प्रत्यभिज्ञाहृदय कारिका) ॥
अणोरणीयान् महतो महीयान् (कठोपनिषत्) ॥ ४३ ॥

श्रीमद्भागवत (२११, १२।११) का कथन है कि सागर ही ब्रह्माण्ड रूपी विष्णु का उदर है, चन्द्रमा ही हृदय है, धर्म ही वक्षस्थल है, देवगण ही बाहु हैं, अनुकम्पा ही अधर है और माया ही मुस्कराहट है।

ब्रह्माण्ड ही देह है, अश्विनौ ही नासा के दो छिद्र हैं और वायु ही गन्धर्वों का गीत है, उनका स्वर है ॥ ४४ ॥ ऐश्वर्य, धर्म, यश आदि भग ही लीला के कमल हैं, सांख्य और योग शास्त्र ही कानों के दो कुण्डल है, महर्लोक ही कन्धा है, सत्कर्म ही चंवर है, धर्म ही तरकस है, आकाश की शोभा ही श्री पत्नी है और वेद ही उनका पीताम्बर है ॥ ४५ ॥ धर्मसे युत ज्ञान ही नाभि का कमल है, शक्तितत्व ही कौमोदकी गदा है, जल का रस ही पांचजन्य शंख है और तेज तथा सत्त्व ही सुदर्शनचक्र है ॥ ४६ ॥ प्रकृति ही शेषशय्या है, काल ही शार्ङ्ग धनुष है, यश ही पंखा है, ओंकार ही यज्ञोपवीत है, आकाश ही त्वचा है और चन्द्रकिरणें ही दांत हैं। उन विराट हरि को प्रणाम है ॥ ४७ ॥ जिनकी शक्ति ही कौस्तुभमणि है, माया ही वक्षस्थल पर स्थित वनमाला है, वेदत्रयी ही गरुड़ वाहन है,

विशुद्धिर्धियो यस्य पूजा च दीक्षा भयं दुष्कृतात्पार्षदा आगमाद्याः।
प्रवेशप्रदाः पत्तने द्वारपाला बुधास्तापसाः सन्ति नुः संयमाद्याः ॥ ४९ ॥
नभो यस्य नाभिश्च पातालमंघ्रिस्तपो यस्य भालं च सन्ध्यास्ति वासः।
उरः स्वर्गलोकोऽस्ति हार्दं च दन्ता नगा अस्थिसंघाश्च लीलास्ति हासः ॥ ५० ॥
कटेः सन्त्यधः संस्थिताः सप्तलोकाः प्रभोर्यस्य विष्णोर्विराजोऽतलाद्याः।
तमीडे तदूर्ध्वं स्थिता यस्य वत्से ललाटे मुखादौ महः स्वर्जनाद्याः ॥ ५१ ॥

आकाशतत्त्व ही कृपाण है और आकाश की शोभा और सम्पत्ति ही श्रीलक्ष्मी पत्नियां हैं ॥ ४८ ॥

पातालमेतस्य हि पादमूलं महातलं विश्वसृजोऽस्य गुल्फौ।
इन्द्रादयो बाहव आहुरुस्राः कर्णौ दिशः श्रोत्रममुष्य शब्दः ॥
आपोस्य तालू रस एव जिह्वा छन्दांस्यनन्तस्य शिरो गृणन्ति।
व्रीडाधरो धर्मपथोऽस्य पृष्ठं कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसंघाः ॥
नद्योऽस्य नाड्योथतनूरुहाणि वृक्षाश्च केशान् विदुरम्बुवाहान्।
वासश्च संध्याश्वगजा नखानि धर्मः स्तनो हार्दकला द्विजानि ॥

बुद्धि को शुद्ध करना ही जिनकी पूजा है, पापों से डरना ही दीक्षा है, शास्त्र वेदांग आगम आदि ही जिनके पार्षद (गण) हैं, विद्वान, तपस्वी और मनुष्यों के संयम ही जिनके चरणों के पास पहुंचाने वाले द्वारपाल हैं ॥ ४९ ॥ आकाश जिनकी नाभि है, पाताल चरण है, तपोलोक भाल है, संध्या की लालिमा वस्त्र है, वक्षस्थल स्वर्गलोक है, स्नेह ही दन्तपंक्ति है, पर्वत ही अस्थियां हैं और अनेक लीलायें हास्य हैं ॥ ५० ॥ जिन विराट् एवं विष्णु (सर्वव्यापी) प्रभु की कटि के नीचे अतल वितल सुतल आदि सात लोक हैं तथा कटि के ऊपर वत्स, ललाट, मुख आदि में स्वः महः जन आदि सात लोक स्थित हैं उन्हें नमस्कार है (भागवत १२।११) ५१ ॥ (विष्णुपुराण में गदा शंख आदि की अन्य उपमायें भी है)।

एतद्वै पौरुषं रूपं भूः पादौ द्यौः गिरो नभः।
नाभिः सूर्योऽक्षिणी नासे वायुः कर्णौ दिशः प्रभोः ॥ ६ ॥
तद्बाहवो लोकपाला मनश्चन्द्रो भ्रुवौ यमः।
रोमाणि भूरुहा दन्ता ज्योत्स्ना मेघाश्च मूर्धजाः ॥ ८ ॥
धर्मज्ञानादिभिर्युक्तं सत्त्वं पद्ममिहोच्यते।
ओजःसहोबलयुतं मुखतत्त्वं गदां दधत्। १४ ॥
परिचर्या भगवतः आत्मनो दुरितक्षयः।
त्रिवृद्वेदः सुपर्णाख्यो दीक्षा संस्कार आत्मनः ॥ १७ ॥
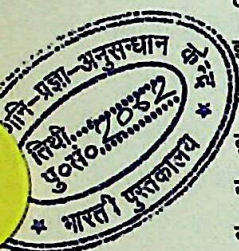
शिरो यस्य चित्रास्ति हृद्यस्य निष्ट्या करो यस्य हस्तः प्रतिष्ठानुराधा ।
तमीडे ग्रहोल्काभ्रनक्षत्रकायं महादेवमूरूद्वयं यस्य राधा ॥ ५२ ॥
तितिक्षादयासत्यसन्तोषपादो धवः शान्तिमेधादिदाक्षायणीनाम् ।
वृषो वाहनं यस्य धर्मप्रतीकों विदेहोऽस्ति यो ध्येय एको यतीनाम् ॥ ५३ ॥

चित्रा नक्षत्र जिनका सिर है, निष्ट्या (स्वामी नक्षत्र) हृदय है, हस्त हाथ है, अनुराधा पादपीठ है और राधा (विशाखा) दो ऊरु (जंघा) हैं उन नक्षत्रदेह ईशानदेव (शिव) को प्रणाम है ॥ ५२ ॥

यो वै नक्षत्रियं प्रजापतिं वेद उभयोरेनं लोकयोर्विदुः । हस्त एवास्य हस्तः चित्रा शिरो निष्ट्या हृदयं ऊरु विशाखे प्रतिष्ठानुराधाः । एष वै नक्षत्रियः प्रजापतिः (तैत्तिरीयब्राह्मण १।५।२।२) ॥

धर्म का प्रतीक श्वेत वृष शिवका वाहन है। वह शान्ति मेघा श्रद्धा मैत्री आदि दक्षकन्याओं का पति है। सहिष्णुता दया सत्य और सन्तोष उसके चार पैर हैं। उस पर बैठने वाले शिव विदेह हैं और यती उन्हीं एक का ध्यान करते हैं ॥ ५३ ॥

वृषं शब्द का अर्थ है धर्म या बैल। श्वेत वर्ण शान्ति का और श्वेत वृषभ धर्म का द्योतक है। श्रीमद्भागवत (१।१७) में बैल रूपी धर्म के चार पैरों को तप, शौच, दया और सत्य कहा गया है। शिवपुराण ने वृष (धर्म) को भगवान् शिव का वाहन (आधार) कहा है। वे वृषभध्वज भी हैं। भागवत में दक्ष प्रजापति की श्रद्धा, मैत्री, दया आदि तेरह कन्यायें धर्म (वृष) की पत्नियां कही गई हैं। अन्य पुराणों में इनकी अधिक संख्यायें भी हैं। वस्तुतः गुणवाचक सभी स्त्रीलिंगी शब्द धर्मपत्नी हैं। यह वर्णन आलंकारिक है। धर्म और धर्म की पत्नियां निराकार गुण हैं। भागवत में अंधर्म की पत्नी का नाम मिथ्या है और उन दोनों से उत्पन्न पुत्रपुत्री आदि का भी ऐसा ही वर्णन है।

वृषो धर्म इति प्रोक्तस्तमारूढस्ततो वृषी (शिवपुराण) ।
धर्मं ब्रवीषि धर्मज्ञ धर्मोसि वृषरूपधृक् ।
तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः कृते कृताः ॥
श्रद्धा मैत्री दया शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः ।
बुद्धिर्मेधा तितिक्षा ह्रीर्मूर्तिर्धर्मस्य पत्नयः (भागवत) ॥

प्रिया यस्य गंगा पदे विष्णुसंज्ञे स्थितास्त्यापगा तारकाणां विशाला।
प्रकृत्यम्बिका यस्य जायास्ति कण्ठे स्थिता लोकसन्दोहजा मुण्डमाला ॥ ५४ ॥
त्रिनेत्रं रवीन्द्वग्निवेदास्त्रिलोका भुजा इन्द्रियार्थाश्च कर्मेन्द्रियाण्णि।
विभूतिर्महत्ताऽहयः क्रुध् खमात्मा प्रबोधेन्द्रियाण्येव पंचाननानि ॥ ५५ ॥
जगत्सत्यमेतद् वपुर्यस्य शंभोः स्थिता यस्य तस्मिंश्च सर्वत्र शक्तिः।
भजे तं खभूद्योत्रिकं यत्त्रिशूलं सुकृत्यैर्नृहार्दार्जनं यस्य भक्तिः ॥ ५६ ॥
यथा मृत्तिकायां जलेऽग्नौ सुवर्णे व्रजः पात्रवीच्युष्णताभूषणानाम्।
स्थितो वृक्षपर्णेऽस्ति रेखासमूहस्तथा सर्वगं नौमि सर्वाश्रयं त्वाम् ॥ ५७ ॥

अमरकोष में आकाश का एक नाम है विष्णुपद। इसका अर्थ है-व्यापक स्थान। आकाश नामक विष्णुपद में तारों की एक विशाल आपगा (नदी) स्थित है। यह शिव की प्रिया कही जाती है। प्रकृति ही उनकी अम्बिका नाम्नी पत्नी है और अनेक लोकों का सन्दोह (समूह) ही उनके गंले की मुण्डमाला हैं ॥ ५४ ॥

शिव के तीन नेत्र हैं। कहीं सूर्यचन्द्रअग्नि, कहीं तीन वेद और कहीं तीन लोक। कुछ आचार्यों के मत में ज्ञान तृतीय नेत्र है। पांच ज्ञानेन्द्रियां शिव के पांच मुख हैं। ज्ञानेन्द्रियों के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध नामक पांच गुण और पांच कर्मेन्द्रियां शिव की दस भुजायें हैं, उनकी महत्ता विभूति (भस्म) है, क्रोध ही शरीर में लिपटे सर्प हैं और निर्मल आकाश ही उनकी आत्मा है (कान, त्वचा, नेत्र, नाक, जीभ पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं तथा हाथ, पैर, लिंग, गुदा, वाणी पांच कर्मेन्द्रियां हैं) ५५ ॥

निर्मलाकाशरूपात्मा कृष्ण इत्येव शंकरः।
ज्ञानेन्द्रियाणि वक्त्राणि सूर्यचन्द्राग्निलोचनः ॥
कर्मेन्द्रियाणि विषयास्ते हि तस्य भुजा दश।
त्रिशूलं तेन त्रैलोक्या गृहीतं करकोटरे (योगवासिष्ठ) ॥

यह सत्य (अमिथ्या) जगत् जिनका शरीर है, जिसमें उनकी शान्ति, सर्वत्र स्थित है, तीन लोक ही जिनके त्रिशूल के तीन फल हैं और अपने सुकर्मों द्वारा जनता के स्नेह का अर्जन ही जिनकी भक्ति है उन महादेव को प्रणाम है ॥ ५६ ॥
जैसे मृत्तिका में सारे पात्रों, जल में तरंगों, अग्नि में सारी उष्णताओं सुवर्ण में सब भूषणों का व्रज (समूह) स्थित है, जैसे वृक्ष के पत्ते में उसकी सारी रेखायें आदि स्थित हैं वैसे ही आप में सारे पदार्थ स्थित हैं और आप सबों में बैठे हैं। उन

विना साधनं स्वेच्छया यो जगत्याः करोत्युद्भवाव्यक्तताप्रीणनाद्यम् ।
स्थिताः प्राणिनो यस्य गात्रे समस्ताः सतां शंकरं नौमि तं देवमाद्यम् ॥ ५८ ॥
परा मुत् स्थितिश्चेतसः कुण्डलिन्यां नराणां निजप्रत्यभिज्ञास्ति मुक्तिः ।
अवाप्तेस्तयोरत्र यस्यानुकम्पां विना शक्तिपातं च नान्यास्ति युक्तिः ॥ ५९ ॥
स्मरामि प्रबोधाय नारायणं तं प्रभुं साधुमृत्युंजयं विश्वरूपम् । शिवं
स्पन्दकर्तृत्वसारंस्फुरत्तापराशक्तिवाक्चिद्विमर्शादिरूपम् ॥ ६0

सर्वाश्रय और आदि देव शिव को प्रणाम है जो सन्तों के शंकर है ॥५७॥

शिव।द्राघव नीरुपादप्रमेयान्निरामयात् ।
सर्वभूतानि जातानि प्रकाशा इव तेजसः ॥
रेखावृन्दं यथा पर्णे वीचिजालं यथा जले ।
तस्मिन्नेव स्थितं सर्वं तस्माज्जातं जगत्त्रयम् ॥
स हरिः स शिवः सोऽजः सर्वगः सर्वसंश्रयः ।
मूलबीजं महादेवः पल्लवानामिव द्रुमः ॥
अप्रमेयस्य शान्तस्य शिवस्य परमात्मनः ।
शक्तयो विविधाः सन्ति तासामन्तो न विद्यते (योगवासिष्ठ) ॥

जो विना किसी साधन के इच्छा मात्र से सृष्टि की उत्पत्ति अव्यक्तता (अदृश्यता, एकत्रीकरण, विनाश नहीं) और पालन करते हैं, सब प्राणी जिनके शरीर में स्थित हैं और जो सज्जनों के शंकर (कल्याणकर) हैं उन आदि देव को प्रणाम है ॥ ५८ ॥

चित्त का कुण्डलिनी में या किसी चक्र में स्थिर हो जाना ही परमानन्द है और अपनी प्रत्यभिज्ञा (पहचान) ही मुक्ति है परन्तु जिनकी कृपा या शक्तिपात के विना उन दोनों की प्राप्ति का दूसरा कोई उपाय नहीं है ॥ ५९ ॥ मैं उन विश्वरूप और सब मृत्युओं को समाप्त करने वाले प्रभु का स्मरण कर रहा हूं जो प्रबोधदाता हैं। प्रबोध दे कर सब कुछ प्राप्त करा देते हैं और जो स्पन्दादिस्वरूप हैं। सृष्टिनिर्माण के लिये उद्यत ईश्वर का प्रथम स्पन्द (स्फुरण) शिवतत्त्व है। शिव चित् हैं और उनकी शक्ति चिति है। सार, स्फुरत्ता, पराशक्ति, परावाक्, स्वतन्त्रता, ऐश्वर्य, कर्तृत्व आदि विमर्श हैं। शिव नारायण हैं ॥ ६0 ॥

भजेऽनन्तशक्तीश नानाह्वयं त्वामनन्तं विभुं सर्वदृश्यैकपादम् ।
जनित्राणदण्डप्रदं नौमि शंभो विधातर्हरे त्वामदृश्यत्रिपादम् ॥ ६१ ॥

अन्नमयो भूतनाथः

नमाम्यन्नगं भूतनाथं पशूनां पतिं प्राणगं कामपं हृन्मयं त्वाम् ।
प्रबोधात्मकं दक्षिणामूर्तिमीडे परानन्दमूर्तिं च मृत्युंजयं त्वाम् ॥ ५९ ॥
बुधाः पञ्चकोशानिमांस्ते मुखानि ब्रुवन्ति प्रभो नुः शरीरे स्थितानि
विभूत्यालया बोधनेत्रेण दृष्टाः पवित्राण्यमी कुर्वते मानसानि ॥ ६० ॥
बलं ज्ञानिनो ज्ञानतः श्रेष्ठमाहुर्बलिभ्यो नरा बिभ्यति ज्ञानवन्तः ।
वरेण्यं बलादन्नमुक्तं यतोऽन्नं विना नो लभन्ते बलं देहवन्तः ॥ ६१ ॥
भवन्त्यन्नसंसेवनादेव नृणां मनः प्राणवाग्धीकराद्याः सशक्ताः ।
परित्यागतोऽन्नस्य चाल्पैरहोभिर्भवन्त्यक्षिहृच्चेतनाद्या अशक्ताः ॥ ६२ ॥

हे विभो! आप अनन्त शक्तियों के स्वामी हैं, अनन्त हैं और आपके अनेक नाम हैं। ब्रह्माण्ड का सारा दृश्य एवं ज्ञात भाग एक पाद है और आप के तीन पाद (चतुर्थांश) अदृश्य हैं, अज्ञात हैं। आप ही सृष्टिकर्ता हैं, पालक हैं, दण्डदाता है, शिव हैं, विधाता हैं और हरि हैं। आप को प्रणाम है ॥ ६१ ॥

निराकार शिव के अनेक स्वरूप और गृह हैं। अन्न में स्थित शिव भूतनाथ हैं, प्राण में स्थित पशुपति हैं, हृदय में स्थित कामेश्वर हैं, प्रबोध (विज्ञान) में स्थित दक्षिणामूर्ति हैं और परमानन्द में स्थित मृत्युंजय कहे जाते हैं। इन्हें प्रणाम है ॥ ५९ ॥ हमारे शरीर में अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्द–मय नामक पांच कोश विद्यमान हैं। विद्वानों का कथन है कि ये पंचानन शिव के पांच मुख हैं। विभूति (ऐश्वर्य) के धाम हैं और ज्ञाननेत्र से दृष्ट तथा अनुभूत होने पर नुः (मनुष्यों) के मनों को पवित्र कर देते हैं ॥ ६० ॥ ज्ञानी लोग बल को ज्ञान से श्रेष्ठ कहते हैं क्योंकि बलवानों से ज्ञानी डरते हैं। सबसे श्रेष्ठ बल अन्न है। देहधारी अन्न न मिलने पर निर्बल हो जाते हैं अतः अन्न ब्रह्म है ॥ ६१ ॥ अन्न के सेवन से ही प्राणियों के मन, प्राण, वाणी, बुद्धि, हाथ आदि में शक्ति आती है। अन्न छोड़ देने पर कुछ ही दिवसों में उनके नेत्र, हृदय, चेतन आदि अशक्त हो जाते हैं ॥ ६२ ॥

अतो हेऽन्नमूर्तेऽन्नपूर्णापतेऽहं फलान्नाम्बुवातौषधादौ वसन्तम् ।
गुणाढयैः पवित्रैश्च तैर्ब्रह्मगेहैर्भजे शक्तिदं भूतनाथं भवन्तम् ॥ ६३ ॥
अशास्त्रीयघोरव्रते चोपवासे रता दंभिनः कोविदास्ते न सन्ति ।
जलान्ने परित्यज्य देहस्थितं ये भवन्तं च भूतव्रजं कर्षयन्ति ॥ ६४ ॥

अतः अन्नमूर्ति, माता अन्नपूर्णा के पति, फल अन्न जल वायु औषध आदि के निवासी, गुणों के धाम और परम पवित्र उन ब्रह्मगृहों द्वारा शक्ति देने वाले भगवान् भूतनाथ! आप को प्रणाम है ॥ ६३ ॥

प्रश्नोपनिषद् (१।१४) का कथन है कि अन्न प्रजापति है, उससे वीर्य बनता है और उससे सन्तान उत्पन्न होती है। तैत्तिरीय उपनिषत् (३।२।१) का कथन है कि अन्न को ब्रह्म समझो। अन्न से ही सारे प्राणी पैदा होते हैं और जीते हैं। अन्न की निन्दा और अवहेलना मत करो। वह व्रत है। अन्न शरीर में स्थित प्राण की रक्षा करता है। जो यह जानता है वह अन्नवान्, महान्, कीर्तिमान्, प्रजावान्, पशुवान् और तेजस्वी होता है अतः अन्न को बढ़ावो। भूतों में अन्न महान् है। इसी से उसको सर्वौषध कहते हैं। सब प्राणी उसी से जीते हैं। जो ब्रह्म मान कर अन्न की उपासना करता है वह अन्नमान् होता है और अन्नपति के लोक में जाता है। छान्दोग्य उपनिषद् (७।९) का कथन है कि दस रातों तक अन्न न पाने पर मनुष्य की दृष्टि, कान, ज्ञान, कर्तृत्व आदि क्षीण हो जाते हैं अतः अन्न बढ़ावो, उसकी उपासना करो।

अन्नं वै प्रजापतिः। ततो रेतः तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्ते। अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। अन्नादेवेमनि भूतानि जायन्ते जीवन्ति। अन्नं न निन्द्यात्, तद् व्रतं शरीरमन्नादं शरीरे प्राणः प्रतिष्ठितः। य एतद् वेद अन्नवान् महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन कीर्त्या। अन्नं बहु कुर्वीत। अन्नं भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात् सर्वौषधमुच्यते। तेन्नमाप्नुवन्ति येऽन्नं ब्रह्मोपासते। यदि दश रात्रीर्नाश्नीयात् अद्रष्टाश्रोतामन्ताबोद्धाकर्ताऽविज्ञाता भवति। अन्नमुपास्व। योन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽन्नवतो लोकानाप्नोति ॥

जो पाखण्डी अन्न और जल का परित्याग कर घोर अशास्त्रीय कर्म में लगे हैं और उसे व्रत तथा उपवास कहते हैं वे बुद्धिमान् नहीं हैं। वे शरीर में स्थित पृथिवी आदि पांच महाभूतों को और हृदय में स्थित आप को पीड़ित कर रहे हैं ॥ ६४ ॥

क्षयः कोपलोभस्मरादेरहिंसा च सत्यं सतां संनिकृष्टे निवासः।
व्रतं चोपवासोऽस्ति नो देहतापो यतीनां मतेऽयं व्रतस्योपहासः॥ ६५॥

प्राणमयः पशुपतिः

पशूनां पति प्राणपं पंचमूर्तिं यजुःक्षत्रयज्येष्ठसामोक्यमूर्तिम्।
भजे रुद्रमेकादशांगाभिधानं दशप्राणयुक्तात्मनाथं विमूर्तिम्॥ ६६॥

कोप, लोभ, काम आदि दूषित भावनाओं का क्षय, अहिंसा, सत्य और सज्जनों के निकट निवास ही व्रत और उपवास है, शरीर को कष्ट देना नहीं, योगियों के मत में यह व्रत का उपहास है॥ ६५॥ कृष्ण भगवान् ने गीता (अध्याय १७) में ऐसे लोगों को पाखण्डी, अहंकारी और निश्चित रूप से असुर कहा है। योगिराज पतंजलि का कथन है कि अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, काम का दास न होना और छल से दूसरों का धन न लेना, ये पांच यम हैं, व्रत हैं और जब जाति, देश, काल और समय के प्रतिबन्ध से रहित होकर इनका पालन किया जाता है तब ये सार्वभौम महाव्रत हो जाते हैं। जाति का भाव है, मैं गौ ब्राह्मण आदि को नहीं मारुंगा। देश का अर्थ है, तीर्थ आदि में झूठ नहीं बोलूंगा। काल का भाव है, एकादशी आदि को चोरी नहीं करूंगा। समय का अर्थ है परिस्थिति।

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दंभाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः॥ ५॥
कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान् विद्ध्यासुरनिश्चयान्॥ ६॥
देशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् २।३१

शरीर में प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान नाम के पांच प्राण तथा नाग कूर्म कृकल देवदत्त धनंजय नाम के पांच उपप्राण रहते हैं। इनमें आत्मा को जोड़ देने पर ग्यारह हो जाते हैं। ये ही ग्यारह रुद्र हैं। पशुपति शिव की पांच प्राणमूर्तियां हैं। इन्हें यजुः, क्षत्र, ज्येष्ठ, साम और उक्थ कहते हैं। यजु में सबका योग होता है, क्षत्र क्षतों से त्राण करता है, ज्येष्ठ श्रेष्ठ है, साम में सब स्वर संगत हैं और उक्थ शस्त्र है। इन सबों को और मूर्ति (आकार) विहीन रुद्र को प्रणाम है॥ ६६॥

अघोरं च तत्पूरुषं, वामदेवं च सद्योऽधिजाताख्यमीशानमूर्तिम् ।
शिवं नौमि पंचाननं पंचमूर्तिं स्वयंभूस्वभूशंभुसंज्ञत्रिमूर्तिम् ॥ ६७ ॥
स्थितं प्राचि वेदास्य तत्पूरुष त्वां तडित्तेजसं वह्निबीजं भवारिम् ।
भजे दक्षिणस्यामघोरं घनाभं विभुं वेधसं नीलकण्ठं पुरारिम् ॥ ६८ ॥
नमामीश पंचास्यमीशानमूर्ध्वं प्रतीच्यां प्रपद्यामि सद्योऽधिजातम् ।
उदीच्यां प्रभाभास्वरं वामदेवं शिवं सुन्दरं नौमि शंखावदातम् ॥ ६९ ॥

रसोंऽगव्रजस्यंगिरा योऽस्ति वाचो बृहत्याः पतिः
प्राणसंज्ञः शिवस्तम् । प्रतिष्ठासुवर्णप्रदोद्गीथसंज्ञं
स्वरे संगते नौमि साम्नो वसन्तम् ॥ ७० ॥

शिव की अघोर, तत्पुरुष, वामदेव, सद्योजात और ईशान नाम्नी पांच मूर्तियां हैं। अघोर शान्त और सत्त्वमय हैं, तत्पुरुष पुरुषसूक्त के विराट् पुरुष हैं, वामदेव अपने शरीर से सृष्टि को मकड़ी की भांति बाहर निकालते हैं, सद्योजात झट प्रस्तुत होते हैं और ईशान शासक हैं। ब्रह्मा को स्वयंभू, विष्णुको स्वभू और शिव को शंभु कहा जाता है। ये एक ही शिव के तीन नाम हैं ॥ इन पंचानन पंचमूर्ति त्रिमूर्ति शिव को प्रणाम है ॥ ६७ ॥ योगियों ने विभिन्न स्थितियों की दृष्टि से उनके अनेक रूपों की कल्पना की है। जो घोर नहीं अपितु परम सौम्य और शान्त है उसे अघोर कहते हैं परन्तु इस समय अघोर पन्थ मूल परिभाषा से दूर जा कर उन मांस, मदिरा और विविध मादक द्रव्यों में फंस गया है जो अनुचित हैं। बाबा गोरखनाथ आदि ने इनका घोर विरोध किया है। अघोर भगवान् की दिशा दक्षिण और वर्ण नीला है। तत्पुरुष पूर्व में रहते हैं और इनके चार मुख हैं। इनका तेज बिजली के समान है, ये अग्नि के पिता हैं और भक्तों के तारक हैं। अघोर सर्वव्यापी ब्रह्मा हैं और नीलकण्ठ हैं। नीलकण्ठ की कई कथायें हैं। वस्तुतः उनके कण्ठ में आकाश का ऊपरी नीला भाग स्थित है। उन्होंने पुर दानव का अन्त किया है, पुर शब्द के कई अर्थ हैं ॥ ६८ ॥

पंचानन शिव ईशान कहे जाते हैं, ऊर्ध्वमुख हैं और सद्योजात पश्चिम में रहते हैं। वामदेव प्रभा से भास्वर हैं, शंखवत् गौर हैं, सुन्दर हैं और उत्तर में रहते हैं ॥ ६९ ॥ प्राण अंगों का रस है, आंगिरस है, अंगिरा है और बृहती नाम वाली वाणी का पति है। प्राण साम के संगत स्वर में रहता है, उद्गीथ है तथा प्रतिष्ठा

हतेऽनाहते शब्दजाते निगूढ़ं भटानां बलं मन्त्रशक्त्यादिरूपम् ।
नमामीश सप्तावहाद्याशुगानां प्रभावं पतिं सप्तसप्तस्वरूपम् ॥ ७१ ॥
श्रुतीनां च तीव्रादिगेयश्रुतीनां निदानं भजे सर्वरागाकृतीनाम् ।
नभस्वन्मयं देवमोंकारनाथं बलानां निधिं कारणं व्याहृतीनाम् ॥ ७२ ॥

और सुवर्ण का दाता है। प्राण से ही वाणी का उच्चारण होता है। शरीर के जिस अंग से प्राण हट जाता है वह सूख जाता है। उस प्राणात्मक शिव को प्रणाम है ॥ ७० ॥

प्राणोंगानां रसः। यस्मादंगादुत्क्रामति तत् शुष्यति । वाग् बृहती तस्याः पतिः प्राणो बृहस्पतिः १।३।२०। वाग् ब्रह्म तस्याः पतिः प्राणो ब्रह्मणस्पतिः १३।२१॥ वाग्वै साम गीथा च। तस्य साम्नो यः सुवर्णं (स्वर) वेद तस्य सुवर्णं भवति (बृहदउप) ॥

यह प्राणवायु मृदंग, वीणा, वंशी और मुख आदि से उत्पन्न सारे हत शब्दों में, विस्फोटक पदार्थों में तथा कान के और अन्य अनेक अनाहत नादों के समूह में छिपा बैठा है। कान में अनेक मधुर नाद हैं और विश्व के अनेक मन्दिरों, वनों, पर्वतों आदि में ऐसे चित्र विचित्र नाद सुनाई पड़ रहे हैं जिनके मूलाधार का अभी तक पता नहीं लगा है। वीरों में और मन्त्र में स्थित शक्ति का भी इसी से सम्बन्ध है। भूवायु को आवह कहते हैं। इससे ऊपर प्रवह, उद्वह, संवह, सुवह, परिवह और परावह नाम के छः वायु हैं। उनके अतिरिक्त अन्य सप्तसप्त (४९) हैं। इन सबों के प्रभाव ईश्वर से उत्पन्न हैं और वे ही इनके पति हैं। उन्हें नमस्कार है ॥ ७१ ॥ सामवेद के लगभग सारे मन्त्र ऋग्वेद के हैं पर उनके गायन की विभिन्न मनोहारी विधियां हैं। ओंकार के विधिवत् उच्चारण से उत्पन्न ध्वनि की अनेक विशेषतायें है। वेदोक्त व्याहृतियों और तंत्र की एं ह्रीं क्रीं क्रां आदि ध्वनियों की भी यही स्थिति है। संगीत के एक सप्तक में सात स्वर हैं और तीव्रा कुमुद्वती आदि बाईस श्रुतियां है। भिन्न-भिन्न रागों के गुणों के आधार पर उनकी अनेक आकृतियां मानी गई हैं। ये राग विभिन्न रोगों की औषधियां हैं। इन्हें पशु और वृक्ष भी प्रेम से सुनते हैं। इनके अतिरिक्त ऊंची नीची ऐसी अनेक ध्वनियां है जिन्हें हमारे कान सुन नहीं पाते। ये सब नभ से उत्पन्न नभस्वत् (वायु) देव के चमत्कार हैं। इन सबके स्वामी प्रभु ओंकारनाथ शिव को प्रणाम है। वे अनेक बलों के निधान हैं ॥ ७२ ॥

मनोमयः कामेश्वरः

श्रुतं मानसे मे स्थिताः सन्ति वेदाः समे यानचक्रस्य नाभाविवाराः।
स्थितं चास्ति सर्वं भविष्यं च भूतं स्थिताः सन्ति सर्वे नृणां चित्तवाराः ॥ ७३ ॥
ब्रवीति श्रुतिर्ज्योतिषां ज्योतिरेतन्मनोऽस्ति स्वभावादपूर्वं हि यक्षम् ।
वपुश्चेतनं ते तदस्ति स्मरारे क्रतुज्ञानविज्ञानयोगेषु दक्षम् ॥ ७४ ॥
श्रुतं द्वीपदेवागसिन्धुग्रहादेर्व्रजोऽस्त्यत्र सूक्ष्मः प्रभो मत्तनुस्थः।
भवांश्चास्ति शंभो स्वशक्त्योमयाऽस्यां मनोमेरुगो हेमसिंहासनस्थः ॥ ७५ ॥
स्थितास्या अयोध्यादिचक्रे द्वितीये पुरी द्वारका माधुरी नाभिसंस्था ।
भ्रुवोर्मध्यगा चास्ति कांची च काशी गलेऽन्त्येस्त्यवन्ती च माया हृदिस्था ॥ ७६ ॥
रविर्नादचक्रे विधुर्बिन्दुचक्रे कुजो नेत्रयोरस्ति सौम्यो मनःस्थः।
गुरुर्वाङ्मतिस्थश्च शुक्रोऽस्ति शुक्रे शनिर्नाभिगो राहुरस्त्याननस्थः ॥ ७७ ॥

हे देव! हमने सुना है कि हमारे मन में सारे वेद (ज्ञान) उसी प्रकार प्रतिष्ठित हैं जैसे वाहन के चक्र की नाभि में अरे टिके रहते हैं। इसमें सारे भूत, वर्तमान, भविष्य और मनुष्यों के चित्तों के अनेक वार (समूह) भी ओतप्रोत हैं ॥ ७३ ॥

श्रुति कहती है कि मन ज्योतियों की ज्योति है और स्वभावतः एक अद्भुत यक्ष (याजक) है। हे कामेश्वर! यह आप का चेतन शरीर है तथा ज्ञान, विज्ञान, यज्ञ और योग में दक्ष है ॥ ७४ ॥

> यस्मिनृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
> यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानाम् । येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्
> परिगृहीतममृतेन सर्वम् । दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकम् ।
> यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानाम् । यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
> येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु (यजुर्वेद अध्याय ३४)) ॥

हे प्रभो! मैंने सुना है कि इस तनु में द्वीपों, देवों, पर्वतों, सागरों और ग्रहों आदि का सूक्ष्म समूह स्थित है और अपनी शक्ति उमा के साथ आप भी इसके मन रूपी सुमेरु शिखर पर सोने के सिंहासन पर बैठे हैं ॥ ७५ ॥ इसमें मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार नाम के सातचक्र हैं। ये क्रमशः गुदा, मूत्राशय, नाभि, हृदय, कण्ठ, भ्रूमध्य और मस्तक में स्थित हैं। ये ही अयोध्या, द्वारका, माधुरी (मथुरा), माया, काशी, कांची और अवन्ती पुरियां हैं ॥ ७६ ॥ इसी प्रकार सब ग्रह भी इस शरीर में स्थित हैं। सूर्य नादचक्र में, चन्द्रमा

इडास्तीन्दुजा वामभागेऽत्र गंगा रवेः कन्यका पिंगला दक्षिणांगे ।
तयोर्मध्यगा मेरुदण्डे सुषुम्णा सरस्वत्यदृश्यास्ति तीर्थे प्रयागे ॥ ७८ ॥
तनुस्थोऽस्ति कैलासशैलः कुटिस्ते प्रभो मूल आधार ओकः शिवायाः ।
स कामाख्ययास्त्यन्वितः कामपीठः स्मरस्यालयोऽथो रतेस्तत्प्रियायाः ॥ ७९ ॥
मनः कामपीठादमीषां तवाप्त्यै तवाद्रिं यदा याति चक्राणि भित्वा ।
तदा त्वं ददासि प्रबोधं जनानां कुलिप्सामनोजादिदोषान् शमित्वा ॥ ८० ॥
अतो देव कामेश याचे मुहुस्त्वां क्रिया जागरूकान् सुरान् मत्तनुस्थान् ।
यथा स्यामसत्कामनाकामजेता गुणांश्चाप्नुयां सप्तपूश्चक्रसंस्थान् ॥ ८१ ॥

बिन्दुचक्र में, मंगल नेत्रों में, बुध मन में, गुरु वाणी और मति में, शुक्र वीर्य में शनि नाभि में और राहु मुख में बैठा है ॥ ७७ ॥

(गरुडपुराणसतार अध्याय १५ में इसका विशद वर्णन है।)

भुवनानि च सर्वाणि पर्वतद्वीपसागराः ।
षट्चक्राणि ग्रहाः सन्ति शरीरे पारमार्थिके ॥
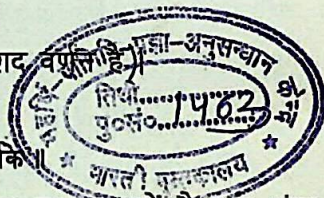
इस शरीर में इन्दुजा अर्थात् चन्द्रनाड़ी इड़ा वामभाग में है। वह गंगा है। सूर्यकन्या पिंगला (यमुना) दक्षिण भाग में है और उन दोनों के बीच मेरुदण्ड में सुषुम्णा (सरस्वती) है। वह प्रायः अदृश्य रहती है। उसका स्थान ही तीर्थराज प्रयाग है ॥ ७८ ॥ शरीरस्थ कैलास पर्वत अर्थात् सहस्रार चक्र आप की कुटी है और सबसे नीचे वाला मूलाधार चक्र शिवा का ओक (निवास) है। इसे कामाख्या देवी का कामपीठ भी कहते हैं। यह स्मर (कामदेव) का और उनकी प्रिया रति का गृह है ॥ ७९ ॥ हे प्रभो! मेरा मन जब आप की प्राप्ति के लिये कामपीठ को पार कर धीरे-धीरे मूलाधार, स्वाधिष्ठान आदि चक्रों का भेदन करता हुआ सुषुम्णा पथ से मेरुदण्ड मार्ग से आपके सुमेरु या कैलास पर्वत पर अर्थात् सहस्रार चक्र में पहुंचता है तब आप कुलिप्सा (नाना प्रकार के कुलोभों) को और काम कामना आदि दोषों को समाप्त कर शरीर में स्थित ग्रहों, द्वीपों, सागरों, तीर्थों, पुरियों, नाड़ियों और परमात्मा आदि का प्रबोध करा देते हैं। हमारे मस्तिष्क में स्थित अगणित ज्ञानगृहों के द्वार खोल देते हैं ॥ ८० ॥ अतः हे कामेश्वर देव! मैं बार बार याचना कर रहा हूं कि आप कृपया मेरे शरीर में स्थित सुरों को जगा दें और स्वयं जाग जायं ताकि मैं असत् कामनाओं और काम को जीत लूं तथा शरीर की सात पुरियों और चक्रों के गुणों को जान लूं ॥ ८१ ॥

सतां मारतृष्णाद्यपस्मारहारिन् अहंकारसंहारकं रावणानाम् ।
जनानां मनोनिर्गदंकारमीडे हृदिस्थं शिवं कारणं कारणानाम् ॥ ८२ ॥
विपद्दारकं नारदं भूसुराणां सदाचारसंस्कारदं पत्पराणाम् ।
निजोद्धारकामो मुहुर्नौमि शंभो हरं त्वां वरेण्याश्रयं कातराणाम् ॥ ८३ ॥
अचिन्त्याद्भुतं निर्गुणं निर्विकारं गुणानामगारं पितस्त्वामुदारम् ।
प्रपन्नोपकाराय नानावतारं दयाब्धिं शिवं नौमि संसारसारम् ॥ ८४ ॥
परीवारकान्तारकान्तारतं मां चमत्कारसत्कारकाराविहारम् ।
मृड त्राहि वित्ताद्यकूपारमग्नं प्रभो साम्प्रतं त्वां श्रितं कर्णधारम् ॥ ८५ ॥
पदख्यातिभोगात्मजार्थेषु मुग्धं शिवं त्वामुपेक्ष्येन्द्रियार्थे जविष्ठम् ।
कृथाः सच्चिदानन्द चेतो मदीयं द्रुतं सात्त्विकं साधुसंकल्पनिष्ठम् ॥ ८६ ॥
तमोज्योतिषा चामृतेनाष्टमृत्यून् गुणैर्दोषसंघं कृषीष्ठा दविष्ठम् ।
खलेभ्योऽतिदूरं नयस्वेति याचे कृपासागरं त्वां शिवं हृत्प्रतिष्ठम् ॥ ८७ ॥

हे हृदयस्थ शिव! आप सज्जनों के काम, तृष्णा आदि रोगों के नाशक हैं, दूसरों को त्रास देने वाले रावणों के अहंकार के संहारक हैं, कारणों के कारण हैं और भक्तों के मन को निर्मल करते हैं ॥ ८२ ॥ हे शंभो! आप इस पृथ्वी पर स्थित देवों (सज्जन विद्वानों) की विपत्तियों के नाशक हैं, नार (आनन्द) के दाता हैं, अपनी शरण में आये निराधारों को सदा सुसंस्कार देते हैं और कातरों के सर्वश्रेष्ठ आश्रय हैं अतः मैं अपने उद्धार की कामना से आप की शरण में आया हूं। आप को मेरा बार बार प्रणाम है ॥ ८३ ॥ हे पिताजी! आप अचिन्त्य, अद्भुत, निर्गुण और निर्विकार होकर भी गुणों के धाम और उदार हैं, दया के सागर हैं, संसार के सार हैं और शरणागत सज्जनों की रक्षा के लिये नाना अवतार लिया करते हैं ॥ ८४ ॥ मैं इस समय परिवार रूपी गहन वन में और कान्ता में रत हूं, चमत्कार और सत्कार की कारा में बन्द हूं, धन आदि की तृष्णा के अकूपार (सागर) में डूब गया हूं अतः अशान्त हूं। इसलिये अब हताश होकर भवसागर के कर्णधार आप की शरण में आया हूं। हे प्रभो! मेरी रक्षा करें, अपने मृड नाम को सत्य करें ॥ ८५ ॥ हे सच्चिदानन्द! इस समय मेरा मन आप को भूल कर उच्चपद, ख्याति, नाना प्रकार के भोगों, पुत्र, पुत्री, धन और इन्द्रियों के अन्य विषयों में मुग्ध है, उन्हीं की ओर दौड़ रहा है अतः आप कृपया उसे शीघ्र सात्त्विक और शुभसंकल्पवान् बना दें ॥ ८६ ॥ ज्योति से तम को, ज्ञानामृत से आठ मृत्युओं को

सधूमाग्निवद् दृश्यते मानसं मे मलैरावृतादर्शवत् साम्प्रतं यत् ।
क्रिया हेऽमलेशाशुतोष स्मरारे भवारे द्रुतं निर्मलं दीप्तिवत् तत् ॥ ८८ ॥
क्वचित् साधुहृत्सूदिताः सन्ति शंभो गुणाब्धेर्गुणैस्ते युताभूरिभंगाः ।
क्वचित् सन्ति विज्ञेषु वीरेषु दृश्या हरे ते गुणानां प्रभूतास्तरंगाः ॥ ८९ ॥
मुहुश्चेतसः शुद्धयेऽहं नमामि स्मरामि प्रतीतांस्तवांशावतारान् ।
शरीरेण वाचा धिया लोकभद्रे रतान् सर्वदा तान्नृदेवानुदारान् ॥ ९० ॥
न मन्येऽहमेषां वपुर्ब्रह्मदेवं परं वेद्मि तद् ब्रह्मणः पूतगेहम् ।
अतो नौमि तन्मन्दिरन्ते तथा त्वां विदेहं स्थितं तत्र भान्तं सदेहम् ॥ ९१ ॥
श्रुतं स्पर्शतो योगिनां पादरेणोः कुपूया भवन्त्यालयाद्याः प्रशस्ताः ।
सतां दर्शनाच्चोपदेशान्नराणां भवन्त्यामया मानसस्था निरस्ताः ॥ ९२ ॥

और गुणों से दोषसंघों को दूर कर दें। मेरे हृदय में स्थित कृपासागर शिव! मुझे पापियों से बहुत दूर रखें। बस, मेरी यही प्रार्थना है ॥ ८७ ॥

हे अमलेश, आशुतोष, कामारि! मेरा मन इस समय धूम से आवृत अग्नि और धूल से ढके दर्पण सा हो गया है। हे भवारे! आप उसे शीघ्र निर्मल और दीप्तियुत बना दें ॥ ८८ ॥

तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योरमृतं गमय असतो मा सद्गमय ।
धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च (गीता) ॥

हे शंभो! हे हरे! मैंने कहीं कहीं ऐसे साधुओं, विद्वानों और वीरों के दर्शन किये हैं जिनके हृदयों में गुणसागर आप के अनेक गुणों की तरंगें लहरा रही हैं ॥ ८९ ॥ वे उदार नरदेव शरीर से, वाणी से और मन से सदा लोककल्याण में लगे हैं। वे महापुरुष आप के अंशावतार कहे जाते हैं। मैं अपने चित्त की शुद्धि के लिये उनका बार-बार स्मरण करता हूं, उनको श्रद्धा से प्रणाम करता हूं। वे भी हमारे देव हैं ॥ ९० ॥

मैं इनके शरीरों को देव या ब्रह्म नहीं मानता। इन्हें ब्रह्म का पवित्र गृह (क्षेत्र) समझता हूं और यह जानता हूं कि इनमें आप का उदय हो गया है अतः आप के इन मन्दिरों को प्रणाम करता हूं। आप निराकार इनमें साकार प्रतीत हो रहे हैं ॥ ९१ ॥ मैंने सुना हैं कि योगियों के चरणरज के स्पर्श से सदोष भवन आदि पवित्र हो जाते हैं तथा सन्तों के दर्शन से और उपदेश के श्रवण से मन के सारे रोग निरस्त हो जाते हैं ॥ ९२ ॥

अतो नौम्यहं शौचसन्तोषविद्यानिकायान् पवित्राशयान् भूसुरांस्तान् ।
तपस्त्यागविज्ञानमैत्रीतितिक्षादयासत्क्रियासत्यशौर्यैरुपेतान् ॥ ९३ ॥

विज्ञानमय दक्षिणामूर्ति

प्रसन्नाननं दक्षिणामूर्तिमीडे वटाधः स्थितं दक्षिणास्यं युवानम् । नुतं हात-सन्देहवृद्धैर्मुनीशैः सनन्दादिसिद्धेश्वरैः सेव्यमानम् ॥ ९४ ॥
निधानं श्रियो ज्ञानवासो वसानं ददानं मुदं दर्शनात् सावधानम् ।
स्वदेहोत्थगन्धैर्दिशो वासयन्तं भजे मौनिनं ज्ञानभूतिं दधानम् ॥ ९५ ॥
निवातस्थदीपस्यवर्तेः शिखावत् स्थिरं वर्ष्मणा स्थाणुमृज्वंगयष्टिम् ।
नियम्यानिलं नौमि पद्मासनस्थं स्थिरं चेतसा न्यस्तनासाग्रदृष्टिम् ॥ ९६ ॥
समुद्घाट्य नेत्रे सतां कर्मठानां प्रकुर्वन्तमंगेषु पीयूषवृष्टिम् ।
मुहुर्नौमि कुर्वन्तमाराधकानां कुलिप्साविसृष्टिं सदुत्साहसृष्टिम् ॥ ९७ ॥

अतः तपस्या त्याग ज्ञान विज्ञान मित्रता विनय सहिष्णुता दया सदाचार सत्य शौच अर्थशौच सन्तोष के धाम, पवित्रात्मा इन भूसुरों को प्रणाम करता हूं ॥ ९३ ॥

मैं उन विज्ञानेश भगवान् दक्षिणामूर्ति शिव को प्रणाम करता हूं जो वटवृक्ष के नीचे दक्षिणमुख से बैठे हैं, प्रसन्न हैं और युवक हैं। वे युवक हैं और वहां बैठे अनेक वृद्ध मुनीश्वरों एवं सनक सनन्दन आदि सिद्धों से सेवित हैं। वहां सब मौन हैं और भगवान् मौन रह कर ही सबके सन्देहों को समाप्त कर देते हैं। यह वार्तालाप वाणी से नहीं, हृदय से होता है ॥ ९४ ॥.

चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा ।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु च्छिन्नसंशयाः ॥ आदि शंकराचार्य

वे श्री के निधान हैं, सावधान (समाधिस्थ) हैं, मौन हैं, अपने शरीर के सुगन्ध से दसो दिशाओं को सुवासित कर रहे हैं, ज्ञान ही उनका वस्त्र है और ज्ञान ही भूति है, विभूति है। उन्हें प्रणाम है ॥ ९५ ॥ उनका शरीर वायुविहीन स्थान में स्थित दीपशिखा और स्थाणु (सूखे वृक्ष) की भांति निश्चल है, शरीर सीधा है और दृष्टि नासिका के अग्र भाग पर स्थिर है। वे शरीरस्थ वायुओं को नियंत्रित कर पद्मासन में बैठे हैं और उनका चित्त स्थिर है ॥ ९६ ॥ वे समाधि से विरत होने पर नेत्र खोल कर अपने दृष्टिपात से वहां बैठे सज्जनों और सत्कर्मियों के अंगों पर अमृत की वर्षा करते हैं, अपने भक्तों की कुलिप्सा को समाप्त करते हैं और उत्साह बढ़ाते हैं ॥ ९७ ॥

व्रजन्तीक्षितुं पामरा उत्सुका यं समाकर्ण्य तत्स्नेहसिद्ध्योरुदन्तम् ।
भवन्तीक्षणादेव सन्तो रुदन्तः कुवृत्तीस्त्यजन्त्याशु वन्दे हरं तम् ॥ ९८ ॥
पुनर्ज्ञानविज्ञानदाक्षिण्यदेहं विषं किंकराज्ञानरूपं पिबन्तम् ।
शिवं दक्षिणामूर्तिमीडे ददानं प्रबोधामृतं पत्परेभ्यो भवन्तम् ॥ ९९ ॥

आनन्दमयो मृत्युंजयः

बुधा मृत्युमाहुर्भयाज्ञानचिन्तापरीवादतृष्णाकुभाषास्मयादीन् ।
रुचिं मादकद्रव्यहिंसानृतादौ सुतासूनुजायाबहुत्वामयादीन् ॥ १०० ॥
शिवानन्दमूर्ते द्विषं मादकानां भजे पुष्टिसंवर्धनं मुन्मयं त्वाम् ।
विमुक्तिप्रदं बन्धनेभ्यश्चमृत्योः गुणव्रातसद्गन्धिमृत्युंजयं त्वाम् ॥ १०१ ॥

उनकी दयालुता और अद्भुत सिद्धियों का समाचार सुन कर अनेक पापी भी उत्सुकता पूर्वक उनका. दर्शन करने जाते हैं, पश्चात्ताप से रोते हैं और अपनी कुवृत्तियों को तुरत छोड़ देते हैं। मेरा उन शंकर को प्रणाम है ॥ ९८ ॥ मैं पुनः उन दक्षिणामूर्ति को बार-बार प्रणाम कर रहा हूं जो अपने भक्तों के अज्ञान रूपी विष को पीकर प्रबोध रूपी अमृत देते हैं और ज्ञान विज्ञान एवं दक्षता ही जिनका शरीर है। वे निराकार, साकार दोनों है ॥ ९९ ॥

नीतिशास्त्र में आठ और अर्थववेद में सौ मृत्युओं का वर्णन है (मृत्युरष्टविधः स्मृतः। मृत्यूनेकशतं ब्रूमः)। वे हैं नाना प्रकार के काल्पनिक मिथ्या भय, अज्ञान, चिन्ता, लोकापवाद, तृष्णा, कटु भाषा, अहंकार आदि। मदिरा भांग गांजा आदि मादक द्रव्यों में रुचि, हिंसा और मिथ्याभाषण आदि में रुचि, पुत्र पुत्र पत्नी की बहुलता तथा आमय (रोग) आदि ॥ १०० ॥ हे आनन्दमूर्ते मृत्युंजय! आप भक्तों को इन मृत्युओं से दूर कर आनन्द देते हैं, मादक पदार्थों के द्वेषी हैं अतः पुष्टिवर्धन हैं, आनन्दमय हैं, मृत्युके बन्धनों से विमुक्तिप्रद हैं और गुणों के समूह रूपी सुगन्ध के उद्गम हैं। आप को प्रणाम है ॥ १०१ ॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् (यजुर्वेद) ॥

ते गुह्यतत्त्वविषये मतभेदसिन्धौ मग्नांस्तवार्चनपरान् मलिनैः पदार्थैः । दत्त्वा प्रबोधमव मृत्युमुखस्थपुत्रान् कुर्या मिथः सुहृदयान् जगदीश विष्णो ॥ १०२ ॥

सारे जगत् के संरक्षक और सर्वव्यापी विश्वनाथ! आप के पुत्र हम आप के गुह्य तत्वों को न जानने के कारण मतभेद के सागर में डूब रहे हैं, मृत्युओं के मुख में स्थित हैं और आप के काल्पनिक शरीरों की मदिरा, मांस, भांग धतूरा आदि मलिन एवं मादक द्रव्यों से पूजा करते हैं। हम आप को जो जल और भोजन देते हैं उसमें भी शुद्धिका ध्यान नहीं रखते। हमने आप अघोर को घोर बना दिया है। हम यह भी भूल चुके हैं कि पाप कर्मों द्वारा अर्जित धन से आप की पूजा नहीं करनी चाहिये, आप सदाचांर को श्रेष्ठ पूजा मानते हैं, अतः हे प्रभो! कृपया प्रबोध दे कर हम सबों को एक दूसरे का सुमित्र बना दें ॥ १०२ ॥

द्वितीयोध्यायः

सोमनाथः

विधुं तारकाणां पतिं दक्षशप्तं विहायापरा रोहिणीरूपसक्तम् ।
जुगोपेश्वरो यक्ष्मतप्तं स्वभक्तं ततः सोमनाथं वदन्ति द्विजास्तम् ॥ १ ॥
कदाप्यस्ति नो संभवः किन्तु योगो विधोस्तारकाभिः सुदूरं स्थिताभिः ।
जडस्यास्ति चन्द्रस्य शक्यो न ताभिर्विवाहो विवादो व्यवायो जडाभिः ॥ २ ॥
मनोज्ञाः स्त्रियः सन्ति नो तारका नो सुतः क्षीरसिन्धोः पुमानस्ति चन्द्रः ।
न हि व्योम्नि नास्यां धरायां कदाचित् च केनापि दुग्धस्य दृष्टः समुद्रः ॥ ३ ॥
अतो दारुणोग्राः कठोराश्च तीक्ष्णाः सुधांशोः प्रियाः सन्ति तारा न काश्चित् ।
श्रुतिः प्राह तास्तारिकाः सौम्यरूपाः शुभाः सन्ति सर्वा न निन्द्यास्ति काचित् ॥४॥

सुप्रसिद्ध पौराणिकी कथा यह है कि प्रजापति दक्ष ने अपनी तारा रूपी अश्विनी भरणी आदि सत्ताईस सुन्दरी कन्याओं का विवाह चन्द्रमा ग्रह से किया किन्तु वह छब्बीस का परित्याग कर केवल रोहिणी में आसक्त हो गया। तब दक्ष ने उसे यक्ष्मा (क्षय) रोग से ग्रस्त होने का शाप दे दिया। इसी से वह कृष्णपक्ष में घटता रहता है किन्तु बाद में शिव ने अपने उस भक्त की यक्ष्मा से रक्षा की अतः द्विज उनको सोमनाथ कहते हैं ॥ १ ॥ किन्तु सत्य यह है कि आकाश में रोहिणी नक्षत्र चन्द्रमार्ग के निकट है, चन्द्रमा उसके पास से जाता है तथा अन्य नक्षत्र चन्द्रकक्षा से दूर हैं। इस आधार पर कवियों ने यह कल्पना कर डाली कि चन्द्रमा की रोहिणी प्रिया है और शेष नक्षत्रों का उसने परित्याग कर दिया है। वस्तुतः नक्षत्र चन्द्रमा से अरबों योजन दूर हैं अतः उनका योग असंभव है तथा चन्द्रमा और नक्षत्र जड़ हैं इसलिये उनका आपस में विवाह, विवाद और व्यवाय (मैथुन) अशक्य है ॥ २ ॥ तारे न तो सुन्दर स्त्रियां हैं, न चन्द्रमा पुरुष है। चन्द्रमा क्षीर सागर का पुत्र नहीं है क्योंकि पृथ्वी पर या आकाश में आज तक किसी ने कभी दूध का सागर नहीं देखा है ॥ ३ ॥ आज का ज्योतिष अनेक तारों (नक्षत्रों) को तीक्ष्ण, दारुण, उग्र, क्रूर, भीषण, अशुभ कहता है किन्तु नक्षत्र ऐसे नहीं हैं। वेद का कथन है कि तारे देवगृह हैं, पवित्र हैं, तारक हैं, और नक्षत्र हैं। इनका कभी क्षय

सुराचार्यसंज्ञस्य खेटस्य पत्न्यां द्विजेशाद् ग्रहात्तारकायां विजातम् ।
बुधं खेचरं चन्द्रसूनुं नृरूपं द्विजाः क्षत्रियाणां वदन्त्यादितातम् ॥ ५ ॥
परं चास्ति नो क्षत्रतातो जडोऽयं बुधो नानलो नो शशी नो दिनेशः ।
पिता चेतनानां जडानां समेषां स एकोऽस्ति विष्णुर्विधाता महेशः ॥ ६ ॥
श्रुतिः प्राह जाता विराजोऽस्य देहाद् द्विजाः क्षत्रिया वैश्यशूद्रान्त्यजाद्याः ।
खभूद्योखभूद्योस्थजीवाश्च तारा बुधेन्द्वग्निवातोदकाहस्कराद्याः ॥ ७ ॥
मते दर्शनस्येश्वरः स्वेच्छयादौ विदेहोऽसृजद् व्योमताराग्रहादीन् ।
विना साधनं वातवह्न्यम्बुगोत्राः पशून् पक्षिणः सागरान् मानवादीन् ॥ ८ ॥

नहीं होता, जो इसमें पूजा करता है वह अक्षयलोक प्राप्त करता है। ये रोचन हैं, शोभन हैं, इनमें सोमरस प्रतिष्ठित है और कोई भी अशुभ नहीं है ॥ ४ ॥
देवगृहा वै नक्षत्राणि। रोचन्ते रोचना दिवि। यदतरंस्तत् तारकाणां तारकत्वम्। यो ह वा इह यजते अमुं स लोकं नक्षते। तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वम्। नक्षत्राणामुपस्थे सोम आहितः (तै. ब्रा. १।९।३) ॥

द्विजों का कथन है कि देवों के गुरु बृहस्पति की पत्नी से उनके शिष्य द्विजराज चन्द्रमा ने संभोग किया तो मनुष्य रूपी बुध ग्रह पैदा हुआ। वह क्षत्रियों का आदितात (पूर्वज) है ॥ ५ ॥ क्षत्रियों में तीन भेद हैं। सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी और अग्निवंशी परन्तु सूर्य, चन्द्र, अग्नि जड़ हैं और चन्द्रमा का पुत्र कहा जाने वाला बुध ग्रह भी जड़ हैं अतः बुध, अग्नि, शशी और सूर्य क्षत्रियों के पिता नहीं हो सकते। सब जड़ों और चेतनों का पिता वह एक ईश्वर है जिसके विष्णु, ब्रह्मां, शिव आदि अनेक नाम हैं। देवों के गुरु बृहस्पति और द्विजों के राजा चन्द्र यदि कोई मानव हैं तो ये इतने कामी नहीं हो सकते जितने कथाओं में वर्णित हैं ॥ ६ ॥ वेद का कथन है कि पूरा ब्रह्माण्ड जिनका शरीर है उन विराट् परमेश्वर के एक एक अंग से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र अन्त्यज आकाश, पृथ्वी द्युलोक, इन तीनों में रहने वाले सब प्राणी, तारा बुध चन्द्र अग्नि वात जल और अहस्कर (सूर्य) आदि ग्रह उत्पन्न हैं ॥ ७ ॥

दर्शन शास्त्र का कथन है कि विदेह (निराकार) ईश्वर ने सृष्टि के प्रारंभ में अपनी इच्छा से विना साधन के आकाश, तारा, ग्रह, वायु अग्नि जल पृथ्वी पशु पक्षी सागर, मनुष्य आदि को रचा है ॥ ८ ॥

विदेहोऽथवा विश्वदेहः सशक्तिः स्वयंभूर्यथा कथ्यते विश्वनाथः
तथैवोमया संयुतोऽयं नृदेहो महादेव उक्तो बुधैः सोमनाथः ॥ ९ ॥
स सर्वत्रगश्चातिसूक्ष्मोऽपि देवो विलोक्याघवृद्धिं व्यथाः सज्जनानाम् ।
सशक्तिर्मनुष्यादिदेहैर्दयाब्धिः करोत्यार्तरक्षणं क्षयं दुर्जनानाम् ॥ १० ॥
स नाशं करोत्यन्धभक्तेर्हठादेरसूयारणादेः स्वधर्मोपदेशात् ।
नवीनैः स्वशोधैः सुधर्मेण वृद्धिं फलान्नौषधादेश्च शान्तेः समन्तात् ॥ ११ ॥
स दत्त्वा फलं कर्मणां लोहितोदां चकार त्रिवेणीं रणात् स्वे निवासे ।
प्रभूता मृता यादवा मद्यमत्ताश्च तस्येच्छया भालकायां प्रभासे ॥ १२ ॥
निजे मन्दिरे तत्र दृष्ट्वा कुवृत्तीः स कालामुखानां च कापालिकानाम् ।
अपर्णामुमां मंगलां योगिराजं स्मरारिं च मद्यामिषैरर्चकानाम् ॥ १३ ॥

ईश्वर विदेह हैं, उनको शरीर नहीं है पर वेदों ने पूरे विश्व को उनका शरीर कहा है। वे स्वयंभू हैं अर्थात् उनका कोई पिंता नहीं है और वे शक्तियों के स्वामी हैं। जैसे शक्तियों से युत ईश्वर विश्वनाथ कहे जाते हैं वैसे ही उमा देवी से युत सदेंह ईश्वर सोमनाथ हैं ॥ ९ ॥ वे सर्वग और सूक्ष्म होने पर भी पाप की वृद्धि और सज्जनों की व्यथा देख कर अपनी शक्ति के साथ मानवादि रूपों में प्रकट हो कर आर्तों की रक्षा और दुष्टों का क्षय करते हैं ॥ १० ॥ वे अपने कर्मों से और धर्मोपदेश से स्वार्थियों एवं अन्धभक्तों द्वारा धर्म में आई विकृति को समाप्त करते हैं, दुराग्रह का विनाश करते हैं तथा मनुष्यों में व्याप्त असूया (ईर्ष्या) और युद्धप्रवृत्ति का भी निरोध करते हैं। वे धर्म का तर्कसंगत विशुद्ध रूप बताते हैं और उससे तथा अपने नूतन वैज्ञानिक शोधों द्वारा फल, अन्न, औषध, शान्ति आदि की चारों ओर वृद्धि करते हैं ॥ ११ ॥ वे जिन स्थानों में कुछ दिनों तक वास करते हैं उसे अद्‌भुत और शिक्षाप्रद बना देते हैं। अपनी महती शक्ति उमा से युत सोमनाथ ने प्रभासक्षेत्र भालका में मदिरामत्त यादवों का विनाश किया। ईश्वरेच्छा से यादवों ने आपस में युद्ध कर त्रिवेणी के जल को लाल कर दिया। वे अपने कर्मों का फल पा गये ॥ १२ ॥

उन्होंने अपने मन्दिर में अपने को उमाशंकर का भक्त मानने वाले कालामुखों और कापालिकों की यह कुवृत्ति देखी कि वे सोमनाथ को योगिराज और कामरिपु कहते हैं तथा उमा को मंगला और अपर्णा मानते हैं पर दोनों की मद्य, मांस

श्मशानालयप्रेतमित्रस्य शंभोश्चिताभस्मलिप्तस्य चोपासकानाम् ।
नृमुण्डाहिमाल्यस्य नग्नस्य रत्नैः सुरादेवदास्यादिभिः पूजकानाम् ॥ १४ ॥
सरोषश्चकार स्वमूर्त्यर्चकानां वधं बन्धनं शंभुदासब्रुवाणाम् ।
वधूरत्नरत्नादिकोशापहारं गदासीषुभिर्म्लेच्छपाटच्चराणाम् ॥ १५ ॥
तमुग्रं भजे भैरवं चण्डिकायाः प्रियं त्वामनेकास्त्रशस्त्रैर्युतायाः ।
पुनः शंभवं सोमनाथं च वन्दे दयायाः खनेर्वल्लभं त्वामुमायाः ॥ १६ ॥

मल्लिकार्जुनः

हृदा वर्ष्मणा मल्लिकापुष्पकल्पां उमां मल्लिकामागमज्ञा वदन्ति ।
महेशप्रियां सद्‌गुणानां स्रवन्तीमुदारां महेच्छां बुधास्तां स्मरन्ति ॥ १७ ॥
स्वकारुण्यसत्त्वार्जवज्ञानसान्त्वैर्मनोधर्ममार्गे नयन्तीं स्तुवन्ति ।
स्वपुण्यौघतः खं दिशः पूरयन्तीं स्मरन्तः शिवां मानसं स्वं पुनन्ति ॥ १८ ॥

आदि से पूजा करते हैं ॥ १३ ॥ वे वास्तव शिव को और श्मशान, भूत आदि अनेक शब्दों के अर्थ को नहीं जानते अतः कहते हैं कि शिव भूतों के साथ श्मशान में नाचते हैं, शरीर पर जले शरीर की राख पोतते हैं, नरमुण्ड की माला पहनते हैं और विवाह के दिन ससुराल में नंगे जाते हैं। आश्चर्य यह है कि ये ऐसे शिव की रत्न सुवर्ण आदि से पूजा करते हैं और उन्हें सुरा तथा देवदासियां अर्पित करते हैं ॥ १४ ॥ इस स्थिति को देख कर प्रभु को क्रोध आया तो उन्होंने इन कपटी शंभुभक्तों और मूर्तिपूजकों का पापी म्लेच्छों की गदाओं से और तलवार से वध और बन्धन कराया तथा इनके सुवर्णरत्नकोष का एवं दासी समूह का उन्हीं म्लेच्छों द्वारा अपहरण कराया ॥ १५ ॥ मैं अनेक शस्त्रों अस्त्रों से युत भीषण चण्डिका के प्रिय उन उग्र भैरव को प्रणाम करता हूं तथा दया की खान माता उमा के वल्लभ उन सोमनाथ प्रभु की वन्दना करता हूं जो शंभव (कल्याण के बीज) और कर्मफल के दाता हैं ॥ १६ ॥

आगमज्ञों का कथन है कि जगदम्बा उमा हृदय और शरीर, दोनों से मल्लिका (बेला) पुष्प की भांति उज्वल हैं, महेश की प्रिया हैं, सद्‌गुणों की स्त्रवन्ती (महानदी) हैं और उदार हैं। विद्वान् भी उन्हें इन गुणों से युत और महाशया मान कर उनका स्मरण करते हैं ॥ १७ ॥ वे अपने कारुण्य, सत्त्व, नम्रता, ज्ञान, सान्त्व (मधुरवाणी और शान्ति) आदि गुणों से सबके मनों को धर्ममार्ग में ले जाती हैं

हृदा वर्ष्मणा चार्जुनं तेऽर्जुनाख्यं प्रसन्नं सुगन्धिं मृडं चिन्तयन्ति ।
नृणां चेतसां धर्ममार्गे प्रवृत्त्यै सभायां चरित्रं तयोः कीर्तयन्ति ॥ १९ ॥
दयाशौर्यविज्ञानतेजोनिधानं जनेभ्यः प्रबोधं ददानं नमन्ति ।
महार्हाम्बरागारयानादिहीनं शिवं दासमृत्युंजयं पूजयन्ति ॥ २० ॥
तयोरात्मजो देवसेनासहायः शठं तारकं धर्मरक्षणाय हत्वा ।
गतः क्रौंचशैलं विभीतो विवाहात् सखीन् मल्लिकामर्जुनं वेश्म हित्वा ॥ २१ ॥
जगत्क्लेशनाशात्मकल्याणलिप्सुः प्रकृत्या महानिन्द्रियार्थेष्वसक्तः ।
स आप्तुं त्रिलोकस्थदेहस्थशक्तीर्विविक्तेऽभवद् राजयोगप्रसक्तः ॥ २२ ॥
गुहं देवसेनापतिं तं नमामो यतीनां गुरुं शक्तिपाणिं कुमारम् ।
स्थितं भ्रामरीधाम्नि नित्यं स्वतन्वा च बोधेन कुर्वन्तमार्तोपकारम् ॥ २३ ॥

और अपने पुण्यों से आकाश और दिशाओं को पूरित कर देती हैं। बुधगण उनकी स्तुति करते हैं और उनका स्मरण करते हुये मन को पवित्र कर देते हैं ॥ १८ ॥ वे उन अर्जुन नामक शिव का चिन्तन करते हैं जो हृदय और शरीर से अर्जुन (गौर) हैं, प्रसन्न हैं, सुगन्धवान् हैं और मृड हैं। वे जनता के मन को धर्ममार्ग में प्रवृत्त करने के लिये सभा में उन दोनों के चरित्र का कीर्तन करते हैं ॥ १९ ॥ वे उन शिव का नमन और पूजन करते हैं जो दया, शौर्य, विज्ञान और तेज के निधान हैं, फिर भी बहुमूल्य वस्त्र, गृह और वाहन से विहीन हैं। जो भक्तों को प्रबोध देते हैं और उनकी मृत्युओं (व्यथाओं, दोषों) को समाप्त कर देते हैं॥ २०॥ मल्लिका और अर्जुन (उमा शंकर) के पुत्र कार्तिकेय देवों के सेनापति हैं। उन्होंने धर्म की रक्षा के लिये शठ तारक का हनन किया और उसके बाद विवाह से भयभीत होकर मित्रों, माता, पिता एवं गृह का त्याग कर क्रौंच पर्वत पर वास किया ॥ २१ ॥

वे जगत् के सभी क्लेशों के निराकरण के तथा आत्मकल्याण के अभिलाषुक थे, स्वभावतः महान् थे और इन्द्रियों के विषयों में अनासक्त थे। वे तीनों लोकों में और शरीर में स्थित अनेकों शक्तियों की प्राप्ति के लिये राजयोग के अभ्यास में संलग्न थे और उस पर्वत पर एकान्त में रहते थे ॥ २२ ॥

हमारा उन देवसेनापति कुमार गुह को प्रणाम है जो योगीश्वर होते हुये भी हाथ में शक्ति धारण करते हैं, भ्रामरी देवी के धाम में स्थित हैं और अपने योग

स्थिता यत्र पातालगंगास्ति कृष्णा पुनीतोदका पर्वतोपत्यकायाम् ।
सदा सुस्वना भ्रामरी स्तौति सूनुं शिवाभर्गयोः पार्श्वगाधित्यकायाम् ॥ २४ ॥
रसालाम्लिकाचन्दनादिद्रुमाणां फलानां घनं काननं यत्सदेशे ।
उमास्कन्दविष्ण्वीशरामादिभक्ता गतेर्ष्या बुधाः सन्ति यस्मिन् प्रदेशे ॥ २५ ॥
झरैराकरैराश्रयैर्गोपघोषैः सुनिर्घोषरूपैर्विहंगैरुपेते ।
स्थितं दक्षिणे तत्र कैलाससंज्ञे कुमारं मनोज्ञे नगे श्रीनिकेते ॥ २६ ॥
नमाम्यावृतं व्याघ्रसिंहैः कुरंगैः शशैर्वानरैर्नीलकण्ठैर्भुजंगैः ।
स्तुतं तापसैर्भूनिपालैः किरातैः कपोतैः पिकैः सारसैः कीरभृंगैः ॥ २७ ॥

की तथा शरीर की शक्ति से सदा दीनों का उपकार करते हैं ॥ २३ ॥

संसार में कुछ ऐसे खल हैं जिन पर सन्तों की शिक्षा का प्रभाव नहीं पड़ता। वे दण्ड से ही मानते हैं। इसीलिये शिव के एक हाथ में डमरु और दूसरे में त्रिशूल है। विष्णु के हाथ में शंख और कमल के साथ गदा और चक्र भी है। दुर्गा काली के हाथों में कमल शंख आदि के साथ खड्ग गदा आदि भी हैं ॥ जहां पर्वत की उपत्यका (निचले भाग) में पवित्र जल वाली कृष्णा नदी स्थित है तथा अधित्यका (ऊपरी भाग) में सुन्दर स्वर वाली भ्रामरी देवी शिवाशिव के पुत्र स्कन्द की स्तुति कर रही हैं ॥ २४ ॥

जिसके सदेश (पास) में आम, इमली, चन्दन आदि अनेक वृक्षों के घने वृक्ष हैं और जिस प्रदेश में उमा, स्कन्द, विष्णु, शिव, राम आदि के ऐसे विद्वान् भक्त विद्यमान हैं जिनमें ईर्ष्या और मतभेद का सर्वथा अभाव है। उनके हृदयों में इनके प्रति छोटे-बड़े की भावना नहीं है ॥ २५ ॥

वे दक्षिण के जिस कैलास पर्वत में स्थित हैं वह मनोज्ञ (सुन्दर) है, पवित्र है, लक्ष्मी का गृह है और झरनों, खानों, मुनियों के आश्रमों, गोपालों के घोषों से तथा सुन्दर स्वर और रूप से युत विहंगों (पक्षियों) से शोभित है ॥ २६ ॥

मेरा उन सुब्रह्मण्य स्कन्ददेव को और उमाशंकर को प्रणाम है जो वहां बाघों, सिंहों, मृगों, खरगोशों, वानरों नीलकण्ठों और सर्पों से आवृत हैं तथा तपस्वियों, भूमिपालों, किरातों, कपोतों, कोकिलों, सारसों, शुकों और भृंगों से स्तुत हैं। जहां पारस्परिक वैर और उच्च-नीच का भाव समाप्त हो गया है ॥ २७ ॥

चतुर्दिक्ष्वधश्चोर्ध्वमाजौ शराणां च भक्तेषु दृष्ट्वास्य कारुण्यपातम् ।
बुधा ऊचिरे भात्ययं कोपि देवः षडास्यो भजे देवमेकाननं तम् ॥ २८ ॥
शिवाजी नृपं नौमि धर्मे च शौर्ये कुमारोपमं धर्मराष्ट्रेशभक्तम् ।
मुहुर्नौम्यहल्यां च यस्या हृदासीदुदारं सुरागारनिर्माणसक्तम् ॥ २९ ॥

महाकालः

नृणामुज्जयिन्या अवन्त्याश्च शक्तेः पतिं त्वामवन्तं जनं साधुपालम् ।
शिवं क्षिप्रयार्द्रांगमार्द्रेशमीडे महाकालमागस्परेभ्यः करालम् ॥ ३० ॥
प्रबोधार्थिने चन्द्रसेनाय राज्ञे गणास्येन विज्ञानचिन्तामणिन्दम् ।
नृपेभ्योऽस्य गोप्तारमीर्ष्यान्वितेभ्यः शरण्यं भजे शंभुमानन्दकन्दम् ॥ ३१ ॥

आजि (युद्ध) में, चारो दिशाओं में और ऊपर-नीचे उनकी बाणवृष्टि को देखकर तथा भक्तों पर करुणामय दृष्टिपात को देखकर विद्वत्समाज कहने लगा कि ये छ मुखों वाले कोई अद्भुत देव प्रतीत हो रहे हैं। मेरा उन एक मुख वाले कार्तिकेय को प्रणाम है ॥ २८ ॥ मेरा उन भूपाल शिवाजी को नमस्कार है जो धर्म और शौर्य में कुमार के अनुयायी थे तथा धर्म, राष्ट्र एवं शिव के भक्त थे। मैं देवी अहल्या को बार-बार प्रणाम करता हूँ जो अति उदार थीं और जिनका हृदय देवागार के निर्माण में आसक्त था। इन दोनों ने यहां प्रशंसनीय कार्य किये हैं॥ २९॥

हर मनुष्य के देह में उज्जयिनी (उत्थानकारिणी) और अवन्ती (संरक्षिका) शक्तियां रहती हैं। निराकार शिव ही उनके स्वामी हैं और वे ही प्रसन्न होने पर उन्हें जगाते हैं। वेद में शिव आर्द्रा नक्षत्र के स्वामी हैं। शिव की शक्ति आर्द्रा माता दयामयी हैं। उनका हृदय स्नेह से आर्द्र रहता है. पहली वर्षा आर्द्रा में ही होती है। गंगा की भांति क्षिप्रा भी शिव की प्रिया हैं। उज्जयिनी नगरी में शिव अपनी इन शक्तियों के साथ साकार हो गये हैं। उन्होंने दयार्द्र होकर साधुओं का उत्थान और संरक्षण तथा कराल होकर आगस्परों (अपराधियों) का वध किया है। उन्हें प्रणाम है ॥ ३० ॥

साकार शंकर ने ज्ञान के इच्छुक उज्जयिनी के राजा चन्द्रसेन को अपने एक गण के आस्य (मुख) से विज्ञानरुपी चिन्तामणि दी तो उनके इस उत्कर्ष से अन्य नृप जलने और उन्हें सताने लगे किन्तु शरणागतवत्सल आनन्दकन्द शिव ने राजा की रक्षा की। उन्हें नमस्कार है ॥ ३१ ॥

शिशुः श्रीकराभीर आविद्धचेता नृपस्येशभक्त्या प्रतीत्यैकतानः ।
हृदा कर्मणानर्च विस्मृत्य निद्रां जलं भोजनं सर्वगं सावधानः ॥ ३२ ॥
स विश्वस्तया चैकसन्तानवत्या सुतानिष्टशंकार्तया नैकवारम् ।
जनन्या निषेधे कृते दूरगोऽर्चत् शिवं चेतसा गद्गदः साश्रुधारम् ॥ ३३ ॥
ततो मानसे शान्तिसत्त्वाधिकत्वात् शिवस्योदयादासुरीवृत्तिहीनः ।
स लेभे शुभाशीः प्रजानां यतीनां स्मरारेः कृपां योगसत्कर्मलीनः ॥ ३४ ॥
भजे पूर्वजं नन्दगोपस्य शंभोः स्वसत्कर्मभिः पूजकं श्रीकरं तम् ।
महाकालमीडे शठैरर्दितानां सतां रक्षकं देहवन्तं भवन्तम् ॥ ३५ ॥

ओंकारनाथः अमलेश्वरः

स्थिता नर्मदा यत्र मान्धातृपुर्यां प्रभो सेवते ध्वानपं नर्मदं त्वाम् ।
तमोंकारनाथामलेशं सदेहं शिवं निर्मलं नौमि विन्ध्याद्रिगं त्वाम् ॥ ३६ ॥

श्रीकर नामक एक अहीर शिशु का हृदय राजा की उस भक्ति और सफलता से आविद्ध हो गया। वह अति प्रतीति के कारण एकतान (एकाग्रचित्त) होकर, अन्न जल निद्रा को प्रायः भूल कर सावधानी से अपने हृदय और कर्म द्वारा सर्वव्यापी ईश्वर का पूजन करने लगा ॥ ३२ ॥ उसकी माता विश्वस्ता (विधवा), एक सन्तान वाली और पुत्र के अनिष्ट की आशंका से आर्त (खिन्न) थी अतः उसने अनेक बार इस कर्म का निषेध किया। इस स्थिति को देख श्रीकर घर से बहुत दूर जाकर क्रियायोग (धारणा, ध्यान, समाधि) में विलीन हो गया। वह गद्गद होकर अश्रुधारा बहाते हुये मन से प्रभु का ध्यान पूजन करने लगा ॥ ३३ ॥

इस कारण उसके मन में शान्ति और सत्त्व का अधिकत्व हो जाने से शिव का उदय हो गया और आसुरी वृत्तियां समाप्त हो गईं। उसके बाद योग और सत्कर्मयोग में लीन होकर उसने प्रजा और सन्तों का शुभाशीर्वाद और शिव का अनुग्रह प्राप्त किया ॥ ३४ ॥ नन्द गोप के अष्टम पूर्वज उस श्रीकर देव को मेरा प्रणाम है जो अपने सत् कर्मों द्वारा जगन्नाथ की पूजा करता था। मेरा उन महाकाल विश्वेश्वर को प्रणाम है जो दूषण आदि शठों से पीड़ित सन्तों की रक्षा के लिये सदेह हो जाया करते हैं ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! मान्धाता की पुरी में नर्मदा (कल्याणदात्री) नदी आप के चरणों में स्थित है, आप की सेवा कर रही है। सारे ध्वान (शब्द) ओम् (अ म) के भीतर स्थित हैं और आप ही आकाश तथा शब्द

वैद्यनाथ

गतौ पुष्कसीकर्कटौ पीडनार्थं महर्षेरगस्त्यस्य शिष्यं सुतीक्ष्णम् ।
उभावुद्धतौ शंभुरोषेण दग्धौ तमाप्तं यतिं पीडयन्तावभीक्ष्णम् ॥ ३७ ॥

विराधं च जामातरं राघवोऽहन् सुता कर्कटी कुंभकर्णेन नीता ।
प्रजा तस्य पुत्रस्य भीमस्य राज्ये मखं धर्मकृत्यानि तत्याज भीता ॥ ३८ ॥

नृपं वन्दिनं कामरूपस्य कृत्वा स चक्रे तदर्च्येश्वरेऽस्त्रप्रहारम् ।
ततो हुंकृतेनैव दग्ध्वा खलं तं दयालुः शिवोऽपाकरोद् भूमिभारम् ॥ ३९ ॥

तमीडेऽर्चितं मूर्तिचित्रेषु भक्तैर्विदेहं प्रभुं देहगं विश्वनाथम् ।
चरन्तं परल्यां सुराष्ट्रे च बंगे चितादौ क्षितावम्बरे वैद्यनाथम् ॥ ४० ॥

के स्वामी हैं। आप प्राणमय पशुपति हैं और ओंकारनाथ हैं। आप विश्वनाथ हैं पर अमल आत्मा वाले आप को विशेष प्रिय हैं। विन्ध्य पर्वत पर स्थित विदेह और सदेह आप ओंकारनाथ और अमलेश्वर को प्रणाम है ॥ ३६ ॥

पुष्कसी और कर्कट महर्षि अगस्त्य के शिष्य सुतीक्ष्ण को कष्ट देने की इच्छा से उनके आश्रम पर गये और उन दोनों उद्धतों ने उन आप्त यति को अभीक्ष्ण (बहुत) पीड़ित किया। तब भगवान् शंकर ने उन्हें अपनी रोषाग्नि से भस्म कर दिया ॥ ३७ ॥

उनके जामाता विराध का श्रीराम ने वध कर दिया और उनकी पुत्री कर्कटी को कुंभकर्ण ले गया। उन दोनों के पुत्र भीम के राज्य में भयभीत प्रजा ने यज्ञ और अन्य धर्मकृत्य बन्द कर दिये ॥ ३८ ॥

भीम ने कामरूप के राजा को बन्दी बना कर उनकी पूज्य मूर्ति पर अस्त्रप्रहार किया तो दयालु शिव ने उसे हुंकार मात्र से भस्म कर भूमि का भार उतारदिया ॥ ३९ ॥

भक्त गण उन विदेह और बहुदेह विश्वनाथ की मूर्तियों और चित्रादिकों के माध्यम से उनकी पूजा करते हैं। वेदों ने उन्हें भिषग्वर (वैद्यनाथ) कहा है। वे धर्म की रक्षा और शान्ति की स्थापना के लिये सदेह होकर परली, सौराष्ट्र, बंग, पृथ्वी, आकाश, चिताभूमि आदि में घूमते रहते हैं। उन्हें प्रणाम है ॥ ४० ॥

भीमशंकरः

भजे भीम भीमातटे सह्यशैले समं जित्वराडाकिनीभिर्भ्रमन्तम् ।
गणैर्जित्वरैरन्वितं पातुमार्यान् मुनींस्तापसान् जाल्महिंस्रांस्तुदन्तम् ॥ ४१ ॥

रामेश्वरः

य आसीत्सहोवान् विजेता नृपाणां सुराणां यमेन्द्राग्निवातादिकानाम् ।
कविर्ज्यौतिषज्ञः श्रुतेर्भाष्यकारो महापण्डितो मन्त्रतन्त्रागमानाम् ॥ ४२ ॥
पटुः सर्ववेदांगशास्त्रोपवेदे गुरुर्नृत्यवादित्रगीतश्रुतीनाम् ।
महान् याजको वैद्यराजोऽप्यभिज्ञः शरीरस्थितप्राणचक्रादिकानाम् ॥ ४३ ॥
पितासीन्मुनिर्विश्रवा यस्य साधुर्नमस्यो महीपालसाधुद्विजानाम् ।
महर्षिः पुलस्त्यश्च तातस्य तातो गुणानां निधिः पूज्यपादः सुराणाम् ॥ ४४ ॥
मुनीनां स संत्रासदोऽपूजयत्त्वां भिषग्राजमुन्मादिधत्तूरकाद्यैः ।
मखे चाखुभिर्लोममांसैः पशूनामसृक्त्वक्शिरान्त्रैर्वसामस्तकाद्यैः ॥ ४५ ॥

आर्यों, मुनियों और तापसों के संरक्षणार्थ तथा धूर्तों और हिंसकों को त्रास देने के लिये भीम (भीषण) रूप धारी शंकर सह्याद्रि के निकट भीमा नदी के तट पर विजेत्री डाकिनियों (देवियों) और विजेता गणों के साथ भ्रमण करते हैं। उन्हें प्रणाम है ॥ ४१ ॥

जो रावण सहोवान् (बली) था, अनेकों नृपों और यम, इन्द्र, अग्नि, वायु आदि सुरों का विजेता था, कवि ज्योतिर्वित् और वेदों का भाष्यकार था, मन्त्र तन्त्र आगम का महापण्डित था ॥ ४२ ॥ सब वेदांगों, शास्त्रों और उपवेदों में पटु था, नृत्य वाद्य और गीत की श्रुतियों का गुरु था, महान् याजक वैद्यराज और शरीर में स्थित वायुओं एवं चक्रादिकों का ज्ञाता था ॥ ४३ ॥ जिसके पिता विश्रवा मुनि साधु ही नहीं, साधुओं, भूपों और द्विजों के पूज्य गुरु थे, जिसके पितामह पुलस्त्य महर्षि गुणों के निधान और देवों के पूज्य थे ॥ ४४ ॥ वह ब्राह्मण मुनियों को त्रास देता था और मोहवश आप वैद्यनाथ का उन्मादक पदार्थों भांग धतूर मदिरा आदि से पूजन करता था। वह यज्ञ में आप को आखु (चूहा) खिलाता था और अन्य देवों को अनेक पशुओं के रोम, मांस, रक्त, त्वचा, नाडी, अंतड़ी, मज्जा, मस्तक आदि अर्पित करता था। वह वेदमंत्रों का भाव नहीं जानता था ॥ ४५ ॥

स्वभक्तस्य किन्त्वेष पौत्रश्च पुत्रः स्वयं ते मखार्चास्तवादौ प्रसक्तः ।
हतो भ्रातृमित्रात्मजाद्यैः समेतो महेश त्वया रक्षितो न स्वभक्तः ॥ ४६ ॥
सुभार्यः सहोमानपि ब्रह्मचारी सुकर्मैव पूजां मखं मन्यमानः ।
गुणानां निधित्वादभूद्रामचन्द्रः सतां चासतां ते प्रियाणां प्रधानः ॥ ४७ ॥
अजानामतो जागरूकोऽस्ति यस्मिन् मनुष्ये तवांशः स एव प्रियस्ते ।
नरे तामसेऽस्तंगतो यत्र तेंऽशः स पूजापरोऽप्यस्ति नो संमतस्ते ॥ ४८ ॥
ससीतं ततो नौमि रामं तथा त्वां स्थितं सेतुबन्धे तटे त्र्यर्णवानाम् ।
प्रदानाय शान्तेर्वनेष्वब्धितीरे भ्रमन्तं गुहासूच्चशृंगेष्वगानाम् ॥ ४९ ॥
धनुष्कोटिगो रामवातायनस्थो विलोक्याम्बरे भानि सिंधूनजानाम् ।
गुणाब्धौ नरेऽप्यस्ति नो पूर्ण ईशो न कर्तृत्वमस्मिन् खतारार्णवानाम् ॥ ५० ॥

किन्तु हे महेश! आप ने अपने भक्त के पौत्र, भक्त के पुत्र और अपने अर्चन स्तोत्रपाठ यज्ञ आदि में रत अपने भक्त की रक्षा नहीं की। भाई पुत्र मित्र आदि के साथ उसे मार डाला ॥ ४६ ॥ दूसरी ओर श्रीराम साधुओं के, असाधुओं के और आपके सर्वश्रेष्ठ प्रिय हो गये। कारण यह था कि वे बलवान् और एक सुन्दरी नारी के पति होने पर भी बहुत दिनों तक ब्रह्मचर्य से रहे। वे गुणों के निधान थे और सत्कर्म को ही पूजा और यज्ञ मानते थे ॥ ४७ ॥ अतः मैं जान गया कि आप को वही मानवं प्रिय है जिसमें आप जाग रहे हैं, जो सात्त्विक है। जो मनुष्य तामस है, जिसमें आप का अंश सो गया है वह यजन पूजन में तत्पर रहने पर भी आप को अप्रिय लगता है ॥ ४८ ॥ अतः मैं सीताराम को प्रणाम करता हूं क्योंकि उनके हृदयों में स्थित ईश्वर पूर्णोदित हैं, जागरूक हैं तथा आप के उस रामेश्वर रूप को नमस्कार करता हूं जो सेतुबन्ध में तीन समुद्रों के संगम में स्थित है तथा संसार को शान्ति देने के लिये वनों में, समुद्रतटों पर और पर्वतों की गुफाओं में, उनके शृंगों पर घूम रहा है ॥ ४९ ॥

हे प्रभो! मैं यहां धनुष्कोटि और रामझरोखे पर बैठ कर जब तीनों सागरों और आकाश के तारों आदि को देखता हूं तो मनन के बाद इस परिणाम पर पहुंचता हूं कि कोई मानव गुणों का सागर होने पर भी ईश्वर का पूर्णावतार नहीं हो सकता क्योंकि उसमें ख (आकाश) के तारों, ग्रहों और सागरों के निर्माण की शक्ति नहीं है अतः वह अंशावतार ही है ॥ ५० ॥

नागेश्वरः

प्रजाः पीडिता दारुकादम्पतीभ्यां गता और्वमौर्वप्रभं तेन शप्तौ ।
गृहीत्वा कुलं विद्रुतावब्धिकूलं शिवं पूजयित्वाप्यभूतां प्रतप्तौ ॥ ५१ ॥

अथो तत्र लोकप्रियं सुप्रियं तौ विशं निर्धनं चक्रतुः सद्विचारम् ।
निशम्य स्थितिं तस्य तत्राशु यातं दयाब्धिं शिवं नौमि भक्तावितारम् ॥ ५२ ॥

सदुग्धानदीदण्डकारण्यभूमौ गदातीर्थगोकर्णरामाचलानाम् ।
समीपे चरं नौमि नागेश्वर त्वां गुहास्थं तुलस्याः प्रियं तापसानाम् ॥ ५३ ॥

विश्वनाथः

गुरुं भूपतीनां सतीनां गतेहं विभूतिव्रजेशं दरीकुंजगेहम् ।
यतिभ्यः प्रबोधप्रकाशप्रदं त्वां नमाम्यन्नपूर्णेश काशीपतेऽहम् ॥ ५४ ॥

दारुकदम्पति रावण की ही भांति शिवभक्त होकर भी धन के लिये प्रजा का शोषण करते थे। उनसे पीड़ित जनता अपना कष्ट सुनाने और्व (अग्नि) के समान तेजस्वी और्व मुनि के पास गई तो उन्होंने दारुक को शाप दिया। दारुक उनसे भयभीत हो कर पूरे परिवार के साथ समुद्र के किनारे भाग गया। वह शिव का पूजक होने पर भी सन्तप्त था ॥ ५१ ॥

अपने स्वभाव से बाध्य होकर उन्होंने वहां भी पवित्र विचार वाले लोकप्रिय सुप्रिय नामक वैश्य को निर्धन कर दिया। उसकी इस स्थिति को जानकर दयासागर और भक्तों के तारक शिव ने वहां पहुंच कर उसकी रक्षा की ॥ ५२ ॥

दुग्धा नदी से शोभित दण्डकारण्य में गदातीर्थ, गोकर्ण, रामाचल आदि के पास भ्रमण करने वाले, गुहा में स्थित, तापसों और तुलसी के प्रिय उन नागेश्वर शिव को प्रणाम है ॥ ५३ ॥

धर्म की रक्षा के लिये ईश्वर ने विभिन्न स्थानों में अवतार लिये हैं। काशीनाथ शिव भूपों और यतियों के गुरु तथा अनेक विभूतियों के स्वामी होकर भी दरीकुंजवासी और गतेह (निष्काम) हैं। वे अन्नपूर्णा शक्ति के स्वामी हैं और यतियों (यत्न करने वालों) को प्रबोध रूपी प्रकाश देते हैं। यह काशयुक्त स्थिति ही काशी है ॥ ५४ ॥

स्मरामीश काशीं पुरीं वल्लभां ते कदापि त्वया कोविदैर्नो वियुक्ताम् ।
गुणात्मत्रिशूलाग्रगां ते गुणग्रयैर्गणैर्वारुणासीसखीभ्यां च युक्ताम् ॥ ५५ ॥

मठैराश्रमैरुच्चसोपानसौधैर्युता मन्दिरैरालिकाश्यन्तिकंगा ।
बहुप्राज्ञभक्तान्विता पुष्टिदा त्वां पुनीतोदका सेवते यत्र गंगा ॥ ५६ ॥

परानन्ददाः कर्णयोः सन्ति यस्यां श्रुतेर्भूरिशाखान्विता वेदशालाः ।
मनोनेत्रयोस्तृप्तिदाः सन्ति सन्तो बुधा भस्मरोचिष्णुबाह्वंसभालाः ॥ ५७ ॥

क्वचित् सन्ति शाक्ताश्च शक्त्यर्थविज्ञाः श्रियं भारतीं मंगलां चिन्तयन्तः ।
दयातुष्टिपुष्टिक्षमाशान्तिलक्ष्मीतितिक्षादिविष्वीशशक्तीः स्मरन्तः ॥ ५८ ॥

हे शिव! आप की प्रिया उस काशी को प्रणाम है जो कभी भी आप से और विद्वानों से विहीन नहीं होती, जो तीनों गुणों के योग रुपी त्रिशूल के अग्रभाग में स्थित है तथा गुणों के निधान गणों से और वरुणा एवं असी नाम्नी सखियों से युत है ॥ ५५ ॥ जहां पवित्र जल वाली, पुष्टिप्रदा, उच्च सोपानों (सीढ़ियों) वाली, अनेक मठों, आश्रमों, भव्य भवनों, मन्दिरों और गुणागार भक्तों से युता तथा अपनी सखी काशी के पास स्थिता गंगा आप की सेवा में रत है ॥ ५६ ॥ जहां कानों को परमानन्द देने वाली वेदों की अनेक शाखाओं से युत वेदशालायें हैं, मन और नेत्र को तृप्ति देने वाले सन्त हैं तथा भस्म से सुशोभित बाहु, स्कन्ध और भाल वाले विद्वान् हैं ॥ ५७ ॥

जहां के शाक्त शक्ति शब्द के अर्थ को जानते हैं। उनका कथन है कि विष्णु (सर्वव्यापी परमात्मा) में लक्ष्मी सरस्वती उमा दया तुष्टि पुष्टि क्षमा शान्ति लक्ष्मी तितिक्षा कान्ति श्रद्धा मैत्री लज्जा उन्नति मेधा बुद्धि आदि अनेक शक्तियां विद्यमान हैं। वे उनकी पत्नी और प्रियायें भी कही जाती हैं। वे हम मनुष्यों के शरीर में भी स्थित हैं। हमें चिन्तन और स्मरण करते हुये उन्हें जगाना चाहिये। उन सुषुप्त शक्तियों को गुरु की बताई विधियों से योगाभ्यास द्वारा प्राप्त करना चाहिये। वे प्रार्थना से नहीं अपितु अभ्यास से मिलती हैं। काशी के इन शाक्तों का शैवों और वैष्णवों से विरोध नहीं अपितु मतैक्य है क्योंकि ये शक्तियां ईश्वर विष्णु की ही हैं ॥ ५८ ॥

क्वचिद् वैष्णवाः सन्ति विश्वेशभक्ताः पुनीतं सुरत्र्यायुषं कामयन्तः।
समश्रद्धया त्र्यम्बकं मृत्युजैत्रं विधिं रामकृष्णौ च बुद्धं स्मरन्तः॥ ५९ ॥
क्वचिद् वेदवेदांगविज्ञानविज्ञा महापण्डिता देवकल्पा विरागाः।
तपोमूर्तयस्त्यक्तदेहार्थचिन्ता जगन्मंगले मंगलायां सरागाः॥ ६० ॥
परित्यज्य गेहे रतिं बन्धहेतुं क्वचित् सन्ति संन्यासिनो भाग्यवन्तः।
जपन्तोऽत्र पंचाक्षरं मन्त्रराजं सशक्तिं शिवं सर्वगं संस्मरन्तः॥ ६१ ॥
शिवांशः शिवोहं वदन्तो मलानां निरासाय वेदान्तवाक्ये रमन्तः।
भ्रमन्तो ममाहं परित्यज्य धन्याः स्वकृत्यैर्वचोभिः शिवं स्मारयन्तः॥ ६२ ॥

शाक्तों की ही भांति यहां के वैष्णव भी विश्वनाथ और जगन्नाथ को एक मानते हैं। उनके हृदयों में मृत्युंजय, त्र्यम्बक, विधाता, रामकृष्ण और बुद्ध में भेदभाव नहीं है। वे ईश्वर से सदा यह प्रार्थना करते रहते हैं कि हमारी बाल्य, युवा और वृद्ध, तीनों अवस्थायें जमदग्नि, कश्यप, देवों और तीर्थंकरों की भांति बीतें॥ ५९ ॥

यहां वेदों वेदांगों के साथ विज्ञान के विज्ञ ऐसे महापण्डित विद्यमान हैं जो विषयों से विरक्त हैं, उन्होंने शरीर और धन की चिन्ता छोड़ दी है किन्तु उन्हें संसार के मंगल में और माता सर्वमंगला (पार्वती) में अनुराग है, वे देवतुल्य हैं और तप की मूर्ति हैं॥ ६० ॥

यहां ऐसे अनेक भाग्यशाली संन्यासियों का निवास है जो गृहस्थाश्रम से विरक्त हैं, उसे बन्धन का हेतु मानते हैं और शक्तियुत शिव का स्मरण करते हुये पांच अक्षरों वाले मन्त्रराज का जप करते हैं॥ ६१ ॥

ये धन्य पुरुष कहते हैं कि मैं शिव हूं, शिव का अंश हूं पर दुर्भाग्य से अपनी महत्ता को भूल गया हूं। ये मेरे तेरे की भावना का परित्याग कर मन में स्थित मलों की समाप्ति के लिये वेदान्त वाक्यों का मनन करते हैं, संसार में सुख-शान्ति की स्थापना के लिये घूमते रहते हैं और वचनों से ही नहीं कर्म से शिव का स्मरण कराते हैं॥ ६२ ॥

कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः (श्रीशंकराचार्य)

नमस्तेऽस्तु नारायणायेति वाचं समाकर्ण्य नारायणेति ब्रुवन्तः ।
प्रयच्छन्ति नाशीरमी सर्वनॄणां स्थितं हृत्सु नारायणं भावयन्तः ॥ ६३ ॥

अमीषां मतेऽस्त्यत्र नो कोऽपि मर्त्यो जनेर्वा प्रकृत्या जघन्यः कनिष्ठः ।
हृदीशोदयादल्पधीरप्ययोग्यो भवत्याशु धीमान् महेच्छो वरिष्ठः ॥ ६४ ॥

परित्यज्य मिथ्याग्रहान् भेदभावानमी मन्वते विष्णुमेव स्मरेशम् ।
शिवं सर्वगं ब्रह्म नारायणं वा प्रजानां पतिं वासुदेवं भवेशम् ॥ ६५ ॥

विलोक्यार्जवं धर्मनिष्ठां तथैषां दयासत्क्रियाशौचमैत्रीतितिक्षाः ।
निशम्याद्भुता योगसिद्धीश्च शक्तीर्विचित्रानुभूतीर्हिता उच्चशिक्षाः ॥ ६६ ॥

नरास्तार्किका अन्धभक्तेर्विरुद्धाः प्रयोगस्य दृश्यानुभूत्योश्च भक्ताः ।
परित्यज्य शंका जुगुप्सा अभूवन्नमीषां नियोज्याः प्रशंसाप्रसक्ताः ॥ ६७ ॥

इन महात्माओं का कथन है कि हर मनुष्य के हृदय में नारायण का वास है अतः ये 'नमो नारायणाय' कह कर नमस्कार करने पर आशीर्वाद नहीं देते, केवल नारायण नारायण कहते हैं ॥ ६३ ॥ इनके मत में कोई भी मनुष्य जन्म से या स्वभाव से पापी या छोटा नहीं होता। छोटा वह है जिसके हृदय में स्थित नारायण सुषुप्त हैं। गुरुकृपा से उनके जाग जाने पर मन्दबुद्धि और अयोग्य मनुष्य भी कुछ ही समय में मेधावी, महाशय और बड़ा हो जाता है ॥ ६४ ॥

ये सम्प्रदायगत मिथ्या दुराग्रह और भेदभाव का परित्याग कर विष्णु को ही मदनेश, सर्वव्यापी शिव, परब्रह्म, नारायण, प्रजापति (ब्रह्मा), वासुदेव और भवेश (विश्वनाथ) मानते हैं। ये नारायण और शिव नामों का एक साथ श्रद्धापूर्वक उच्चारण करते हैं ॥ ६५ ॥ इनकी नम्रता, धर्मनिष्ठा, दया, सदाचार, शौच, मैत्री, तितिक्षा, अद्भुत योगसिद्धियों, आश्चर्य जनक अनुभूतियों और हितावह उच्च शिक्षाओं को देखकर और सुनकर ॥ ६६ ॥ शंका और निन्दा का सर्वथा परित्याग कर ऐसे मनुष्य भी इनके दास और अति प्रशंसक हो गये हैं जो पहले घोर तार्किक थे, अन्धश्रद्धा के विरोधी थे और प्रयोगात्मक ज्ञान, प्रत्यक्ष एवं अनुभूति के ही भक्त थे। किसी भी सिद्धान्त को इसलिये नहीं मानते थे कि वह पुरानी पोथियों में लिखा है ॥ ६७ ॥

इमे योगिनः कुर्वते निर्मलैः स्वैर्मनोभिर्मरुन्मण्डलं निर्विकारम् ।
नृणां हृत्सु सम्प्रेषयन् स्वं पवित्रं विचारं च कुर्वन्ति लोकोपकारम् ॥ ६८ ॥
सतां सिद्धिदाः अत्र योगीशपुर्यां क्वचित् सन्ति सूक्ष्मांगसिद्धा भ्रमन्तः ।
क्वचिन्नीतिविज्ञाश्च शान्तेः समृद्धेरुपायान् सदा चिन्तयन्तो दिशन्तः ॥ ६९ ॥
क्वचिच्छंखघंटामृदंगादिनादैः क्वचिद् वेणुवीणास्वरैश्चित्तमोषैः ।
हरन्त्यामयानीशमर्चन्त्यभिज्ञाः सुगीतैर्द्विनृत्यस्तवैः सामघोषैः ॥ ७० ॥
हरन्त्यत्र हृद्देहरोगान् सुवैद्या विनैवौषधं प्राकृतैः सूपचारैः ।
तथा साधवः स्नेहतः शक्तिपाताच्छुभाशीर्भिरक्ष्णोंशुपातैरुदारैः ॥ ७१ ॥
पृथग्वेषभूषा नरा भिन्नभाषाः परित्यक्तभेदाः कनिष्ठा महिष्ठाः ।
दविष्ठा अपि स्निग्धभावा भवानीं शिवं माधवं पूजयन्त्येकनिष्ठाः ॥ ७२ ॥

ये योगी अपने पवित्र मनों द्वारा वायुमण्डल और आकाश को निर्मल बनाते हैं और जनता के हृदयों में अपने पवित्र विचारों को पहुंचा कर समाज का उपकार करते हैं ॥ ६८ ॥ योगियों की इस पवित्र प्रकाशी पुरी में सन्तों और योगियों को सिद्धियां प्रदान करने वाले ऐसे अनेक सिद्ध पुरुष घूमते हैं जिनके शरीर सूक्ष्म हैं तथा नीति और राजनीति के ऐसे अनेक विशेषज्ञ महात्मा हैं जो सर्वदा समाज की शान्ति और समृद्धि के उपायों का चिन्तन और निदेशन किया करते हैं ॥ ६९ ॥ यहां कहीं मनोहारी शंख घंटा मृदंग आदि के नाद है और कहीं वंशी वीणा के सुस्वर सुनाई देते हैं। संगीतशास्त्र के मर्मज्ञ आचार्य इनसे, विभिन्न रागों में गाये गीतों से, ताण्डव और लास्य नामक दो प्रकार के नृत्यों से, स्तोत्रों से और साममन्त्रों के सुघोषों से ईश्वर का अर्चन करते हैं तथा इनके द्वारा मनुष्यों के शारीरिक एवं मानसिक आमयों (रोगों) को हर लेते हैं ॥ ७० ॥

यहां के आयुर्वेदाचार्य औषधों का प्रयोग किये विना केवल प्राकृतिक सदुपचारों से मनुष्यों के मानस और शारीरिक रोगों को समाप्त कर देते हैं और साधु एवं योगी अपने स्नेह से, उदार शक्तिपात से, नेत्रों की किरणों के निपात से तथा शुभाशीर्वाद से वही कर्म करते हैं ॥ ७१ ॥ यहां पूरे भारत के हर जाति के भक्त गण छोटे, बड़े तथा वेष, प्रान्त और भाषा के भेदभाव को भूल कर गंगास्नान और देवदर्शन के लिये आते हैं। वे दूरस्थ होने पर भी स्नेहार्द्र हो कर एक निष्ठा से अन्नपूर्णा, शिव, माधव, दुर्गा, हनुमान् कालभैरव, दण्डपाणि आदि की पूजा करते हैं ॥ ७२ ॥

ददत्यत्र पौरस्त्यपाश्चात्यविद्या बुधा विश्वविद्यालयेषूभयज्ञाः ।
क्वचित् शल्यविज्ञाश्च यच्छन्ति वैद्यास्तनौ मानसे स्वास्थ्यशान्ती च विज्ञाः ॥७३॥
क्वचिच्चित्रकौशेयपीताम्बराणां वणिज्या क्वचिद् हेमरत्नादिका नाम् ।
क्वचिन्मूर्तिपात्रापणः क्वापि वीथी प्रभूतान् सुरानर्चितुं मालिकानाम् ॥ ७४ ॥
निशम्यास्य तीर्थस्य शान्तिं प्रभावं धराया
अनेकः समूहो बुधानाम् । समायाति शान्तिप्रबोधो–
पलब्ध्यै स्वयं दर्शनायात्र भूभेः सुराणाम् ॥ ७५ ॥

बुद्धदेवः

ऋषीणां शिवे पत्तनेऽत्र प्रकाश्यां स्थितं सारनाथे शिवस्यावतारम् ।
वयोवृद्धविद्यातपोवृद्धवन्द्यं युवानं मुनिं नौमि धर्मावितारम् ॥ ७६ ॥
प्रभुं दक्षिणामूर्तिवत् काननेस्मिन् वटाधोऽपि बोधिद्रुमाधो वसन्तम् ।
भजे मूर्तिगं स्वेन मौनेन शिक्षां ददानं जिनं बुद्धदेवं भवन्तम् ॥ ७७ ॥

यहां के विश्वविद्यालयों में पूर्व और पश्चिम दोनों की विद्यायें पढ़ाई जाती हैं। उनमें दोनों के विद्वान् विद्यमान हैं। औषधालयों में कहीं शल्यवेत्ता वैद्य हैं और कहीं मानस रोगों के अभिज्ञ हैं। वे शरीर और मन को शान्ति देते हैं ॥ ७३ ॥ यहां कहीं चित्र विचित्र रेशमी वस्त्रों के, पीताम्बरों के, सोना और रत्नों के आभूषणों के, चित्र विचित्र मूर्तियों के, पात्रों के आपण हैं तो कहीं-कहीं अनेक देवों के पूजन के लिये मालियों की सामग्री की वीथी है ॥ ७४ ॥

इस तीर्थ की शान्ति और प्रभाव का गुणानुवाद सुन कर विश्व के विद्वानों के अनेक समूह शान्ति और प्रबोध की प्राप्ति के लिये तथा इन भूसुरों का स्वयं दर्शन करने के लिये आते रहते हैं ॥ ७५ ॥

ऋषियों के इस शिवपत्तन (मांगलिकस्थान) प्रकाशी के सारनाथ में विराजमान, वयोवृद्ध विद्यावृद्ध तपोवृद्ध महान् पुरुषों से वन्दित, धर्म के संरक्षक, भगवान् शंकर के अवतार युवक मुनि श्रीगौतम बुद्ध को मेरा प्रणाम है ॥ ७६ ॥ श्रीशंकराचार्य ने शिवावतार, श्रीदक्षिणामूर्ति के विषय में लिखा है कि वटवृक्ष के नीचे मौनी युवक गुरु बैठे हैं और उनके चारों ओर नीचे वृद्ध योगीश्वर शिष्य विराजमान हैं। आश्चर्य है, मौन ही गुरु का व्याख्यान है और शिष्यों के संशय समाप्त हो गये हैं।

मृगाणां दवेऽस्मिन् क्वचित् सन्ति वीथ्यः पलाशाम्रयज्ञांगबोधिद्रुमाणाम् ।
वटक्षीरिणीश्रीफलाशोकजम्बूशमीपर्कटीनिम्बधात्र्यादिकानाम् ॥ ७८ ॥
क्वचित् केतकीरात्रिगन्धोत्पलानां च कस्तूरिकामालतीचन्दनानाम् ।
क्वचिन् मल्लिकादेवदारुद्रुमाणां सुगन्धोऽस्ति नानासुमानां फलानाम् ॥ ७९ ॥
क्वचित् सन्ति खेलारताः कृष्णसाराः कुरंगाः शशाः पिंगकृष्णप्लवंगाः ।
क्वचिद् हृद्यरावा मनोज्ञा मयूराः कपोताः शुकाः कोकिलाद्या विहंगाः ॥ ८० ॥
क्वचित् पर्णशालासु देवोपमानां निवासोऽस्ति संन्यासिनां भिक्षुकाणाम् ।
क्वचिन् मन्दिरे मूर्तयः सन्ति शंभोर्महावीरबुद्धर्षभादेः सुराणाम् ॥ ८१ ॥
वनस्यास्य सन्दर्शनाच्चात्र वासात् अपिक्रूरकम्रोद्धतानां खलानाम् ।
भवन्ति प्रशस्तानि चेतांसि नूनं प्रभावान्नभोभूमरुत्तापसानाम् ॥ ८२ ॥

चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा ।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु च्छिन्नसंशयाः ॥

यहां भी वही स्थिति है। इस कानन में दक्षिणामूर्ति की ही भांति प्रभु कभी वटवृक्ष के नीचे तथा कहीं बोधिद्रुम (पीपल) की छाया में एक मूर्ति में बैठे हैं। उनके चरित्र को जानने वाले भक्तों को उस युवा मौनी मूर्ति से ही शिक्षायें प्राप्त हो जाती हैं, हृदय सात्त्विक हो जाता है। उन जिन बुद्धदेव को प्रणाम है ॥ ७७ ॥ इस मृगदाव में कहीं पलाश, आम, यज्ञांग (गूलर), पीपल आदि की पक्तियां हैं तो कहीं वट, खिरनी, बेल, अशोक, जामुन, शमी, पकड़ी, नीम, आंवला आदि की ॥ ७८ ॥ कही केवड़ा, रातरानी, कमल, कस्तूरी, मालती (चमेली) और चन्दन का तो कही मल्लिका (छोटा बेला) देवदारु, नाना प्रकार के पुष्पों फलों आदि का सुगन्ध है ॥ ७९ ॥ कहीं कृष्णमृग, मृग, खरगोश, काले भूरे वानर आपस में खेल रहे हैं तो कहीं सुन्दर मयूर, कपोत, शुक, कोकिल आदि पक्षियों के मनोहारी राव (कूज़न) हैं ॥ ८० ॥

कहीं पर्णशालाओं में देवतुल्य संन्यासियों और भिक्षुओं का निवास है तो कहीं मन्दिरों में शंभु, महावीर, बुद्ध, ऋषभदेव आदि देवों की मूर्तियां मानस को शुद्ध और सात्त्विक बना रही हैं ॥ ८१ ॥ इस वन के दर्शन से और इसमें निवास से क्रूर, कामी एवं उद्घत खलों के चित्त भी नूनं (निश्चित रूप से) प्रशस्त हो जाते हैं। यह यहां के नभ, भूमि, वायुमण्डल और तपस्वियों का प्रभाव है ॥ ८२ ॥

भजे सर्वतोभद्र शौद्धोदने त्वामघान्ताय मायागृहे जायमानम् ।
प्रतीत्यं समुत्पादमार्यं च सत्यं त्रिरत्नं श्रुतेः पंचशीलं ददानम् ॥ ८३ ॥

विकासाय सत्त्वस्य सर्वार्थसिद्ध्यै प्रबोधाय सत्यस्य सर्वार्थसिद्धम् ।
धरामागतं मारजिद्धर्मराजं शिवं श्रीघनं गौतमं नौमि बुद्धम् ॥ ८४ ॥

जयेऽर्थापहारे नराणां पशूनां वधे तत्परेभ्यो मखेभ्योऽवितारम् ।
जिनार्हन् भजे ज्ञानयज्ञप्रियं त्वां मुनिं शाक्यसिंहं प्रबोधावतारम् ॥ ८५ ॥

जगत् में व्याप्त अघों का अन्त करने के लिये भाग्यशाली महाराज शुद्धोदन के पुत्र के रूप में माता माया के गृह में जायमान सर्वतोभद्र (सबका भला करने वाले) बुद्धदेव! आप को मेरा प्रणाम है। आप ने प्रतीत्यसमुत्पाद, आर्य सत्य, त्रिरत्न और श्रुतिसंमत पंचशील का उपदेश दे कर हमारा उद्धार किया है॥ ८३॥

बौद्धधर्म के त्रिरत्न हैं—मैं बुद्ध (बोधप्राप्त महात्मा) की, धर्म (अभ्युदय कारक मार्ग) की और सन्तसंघ की शरण में जाता हूं। श्रौत (वैदिक) पंचशील ही बुद्ध का पंचशील है। महर्षि पतंजलि ने अपने योगशास्त्र में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को पंचशील (यम) कहा है। अचौर्य और अपरिग्रह में थोड़ा-सा अन्तर है अतः बुद्धदेव ने दोनों को एक मान कर सुरा आदि मादक द्रव्यों के परित्याग को पांचवां शील कहा है ॥ ८३ ॥

१ बुद्धं सरणं गच्छामि, २ धम्मं सरणं गच्छामि, ३ संघं सरणं गच्छामि ॥

१ पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदं समादियामि, २ अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि, ३ कामेसु मिथ्याचारा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि, ४ मुसावादा, ५ सुरा मेरयमज्जपमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि ॥

सत्त्व के विकास, सत्य के प्रबोध और सबकी कार्यसिद्धि के लिये सर्वार्थसिद्ध, मारजित् (कामेश्वर) धर्मराज, श्रीघन नामों वाले गौतम बुद्ध के रूप में जो शिव धरा पर अवत्तीर्ण हैं उन्हें मेरा प्रणाम है ॥ ८४ ॥

जो मख (यज्ञ) दिग्विजयों द्वारा धनापहरण में और हवन द्वारा मनुष्यों एवं पशुओं के वध में तत्पर थे उनसे जिन्होंने हमारी रक्षा की उन ज्ञानयज्ञ के प्रेमी, प्रबोध के साक्षात् अवतार जिन, अर्हन् महावीर मुनि को तथा शाक्यसिंह बुद्धदेव को प्रणाम है ॥ ८५ ॥

प्रभुर्मन्दिरे योऽस्ति पद्मासनस्थः प्रकाशप्रदो योगिनां चक्रवर्ती ।
नियम्यानिलं न्यस्तनासाग्रदृष्टिः सबुद्धः प्रबुद्धोस्तु मच्चित्तवर्ती ॥ ८६ ॥

त्र्यम्बकेश्वरः

अहल्यान्वितं गौतमं ब्रह्मशैले कुशावर्ततीर्थे विलोक्येष्टिलीनम् ।
भजे त्र्यम्बकं तत्र गोदोद्गमस्थं सहापर्णया भक्तिभाजामधीनम् ॥ ८७ ॥

केदारनाथः

हिमस्यालयो वित्तराड्दिश्युदीच्यां शिरो भारतस्यास्ति शंभोर्नगेशः ।
वसत्यत्र साकं गणैर्हैमवत्या सुरैस्तापसैर्देवदेवो महेशः ॥ ८८ ॥
नगो भात्ययं शंभुवन्नीलकण्ठः सनीरैर्घनैः सान्द्रसालैस्तमालैः ।
दिनेशांशुभिः सन्ध्ययोः क्वापि शोणः क्वचित् सप्रसूनैः पलाशै रसालैः ॥ ८९ ॥

ज्ञानरुपी प्रकाश के दाता और योगियों के चक्रवर्ती जो बुद्धदेव हमारे हृदय में हैं, यहां मन्दिर में पद्मासन में बैठे हैं, जिन्होंने प्राण, अपान आदि सब वायुओं को जीत लिया है, जिनकी दृष्टि नासाग्र पर स्थिर है वे हमारे हृदय में जाग जायें, यही प्रार्थना है ॥ ८६ ॥

महर्षि गौतम अपनी धर्मपत्नी अहल्या देवी के साथ ब्रह्मशैल के पास कुशावर्त तीर्थ में एक ऐसी इष्टि (यज्ञ) में लीन थे जिसका उद्देश्य लौकिक ईतियों (अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि) को दूर करना था। भक्तों के वशवर्ती भगवान् शंकर माता पार्वती के साथ उनकी सहायता के लिये वहां पहुंच गये। महानदी गोदावरी के उद्गम स्थान में स्थित वे शंकर त्र्यम्बकेश्वर कहे जाते हैं। उन्हें प्रणाम है ॥ ८७ ॥ वित्तराज (कुबेर) की दिशा उत्तर में स्थित नगराज हिमालय भारतमाता का शिर है। देवदेव शंकर ने मानव रूप धारण कर यहां सात्त्विक मानवों की रक्षा की थी। वे सूक्ष्म रूप में माता हैमवती (पार्वती), अपने गणों और देवों के साथ यहां निवास कर अभी भी सज्जनों और तपस्वियों की रक्षा करते हैं। उन केदारनाथ को प्रणाम है ॥ ८८ ॥ यह पर्वत कई दृष्टियों से साकार शंकर सा दिखाई देता है। सजल मेघों, घने सालवृक्षों और तमालों से नीलकण्ठ प्रतीत होता है तथा लाल पुष्पयुत पलाश और आम के वृक्षों एवं प्रातः सायं काल की सूर्य किरणों से शोण (रक्त) हो जाता है ॥ ८९ ॥

हिमार्कप्रभाश्वेतमेघाश्मगौरो विभात्येष गंगाधरः श्वेतकायः।
सदाशीःप्रदः प्रोन्नतैः शृंगहस्तैरयं व्योमकेशः प्रजानां सहायः ॥ ९० ॥
मृगैश्चन्दनैर्देवदार्वादिवृक्षैः सुगन्धिः प्रभूतप्रसूनौषधीभिः।
तथा पुष्टिदो भाति मीढुष्टमोऽयं पयोदैर्झरैः सत्पयोयुङ्नदीभिः ॥ ९१ ॥
पशूनां पतिः कुंजरैः कृष्णसारैः शशव्याघ्रसिंहप्लवंगैः कुरंगैः।
नटेशो मयूरैः पिकैः कीरहंसैः कपोतादिसुध्वानरूपैः पतंगैः ॥ ९२ ॥
मयोभूश्च मृत्युंजयस्तापहारी विशुद्ध्या नभोवातनीरक्षितीनाम्।
तपोभूमिभिर्भूरियोगीश्वराणां च सद्भावनायुङ्मनोभिर्मुनीनाम् ॥ ९३ ॥
भवन्त्यत्र चेतांसि शान्त्या हिमाद्रेरपि क्षुल्लकानां नृणां सात्त्विकानि।
तथा दर्शनाद्योगिनां सौधजायाधनापत्यवृन्दान्यरं विस्मृतानि ॥ ९४ ॥
कदापि त्यजन्तीह नो शान्तिलक्ष्मीप्रतिष्ठाः प्रजा वा यथा सन्नरेशम्।
तथा नो विमुञ्चन्त्यमुं योगिवर्या न गौरीमहादेवदेवा नगेशम् ॥ ९५ ॥

हिमालय सचमुच गंगाधर है और हिम, सूर्य की श्वेत किरणों, श्वेतमेघों और श्वेत पाषाणों से गौरवर्ण गंगाधर शंकर सा दिखाई देता है। यह अपने शृंगरूपी उन्नत हस्तों से हमें सदा आशीर्वाद दे रहा है, शिव की ही भांति व्योमकेश है और हमारा सहायक है ॥ ९० ॥ वेदों ने शिव को नील, लोहित, गौर वर्ण, व्योमकेश, सुगन्धि, पुष्टिवर्धन, मीढुष्टम (आनन्दवर्षक), पशुपति, नटराज, मयोभव, मृत्युंजय, योगीश्वर आदि कहा है। हिमालय पर्वत कस्तूरीमृगों से, चन्दन देवदारु आदि वृक्षों से तथा अनेक पुष्पों और औषधियों से सुगन्धि है, पयोदों, झरनों एवं स्वच्छ जलयुक्त नदियों से मीढुष्टम और पुष्टिप्रद है ॥ ९१ ॥ गजों, कृष्णमृगों, खरगोशों, बाघों, सिंहों, वानरों, मृगों आदि से पशुपति है और मयूरों, कोकिलों, शुकों, हंसों, कपोतों आदि सुशब्द, सुरुप पक्षियों से नटराज है ॥ ९२ ॥ आकाश, वायु, जल, पृथ्वी की विशुद्धि से, योगीश्वरों की अनेक तपोभूमियों से और सद्भावना युक्त मन वाले मुनियों से मयोभव (मुक्तिप्रद, आनन्दप्रद), मृत्युंजय और तापहारी है ॥ ९३ ॥

यहां हिमालय की शान्ति से और योगियों के दर्शन से क्षुद्र मनुष्यों के मन भी सात्त्विक हो जाते हैं तथा उत्कृष्ट गृह, पत्नी, धन, सन्तान आदि शीघ्र विस्मृत हो जाते हैं ॥ ९४ ॥ जैसे शान्ति, लक्ष्मी, प्रतिष्ठा और प्रजा कभी भी भले राजा का परित्याग नहीं करते उसी प्रकार योगीश्वर, उमा, शिव और देवगण इस नगेश को

प्रियं क्षेत्रवार्तावतां कर्षकाणां सगंगं मुहुर्नौमि केदारनाथम् ।
प्रिया यस्य गंगास्थितास्त्यूर्ध्वदेशे तमीडे हिमाद्रिप्रियं दीननाथम् ॥ ९६ ॥

घुसृणेशः

शिवस्यालये पुष्करेऽवेक्ष्य पुत्रं सपत्न्या हतं खण्डशोंऽगानि कृत्वा ।
विशोका तमापाशिषा यस्य घुष्मा तमीडे महादेव घुष्मेश्वरं त्वा ॥ ९७ ॥
इलायाः पुरें भित्तिषूत्कीर्णवन्तो गिरौ तत्र पद्मासनस्थं मुनीशम् ।
गुहाकारवः कुत्रचिद् बुद्धदेवं क्वचिच्छंकरं ध्यानमग्नं यतीशम् ॥ ९८ ॥
क्वचिद् भिक्षुकं चान्नपूर्णापुरःस्थं क्वचित्तस्य नेत्राग्निना कामदाहम् ।
क्वचित् सुन्दरस्यास्य कल्याणमूर्तेः समाधिं क्वचिद् हैमवत्या विवाहम् ॥ ९९ ॥
समुत्पाटयन्तं च कैलासमूलं क्वचिद्रावणं शंभुदासं विमूढम् ।
गिरेः कम्पमन्वीक्ष्य साश्चर्यमुत्कं क्वचित् शंकरं भीतगौर्योपगूढम् ॥ १०० ॥

कभी नहीं छोड़ते ॥ ९५ ॥ मैं इस पर्वत के निवासी उन दीननाथ प्रभु केदार (कृषियोग्य भूमि) नाथ को बार-बार प्रणाम करता हूं जिन्हें क्षेत्रजीवी कृषक और हिमालय बहुत प्रिय हैं तथा जिनकी प्रिया गंगा यहां उनके ऊर्ध्व (मस्तक) भाग में स्थित हैं ॥ ९६ ॥

शिवभक्त घुष्मा देवी ने देखा कि उसकी सौत ने उसके पुत्र के शरीर को खण्ड-खण्ड करके शिवालय के पास सरोवर में फेंक दिया है किन्तु उसने शोक छोड़ पूजन किया और शिव की कृपा से जीवित पुत्र पाया। उन घुष्मेश्वर महादेव को प्रणाम है ॥ ९७ ॥ उनके इस अवतार स्थान इलापुर में शिल्पियों ने पर्वत की भित्तियों में कहीं ध्यानमग्न साकार यतीश्वर शिव को उत्कीर्ण किया है तो कहीं उनके अवतार, पद्मासन में स्थित मुनीश्वर बुद्धदेव को ॥ ९८ ॥ भगवान् शंकर कहीं भिक्षुक के रूप में माता अन्नपूर्णा के सामने स्थित हैं तो कहीं अपनी नेत्राग्नि से कामदेव को भस्म कर रहे हैं। वे सुन्दर कल्याणमूर्ति कहीं समाधि में स्थित हैं तो कहीं उनका जगदम्बा हैमवती से विवाह हो रहा है ॥ ९९ ॥

कहीं अपने को शिवभक्त कहने वाला मूढ़ रावण उनके निवास स्थान कैलास पर्वत को उखाड़ने का प्रयास कर रहा है और पर्वत का कम्प देख आश्चर्य चकित शिव उत्कण्ठ होकर इधर-उधर देख रहे हैं तथा भयभीत गौरी से आश्लिष्ट हैं ॥ १०० ॥

क्वचिद्रावणेनार्चितं मस्तकैः स्वैः क्वचिद्रामचन्द्रार्चितं तारकारिम् ।
भवान्या क्वचिच्चाक्षखेलानुरक्तं क्वचिद्दारपुत्रप्रसक्तं पुरारिम् ॥ १०१ ॥
युता सप्तभिर्मातृभिः क्वापि दुर्गा गजश्रीः क्वचिन्माधवः शेषशायी ।
धनेशः सखा सेवते क्वापि नन्दी क्वचित् शंभवं वीरभद्रोऽनुयायी ॥ १०२ ॥
क्वचिद् बोधिसत्त्वं मुनिं पार्श्वनाथं महावीरतीर्थंकरं वर्धमानम् ।
क्वचिद् बोधिवृक्षं मयूरीं च तारां क्वचित् शंकरं किन्नरैः सेव्यमानम् ॥ १०३ ॥
क्वचित् सस्वरस्तंभतः स्तम्भयन्तो विचित्रप्रतिध्वानवन्तो विशालाः । सभामण्डपाः
कुड्यचित्रा महेशं जिनं गौतमं सेवितुं योगशालाः ॥ १०४ ॥
तां नौमि घुष्मां सुकृतप्रभावाद् या शंकरस्याप कृपां सुराणाम् ।
तान्नौमि विज्ञांश्च समानभक्त्या येऽर्चन्ति बुद्धं च जिनं शिवादीन् ॥ १०५ ॥

कहीं रावण भगवान् तारकेश्वर का अपने कटे मस्तकों से पूजन कर रहा है तो कहीं श्रीरामचन्द्र पुष्प आदि चढ़ा रहे हैं शिव कहीं भवानी के साथ अक्षक्रीड़ा में अनुरक्त हैं तो कहीं पत्नी पुत्र में आसक्त हैं ॥ १०१ ॥

कहीं सप्त मातृकाओं से युत दुर्गा हैं, कहीं गजलक्ष्मी हैं, कहीं शेषशायी विष्णु भगवान् हैं और कहीं सखा धनेश (कुबेर), सेवक नन्दी और अनुयायी वीरभद्र शिवसेवा में लगे हैं ॥ १०२ ॥

कहीं बोधिसत्त्व मुनि, पार्श्वनाथ, तीर्थंकर महावीर, वर्धमान उत्कीर्ण हैं, कहीं बोधिवृक्ष, मयूरी तारादेवी आदि हैं तो कहीं किन्नरो से सेवित महादेव हैं ॥ १०३॥ कहीं-कहीं ऐसे विशाल सभामण्डप हैं जिनके सस्वर स्तंभ मनुष्यों को चकित कर देते हैं। उनकी ध्वनियों से विचित्र प्रतिध्वनियां उत्पन्न होती हैं। कहीं दीवारों पर अद्भुत चित्र हैं तो कहीं महेश, महावीर और गौतम से सम्बन्धित अद्भुत योगशालायें हैं ॥१०४॥ मेरा उन घुष्मा देवी को प्रणाम है जिन्होंने पुत्र की चिन्ता छोड़ कर अपने सुकृतों के प्रभाव से शिव और देवों की कृपा प्राप्त की तथा उन विज्ञों को नमस्कार है जो समबुद्धि से बुद्ध, जिन, शिव, देवी आदि की पूजा करते हैं ॥ १०५ ॥

तृतीयोध्याय:

(ज्योतिषां अशुभत्व समीक्षा)

विभो दैवविज्ञा: कलिं देहवन्तं युगं मन्वते क्रूरदैत्यं निकृष्टम् ।
खलं शिश्नजिह्वाभुजिष्यं धरायां सदा वर्धयन्तं कुभावाननिष्टम् ॥ १ ॥
पुनः षष्टिसंवत्सराणां समूहे वदन्त्यर्धभागाधिकं ते विनिन्द्यम् ।
क्षयं राक्षसं दुर्मतिं रक्तनेत्रं खरं दुर्मुखं कालमग्निं च निन्द्यम् ॥ २ ॥
शुभस्यापि संवत्सरस्यार्धभागो निषिद्धः शुभेष्वस्ति याम्यायनत्वात् ।
मृतो धर्मशीलो महात्मापि तस्मिन् ध्रुवं रौरवं याति तस्याशुभत्वात् ॥ ३ ॥

हे विभो (सर्वव्यापी ईश्वर) ! हमारे दैवविज्ञ (भाग्यवेत्ता ज्योतिषी) कहते हैं कि अशुभ काल में कोई शुभ कर्म मत करो परन्तु वे ४३२००० वर्षों के कलियुग को सबसे भीषण मानते हैं, तो क्या हम पूरे कलियुग में विवाहादि कोई शुभ कर्म न करें ? हम समझते हैं कि किसी कालमान को शरीर नहीं होता किन्तु ये कलि, संक्रान्ति, भद्रा आदि की भीषण आकृतियों का वर्णन करते हैं। ये कहते हैं कि देहधारी कलियुग एक भीषण दैत्य है, क्रूर है, खल है, निकृष्ट है, लिंग और जीभ का भुजिष्य (दास) है। बायें हाथ से लिंग और दायें से जीभ पकड़कर नाचता है तथा धरती पर कुभावों और संकटों को बढ़ाता है ॥ १ ॥

पिशाचवदनः क्रूरः कलिस्तु कलहप्रियः ।
धृत्वा वामकरे लिंगं दक्षे जिह्वां स नृत्यति ॥

युग से छोटा दूसरा कालमान संवत्सर है। इनके साठ संवत्सरों में आधे से अधिक भीषण हैं। उनके अशुभ नाम हैं क्षय, राक्षस, दुर्मति, रक्तनेत्र, खर, दुर्मुख, काल, अग्नि, विरोधी, विकृति, विकारी, क्रोधी, प्रमादी आदि ॥ २ ॥

शुभ संवत्सर का भी आधा भाग दक्षिणायन के कारण शुभ कर्मों में वर्जित हो जाता है। शुभ कर्म तो वर्जित हैं ही, इसमें मरे धर्मशील महात्मा भी रौरव आदि घोर नरकों में जाते हैं ॥ ३ ॥

विषाक्तेषुपर्यंकसंस्थोऽपि भीष्मस्ततः शुद्धसौम्यायने मृत्युमैच्छत् ।
सहित्वापि भूरिव्यथा नाकमुक्त्योः स्पृहो नैव याम्यायनेऽसूनमुंचत् ॥ ४ ॥
समाने प्रकाशेऽन्धकारे तयोस्ते शुभं सौम्यमन्यं कुपूयं वदन्ति ।
चतुर्ष्वस्य मासेषु शेते मुकुन्दः शरद्वर्षयोर्दुर्वधूत्वं ब्रुवन्ति ॥ ५ ॥
प्रकाशस्य साम्येऽप्यमी चन्द्रभान्वोः सदाशुक्लपक्षं प्रशस्तं विदन्ति ।
तथा तेन दैर्घ्ये च कान्तौ गुणादौ समं कृष्णपक्षं विनिन्द्यं ब्रुवन्ति ॥ ६ ॥
अमीषां मते मासमध्येऽतिभीमा असंख्याः स्थिताः कालजाः सन्ति दोषाः ।
क्वचित् सन्ति कालाः शुभा एषु गुप्ताः परे भीषणाश्चापदां सन्ति कोषाः ॥ ७ ॥
शुभास्तारका व्योम्नि सन्त्यल्पसंख्या अदृश्यास्तथा राशिसंज्ञा विचित्राः ।
रवीन्द्वर्किभौमादयः सन्ति पापा दिनादावमीषां व्यवस्थास्ति चित्रा ॥ ८ ॥

इसी कारण भीष्म पितामह विषाक्त वाणों की शय्या पर कराहते हुये भी शुद्ध उत्तरायण में ही मरना चाहते थे। स्वर्ग और मुक्ति प्राप्ति की अभिलाषा से उन्होंने भीषण व्यथा सही किन्तु दक्षिणायन में प्राण नहीं छोड़ा ॥ ४ ॥ उत्तरायण में सूर्य पूर्वक्षितिज में जिस मार्ग से उतर जाता है, दक्षिणायन में ठीक उसी से दक्षिण आता है। दोनों अयनों में प्रकाश और अन्धकार के क्षण तक समान होते हैं पर ये उत्तरायण को शुभ और दक्षिणायन को अशुभ कहते हैं। दूसरा भीषण दोष यह है कि दक्षिणायन के चार मासों में हरि सोते रहते हैं। तीसरा भयंकर दोष यह है कि वर्षा और शरद् शब्द स्त्री लिंगी हैं। चूंकि स्त्री दुर्गुणों का सागर है इसलिये स्त्रीलिंगी काल (तिथि, घटी, मघा, स्वाती, अनुराधा, रेवती आदि) में विवाह नहीं करना चाहिये ॥ ५ ॥

स्त्रीनामानमृतुं विहाय मुनयो माण्डव्यशिष्या जगुः ॥

शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष में प्रकाश और अन्धकार के पल तक समान होते हैं। दोनों की लम्बाई, शोभा, चन्द्रिका और गुण आदि में भी पूर्ण समानता है पर इनके मत में शुक्लपक्ष शुभ और कृष्ण अशुभ है ॥ ६ ॥ इनके कथनानुसार प्रत्येक मास में अति भीम अगणित कालदोष बैठे हैं। थोड़े से शुभ काल भी हैं पर वे गुप्त हैं। ज्योतिषी उन्हें बड़े परिश्रम से ढूंढ़ता है। शेष विशाल संख्या वाले भीषण हैं और आपत्तियों के कोष हैं ॥ ७ ॥ यद्यपि वैदिक ज्योतिष ने ताराओं को तारक और देवगृह कहा है, नक्षत्र कहा है, हर तारकापुंज का एक देव स्वामी है पर इनका कथन है कि आकाश में शुभ तारे थोड़े से हैं। इन्होंने राशियों के मेष, वृष, मिथुन, केकड़ा, बिच्छू, मछली, मगर आदि विचित्र नाम रखे हैं और इन्हीं के

श्रुतौ विद्यते क्वापि नो वारशब्दस्तथा वासरैर्नास्ति सम्बन्ध एषाम् ।
परं निर्मिता वारजा भूरियोगा नवैर्दैवविज्ञैर्व्यथादाः समेषाम् ॥ ९ ॥
स्थितः सर्वमासेषु भीमोस्ति योगः कृतान्तोग्रदंष्ट्राढ्यघण्टाढ्यगण्डः ।
गदो राक्षसो मृत्युरग्निश्च दग्धो विषोपेतकालः सधूमोऽतिगण्डः ॥ १० ॥
व्यतीपात उत्पात आघातसंज्ञो मतंगश्च काणः क्वचिन् मुद्गराख्यः ।
क्वचित् कण्टको वैधृतिःकालदण्डःसशूलोऽस्ति काकःसवज्रो गराख्यः ॥ ११ ॥
सदाऽऽयाति भद्राष्टदा मासमध्ये त्रिपत्सप्तहस्ता खरास्या कराला ।
क्वचित् सर्पिणी वृश्चिकी चोग्रनासा शवस्थाग्निदेहा कृतघ्नी विशाला ॥ १२ ॥

आधार पर फल लिखे हैं पर आकाश में ये बारह आकृतियां कहीं दिखाई नहीं देतीं। मेष राशि की सीध में चन्द्रमा के आने पर जिसका जन्म होगा उसमें मेष (भेंड़ा) के गुण होंगे, यह कथन भी सत्य नहीं है। ये सूर्य, चन्द्र, मंगल और शनैश्चर ग्रहों को पाप तथा इनके वारों को पापवार कहते हैं। वारों से सम्बन्धित अन्य भी आश्चर्यजनक व्यवस्थायें हैं ॥ ८ ॥ हमारे चारों वेदों में और पूरे वैदिक साहित्य में वासरों के लिये कहीं भी वार शब्द नहीं आया है और रवि, सोम आदि वारों से रवि सोम आदि ग्रहों का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है फिर भी नूतन ज्योतिषियों ने भारत में वारों के आगमन के बाद तिथिवारयोग, नक्षत्रवारयोग आदि से अनेक भीषण योग बनाये हैं। ये प्रायः सबके कष्टदाता कहे जाते हैं ॥ ९ ॥ इन्होंने हमारे हर पवित्र मास में अनेक भीषण योग बैठा दिये हैं। उनमें से अधिकांश वारों से सम्बन्धित हैं। उनके नाम हैं यमदंष्ट्रा, यमघण्ट, गण्ड, रोग, राक्षस, मृत्यु, अग्नि, दग्ध, विष, कालवेला, धूम, अतिगण्ड आदि ॥ १० ॥ कहीं व्यतीपात, उत्पात, आघात, मतंग, काण, मुद्गर आदि हैं तो कहीं कण्टक, वैधृति, कालदण्ड, शूल, काक, वज्र, गरल आदि हैं ॥ ११ ॥

दिखाई तो नहीं देती पर हर मास में भीषणा भद्रा आकाश को आठ बार घेर लेती है। लिखा है कि इसके तीन पैर हैं, सात हाथ हैं, मुख गधी का है, कराल है, नाक उग्र और लम्बी है, यह शव पर बैठकर घूमती है, शरीर से आग की चिनगारियां और लपटें निकालती है, विशाल है, रात में सर्पिणी रहती है तो दिन में बिच्छू हो जाती है और एक पक्ष में साँपिन रहती है तो दूसरे में वृश्चिकी हो जाती है ॥ १२ ॥

दशभ्रातरोऽस्या भ्रमन्त्यन्तरिक्षे शकुन्यादिसंज्ञास्तिथीनां कुभागाः।
गराद्याः समे प्रायशः सन्ति भीमाश्चतुष्पादकिंस्तुघ्नकौलाः सनागाः॥ १३ ॥
अहोरात्रमध्ये स्थिताः सन्ति चान्ये व्रजा रक्षसां दुर्मुहूर्तादिकानाम्।
कुलग्नांशदिग्योगिनीशूलरिक्ताकुपाशेषुदुर्वेधघातादिकानाम्॥ १४ ॥
मुहुश्चागताः कार्यमध्ये कुयोगा इमे मृत्युविघ्नादिदा नो भवन्ति।
क्रियारंभकाले स्थिताः किन्तु मोघां विधायार्हणां मंगलं नाशयन्ति॥ १५ ॥
चतुर्दिग्दिनेष्वत्र मासे कुबाणाः सदायान्ति मृत्यग्निचौराः सरोगाः।
न दृष्टा अमी किन्तु खे नो कदाचित् न वेधा न भद्रा असंख्याः कुयोगाः॥ १६ ॥
लभन्ते न राज्यं नरा राजबाणे गृहाद्या न दग्धा भवन्त्यग्निबाणे।
न रोगे सरोगा न चौरे हृतार्था भवन्ति प्रजा नो मृता मृत्युबाणे॥ १७ ॥

इसके दस भाई आधी-आधी तिथियों में बैठे रहते हैं। जब भद्रा भीषणा हो गई तो वे शुभ कैसे होंगे? उनके नाम हैं शकुनि, चतुष्पाद, नाग, किंस्तुघ्न, गर, बव, कौलव, नाग आदि। ये सब भीम हैं ॥ १३ ॥ इनके अतिरिक्त दिन में, रात में तथा काल के अन्य मानों में राक्षसों के अनेक समूह बैठे हैं। वे हैं अशुभ मुहूर्त, अशुभ लग्न, अशुभ नवमांश, दिक्शूल, योगिनीशूल, रिक्ता तिथियां, दग्ध मृत तिथियां, मन्वादि युगादि तिथियां, माता-पिता आदि की मृत्यु की तिथियां, काल, पाश, रोग मृत्यु चोर और अग्निबाण, ग्रहों के वेध, घात, पृथ्वीशयन, अग्निशयन, शुक्रास्त, बृहस्पति अस्त, विपरीत राहु, सिंहस्थ गुरु, मकरस्थ गुरु, धूमकेतु इन्द्रधनुष आदि का दर्शन, अपशकुन आदि ॥ १४ ॥ हम जिस कार्य का आज आरम्भ करते हैं उसे पूर्ण होने में कई वर्ष लग जाते हैं और उतने समय में ये कुयोग अनेक बार आते हैं। ये कार्य के मध्य में मृत्यु, संकट आदि नहीं देते किन्तु कार्यारंभ में आने पर उस समय की अर्हणा (पूजा हवन) आदि को मोघ (निरर्थक) कर सारे मंगलों को नष्ट कर देते हैं। इसी प्रकार हम जन्मकालीन ग्रहस्थिति के आधार पर मरणकाल तक का सारा भविष्य निश्चित कर देते हैं। पता नहीं, बीच की ग्रहस्थितियां कहाँ चली जाती हैं ॥ १५ ॥ हर मास के १४, १५ दिनों में मृत्यु, अग्नि, चोर और रोग बाण सर्वदा नियमित रूप से आते हैं पर ये आज तक आकाश में कभी दीखे नहीं। वेधों, भद्राओं और अन्य अगणित कुयोगों की भी यही स्थिति है ॥ १६ ॥ हर मास में राजबाणों के कई बार आने पर न तो हम राजा बन जाते हैं, न अग्निबाणों के आने पर सबके गृह, खेत,

विभीतात्मनां कल्पना नाथ तस्मादिमा मन्मते भान्ति मिथ्या अमान्यांः ।
मुहुर्योगिवैज्ञानिकैश्चानुभूताः प्रयोगाप्तयुक्तोक्तयः सन्ति मान्याः ॥ १८ ॥
जगद्वास्यमस्ति त्वयाऽतो न चित्ते ममास्तीश खेटाशुभत्वास्तभीतिः ।
क्रियाः किन्तु नित्योदितान्नाथ खेटांस्तनुस्थान् ममास्त्यत्र शर्मप्रतीतिः ॥ १९ ॥
क्रिया मे मनो वह्निभानुप्रभावत् सितं निर्मलं भर्ग सौम्यायनस्थम् ।
कुभीकामविद्वेषलोभादिहीनं तितिक्षादयासत्त्वशौर्यायनंगम् ॥ २० ॥
शुभाः सन्ति सर्वे ग्रहास्ते सुतत्वान्नमः शुक्रशुक्राय ते मंगलाय ।
स्मरामीश सौम्यं गुरुं त्वां ग्रहेशं मनस्याशु सौम्यायनस्यागमाय ॥ २१ ॥

खलिहान आदि जल जाते हैं, न रोगबाणों के आगमन से सब रोगी हो जाते हैं, न चोरबाणों की वर्षा में लुट जाते हैं, न मृत्युबाणों में मर जाते हैं, पर मृत्युबाण में विवाह नहीं करते, अग्निबाण में घर नहीं बनाते, चोरबाण में यात्रा नहीं करते ॥ १७ ॥ इस कारण हे नाथ ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ये उन लोगों की मिथ्या कल्पनायें हैं जिनके हृदय भयभीत हैं अथवा जो हमारे शत्रुओं से प्रेरित होकर हमारे आत्मबल की हत्या कर रहे हैं। हमें इन्हे नहीं मानना है। हमें योगियों और वैज्ञानिकों की वे उपयुक्त उक्तियां माननी हैं जो बार-बार के प्रयोगों और अनुभवों से उपलब्ध हुई हैं ॥ १८ ॥

हे नाथ ! हमारा वर्तमान ज्योतिष शास्त्र कहता है कि सूर्य, मंगल, शनि पाप ग्रह हैं और इनके वार पापवार हैं। शुक्र चन्द्र स्त्री हैं, बुध शनि नपुंसक हैं अतः ये भी पूर्ण शुभ नहीं हैं। सोमवार को पूर्व, गुरुवार को दक्षिण, शुक्रवार को पश्चिम और बुधवार को उत्तर की यात्रा नहीं करनी चाहिये। तब ये भीषण हो जाते हैं। ये मारकेश आदि भी होते हैं परन्तु वेद कहते हैं कि इनमें आपका वास है। अतः मेरे मन में इनके अशुभत्व की भीति नहीं है। हे नाथ ! आप मेरे शरीर में स्थित ग्रहों को उदित कर दें । मेरी प्रतीति है कि इसमें मेरा शर्म (कल्याण) है। तब ये भय समाप्त हो जायेंगे ॥ १९ ॥ हे भर्गदेव ! मेरे मन को अग्नि और सूर्य की प्रभा के समान श्वेत और निर्मल तथा सर्वदा उत्तरायणस्थ बना दें । यह व्यर्थ की भीतियों से और काम, द्वेष, लोभ आदि से हीन हो जाय और सहनशक्ति, दया, सत्त्व एवं शौर्य के अयन (मार्ग) में चला जाय ॥ २० ॥ सब ग्रह आप से उत्पन्न हैं अतः मेरे लिये वे सदा शुभ हैं। शुक्र आप के शुक्र (तेज या वीर्य) से उत्पन्न है और मंगल तो आप की मूर्ति है। आपका भी नाम सुमंगल है। आप मेरे सौम्य गुरु हैं,

नभो नाभितो मंगलो भालघर्माद् विधुश्चेतसोऽर्को दृशो यस्य जातः।
भजे शंकर तं गुरुर्यस्य पुत्रो शनिज्ञौ सुपौत्रौ च यो विश्वतातः ॥ २२ ॥
नमाम्यभ्रनीलं सितं लोहितांगं शिखिन् धूर्जटे भद्रकेतोऽन्धकेशम् ।
बुधानां गुरुं चन्द्रमौलिं बृहत्याः पतिं भर्गमार्द्रापतिं तारकेशम् ॥ २३ ॥
त्वया वास्यमस्तीह सर्वं ततोऽहं शुभान् वेद्मि सर्वान् क्षणान् वासरादीन् ।
मुहूर्तांश्च पक्षांश्च मासांश्च योगान् विदिग्दिग्ग्रहानृक्षसंवत्सरादीन् ॥ २४ ॥
दशाशागृहं चतुदिहं भजेऽहं प्रभो सर्वकालग्रहर्क्षादितातम् ।
उषामस्तकं त्वामहोरात्रपार्श्वं च ताराकिरीटं प्रकाशावदातम् ॥ २५ ॥

ग्रहराज हैं अतः मन में सौम्यायन के शीघ्र आगमन के लिये मैं आपका स्मरण करता हूँ। मन दक्षिणायन में है तो आकाश के उत्तरायण से कोई लाभ नहीं है ॥ २१ ॥

आकाश आपकी नाभि से उत्पन्न है और मंगल ग्रह भाल के पसीने से। मैं ग्रहों को छोड़ आप शिव के उस रूप का भजन करता हूँ जिसका गुरुग्रह पुत्र है, तथा शनि और बुध पौत्र हैं क्योंकि चन्द्रमा आप के मन से उत्पन्न है और बुध चन्द्रमा का पुत्र है। सूर्य आपके नेत्र से उत्पन्न है और शनि उसका पुत्र है। वस्तुतः आप विश्व की हर वस्तु के पिता हैं ॥ २२ ॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं, चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमंगलः (यजुर्वेद) ॥

हे विश्वनाथ ! आप शिखी हैं, राहु को शिखी कहा जाता है। आप भद्रकेतु (वृषध्वज) हैं। आप के अभ्र (मेघ) की भाँति नील, श्वेत रक्त तीन वर्ण हैं। आप बुधों के गुरु, बृहती (विद्या) के पति बृहस्पति, शिखी, धूर्जटी, वृषभध्वज, भर्ग (तेजस्वी), आर्द्रा के पति, अन्धकेश और तारकेश्वर हैं, आप को प्रणाम है ॥ २३॥

आपका निवास जगत में सर्वत्र है इसलिये मैं प्रत्येक क्षण, वार, मुहूर्त, पक्ष, मास, योग, दिशा, कोण, ग्रह, नक्षत्र और संवत्सर को शुभ मानता हूँ। अशुभत्व तो हमारे पापों से आते हैं ॥ २४ ॥

दस दिशायें आपके और देवों के गृह हैं, छः ऋतुयें आप सुपर्ण के शरीर के अंग हैं। सब काल ग्रह नक्षत्र आदि के आप पिता हैं, उषा आप का मस्तक है, दिन-रात शरीर के दो पार्श्व हैं, तारे मुकुट के रत्न हैं और आप उनके प्रकाश से अवदात (गौर) हैं अतः सब शुभ हैं। आपको प्रणाम है ॥ २५ ॥

भ्रमन्त्यर्ककोटिप्रकाशप्रभावा असंख्येयताराग्रहा व्योम्नि तेषाम् ।
न शक्यं फलं मिश्रितं ज्ञातुमस्मात् विभो त्वां मुहुर्नौमि बीजं समेषाम् ॥ २६ ॥
महादेव मन्ये भवत्संगपूतं पुरीतीर्थनद्यद्रिखेटादिवारम् ।
विलोक्य व्रजं नाथ तेषामपारं शिवं शंकरं त्वैमि सर्वेशितारम् ॥ २७ ॥
स्मृतः श्रद्धया योऽपवित्रं पवित्रं करोत्याशुतोषो दयायाः समुद्रः
भवेद्दुर्भगः कोविहायेदृशं त्वां सुरैरर्चितं त्वत्कृतेष्वर्थिमुद्रः ॥ २८ ॥
विभीता नरा योगिनीनां ग्रहाणां दशाद्यैर्ग्रहान् योगिनीर्ये यजन्ते ।
पतिं योगिनीनां ग्रहाणां सुराणां प्रजानां शिवं त्वां विजानन्ति नो ते ॥ २९ ॥

हे विभो! आकाश में ऐसे अगणित तारे और ग्रह घूम रहे हैं जिनके प्रभाव और प्रकाश करोड़ों सूर्य तुल्य हैं और उनके मिश्रित प्रभाव में किसका कितना है, इसका निर्णय अशक्य है अतः मैं उनके बीज आप की शरण में आया हूँ। अनेक ज्योतियों की प्रार्थना नहीं करना चाहता ॥ २६ ॥ हे महादेव ! मैंने देखा है और सुना है कि आप के भक्त योगियों के सहवास के प्रभाव से पृथ्वी, वायु और आकाश परिवर्तित हो जाते हैं, विशुद्ध हो जाते हैं। आपके संग से तो अनेक पुर, तीर्थ, नदी, पर्वत, ग्रह, वन आदि के वार (समूह) पवित्र हो गये हैं पर उनकी संख्या विशाल है, अपार है, मैं कहां-कहां जाबूं। वे जिस संग से पवित्र हुये हैं, उसी का अभिलाषुक हूँ । उन सबों के स्वामी आप को प्रणाम है ॥ २७ ॥

शास्त्रों का कथन है कि मनुष्य पवित्रता, अपवित्रता, किसी भी स्थिति में हो, श्रद्धापूर्वक स्मरण करने पर आप उसे पवित्र कर देते हैं, तो फिर कौन ऐसा भाग्यहीन मनुष्य होगा जो देवों से अर्चित आप सदृश दया के सागर और आशुतोष को छोड़कर उनके सामने याचक की मुद्रा में खड़ा होगा जो आप के ही बनाये हैं ॥ २८ ॥

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

ग्रहों की परस्पर विरुद्ध अनेक दशायें प्रचलित हैं। उनके अतिरिक्त योगिनी, मुद्दा, गोचर, अष्टकवर्ग आदि की दशायें हैं। इनमें ग्रहों का योगिनियों का जो क्रम है और उनके जो भिन्न भिन्न वर्ष हैं उनकी कोई उपपत्ति नहीं है। शनि के बाद बुध की और बुध के बाद केतु की दशा क्यों आ गई, सूर्य के वर्ष ६ और राहु के १८ क्यों हैं, अष्टोत्तरी में यह क्रम उलट क्यों जाता है, शनि मारकेश के साथ-साथ

यथा धेनुसत्त्वे खरीं दोग्धि कश्चिद् यथा याति काचित् पुरन्ध्री च जारम् ।
बहूनां तथास्त्यर्चको बालिशस्त्वां परित्यज्य भर्ग त्रिलोकावितारम् ॥ ३० ॥
स्थितं सर्वदिक्कालखेटेष्वतोऽहं भजे विष्णुमेकं विधिं त्वां भवेशम् ।
युतं शक्तिभिर्वागुमामाऽऽह्वयाभिर्ग्रहेशं च दिक्कालतारासुरेशम् ॥ ३१ ॥
बुधा नैव ते मन्मते शैलसिन्धून् मुधा ये पराधीनखेटान् भजन्ते ।
घटादौ समाहूय मेघान् समुद्रान् नदीस्तीर्थसंघांश्च शैलान् यजन्ते ॥ ३२ ॥
अहं ज्योतिषां दक्षवामस्थितानां भयं वेद्म्यसारं कुयोगादिकानाम् ।
तवस्नेहयोगं विजाने सुयोगं मतौ जागरां तेऽभिवृष्टिं शिवानाम् ॥ ३३ ॥

मंगला, धान्या या सिद्धा की दशा है तो किसको सत्य माना जाय, ऐसे असंख्य प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है। इनकी अशुभ दशाओं से भयभीत जो मनुष्य ग्रहों और काल्पनिक योगिनियों आदि की पूजा करते हैं वे योगिनियों देवों और ग्रहादिकों के स्वामी आप प्रजापति शिव को भूल गये हैं ॥ २९ ॥

तीनों लोकों के रक्षक आप भर्गदेव को छोड़ बहुतों की पूजा करने वाले वे मतिमन्द वैसे ही हैं जैसा अपने घर की कामधेनु को छोड़ गधी दुहने वाला। जैसी पति को छोड़ जारों के पास दौड़ने वाली नारी ॥ ३० ॥

अतः मैं सब दिशाओं, कालों, ग्रहों, नक्षत्रों और सुरों में स्थित तथा उनके स्वामी उन एक प्रभु को भजता हूँ जो सर्वव्यापी होने से विष्णु हैं, सृष्टि–कर्ता होने से विधि हैं, उसके पालक होने से भवेश हैं, महेश हैं और वाणी मा उमा आदि शक्तियों से युत हैं ॥ ३१ ॥

मेरे मत में वे मनुष्य बुध नहीं हैं जो पराधीन पर्वतों, समुद्रों और ग्रहों की निरर्थक पूजा करते हैं तथा घट आदि में मेघों, समुद्रों, नदियों, नदों, तीर्थसंघों, पर्वतों आदि को बुलाकर उनका यजन करते हैं ॥ ३२ ॥

सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।
कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि कलशस्थानि तानि वै ॥

हमारे यहाँ सूर्य चन्द्र आदि ग्रह चारों दिशाओं में घूमते माने जाते हैं और उनकी तीन-तीन राशियाँ चारों दिशाओं में बाँट दी गई हैं परन्तु पूर्व में उदित और पश्चिम में अस्त होने वाले सूर्य, चन्द्र आदि कभी भी उत्तर दक्षिण दिशाओं के

पुरःपृष्ठगार्केन्दुशुक्रादिचिन्तां विहाय ग्रहास्तादिदुर्भीतिवारम् ।
हृदीच्छामि नित्योदितं बोधदं त्वां निहन्तुं कुभावान् दुरूहान्धकारम् ॥ ३४ ॥

क्षितिजों में नहीं जाते और गृहप्रवेश, यात्रा आदि के समय दायें-बायें नहीं रहते। यात्री सीधी रेखा में नहीं चलता अतः बायें वाला सामने भी आ जाता है। एक राशि का चन्द्रमा एक दिशा में बैठा माना जाता है पर वह चलता है और एक राशि के काल में आकाश की दो तीन प्रदक्षिणा कर लेता है अतः वह मान्यता मिथ्या है। चन्द्रमा दायें और सामने शुभ होता है पर सूर्य का नियम उसके विपरीत है। शुक्र एक दिशा में लगभग दस मास बैठा माना जाता है, सामने तथा दायें रहने पर नारी को विधवा बना देता है और सेना को नष्ट कर देता है। लिखा है कि शुक्र के सामने और दायें रहने पर द्विरागमन होने पर नारी विधवा हो जाती है, बालक मर जाता है और नवविवाहिता वन्ध्या हो जाती है। शुक्र, बुध, भौम की यह स्थिति इन्द्रसेना को भी परास्त कर देती है किन्तु सत्य यह है कि शुक्रादि ग्रह एक अहोरात्र में पूरे आकाश की प्रदक्षिणा कर लेते हैं अतः वे दस मास तक एक दिशा में बैठे नहीं रह सकते। गृह में काम करते समय सामने दायें बैठे ऐसे ग्रह मारक नहीं होते अतः यात्रा में भी नहीं होंगे।

प्रतिशुक्रं प्रतिबुधं प्रति भौमं व्रजंन्नृपः ।
बलेन शक्रतुल्योऽपि हतसैन्यौ निवर्तते ॥

बालश्चेद् व्रजति विपद्यते नवोढ़ाचेद् वन्ध्या भवति गर्भिणी त्वगर्भा (मुहूर्तचिन्तामणि) ।

मैं दायें-बायें स्थित दृश्य ज्योतियों के, अदृश्य योगिनी आदि के तथा अनेक काल्पनिक कुयोगों के भय को सारहीन और अकारण मानता हूँ तथा आपके स्नेहयोग को सुयोग एवं मन में आपके जागरण को सुयोगों की अभिवृष्टि समझता हूँ ॥ ३३ ॥

दायें-बायें की ही भांति मैं इनके आगे पीछे होने के तथा ग्रहों के अस्त वक्री आदि होने के भीषण भयों के वार (समूह) का भी परित्याग कर चुका हूँ। केवल इतना ही चाहता हूँ कि हृदय में बोधदाता आप सदा उदित रहें, ताकि मेरे कुभावों का और दूषित तर्कों का हनन हो जाय ॥ ३४ ॥

श्रुतिः प्राह नः सन्तु भद्रा मनीषाश्च कालाध्वरा अस्तु भद्रः कृशानुः।
प्रपश्यन्तु शृण्वन्तु सर्वेऽपि भद्रं शुभो जीवसंघोऽस्तु भद्रोऽस्तु भानुः ॥ ३५ ॥
अतो विद्यते भद्रदा भद्रकाली भरण्यार्द्रचित्ताम्बिका यत्र माता।
न भीस्तत्र यत्रोदितो जागरूकः स्थितो मानसे वीरभद्रो विधाता ॥ ३६ ॥
श्रुतिः प्राह हे हृत्तथा नो बिभीया यथा नो कदाप्यर्कचन्द्रौ बिभीतः।
बिभीतो यथा ब्राह्मणक्षत्रियौ नो यथाकाशविश्वंभरे नो बिभीतः ॥ ३७ ॥

आज के ज्योतिष में भद्रा एक भीषण कालमान माना जाता है। किन्तु वेद कहते हैं कि हमारी बुद्धियां भद्र रहें, हमारे सब काल और अध्वर (यज्ञ) भद्र हों, हमारा अग्नि सदा भद्र रहे, हम नेत्रों से सदा भद्र देखें, कानों से सदा भद्र सुनें, हमारे लिये पाँचों महाभूत (पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश), सब भूत (प्राणी) और भानु भद्र रहें ॥ ३५ ॥

भद्रा ते सुमतिः १।११४। ९, भद्रा उषासः १।१२३।१२, भद्रं क्रतुम–
स्मासु १।१२३।१३, उषो भद्रेभिरागहि १।४९।१, विश्वानि भद्रा
मरुतो रथेषु १।१६६।९, भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना ३।३९।२, भद्रा
ते हस्ताः ४।२१।९, भद्रा रातिः ६।४५।३२ (ऋग्वेद) ॥
भद्राहं नो मध्यन्दिने भद्राहं सायमस्तु नः ६।१२८।२, यो नो
भद्राहमकरः ६।१२८।४, भद्राहमस्मभ्यं राजन् ६।१२८।३,
भद्राहमस्मै प्रायच्छन् ६।१२८।१ (अथर्ववेद) ॥
आनो भद्राः क्रतवो यन्तु २५।१४, देवानां भद्रा सुमतिः २५।१५,
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः २५।२१,
भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभगा भद्रो अध्वरः। भद्रा
उतप्रशस्तयः १५।३१, भद्रं मनः १५।३९ (यजुर्वेद) ॥

अतः यह निश्चित है कि जहाँ मन में स्थित विधाता वीरभद्र उदित और जागरूक हैं तथा जहाँ उनकी शक्तियां भद्रदा (मंगला) भद्रकाली, भरण करने वाली माता भरणी और दया से आर्द्र चित्त वाली अम्बिका आर्द्रा बैठी हैं वहाँ भयों के लिये अवकाश नहीं है। भय वहाँ हैं जहाँ हृदयों में ईश्वर और उनकी शक्तियाँ सुषुप्त हैं ॥ ३६ ॥

भद्रा के साथ ही आजकल भरणी, आर्द्रा आदि नक्षत्र भी भयंकर माने जाते हैं पर वेदों में वे सब शुभ हैं। संयम, नियम, यम शब्द पवित्र हैं। आर्द्रा में प्रथम

कृतं हे कृतिन् दक्षिणे तेऽस्ति हस्ते जयः सव्यपाणौ बलिन्नाहितस्ते ।
त्यज त्वं निराशां भयं गोऽश्ववित्तैर्भविष्यत्यरं पूर्णमिष्टैर्गृहं ते ॥ ३८ ॥
कदाप्युत्तरान्नाधरादस्तु भीतिः प्रजाभ्यः पशुभ्यो न पश्चात्पुरस्तात् ।
ग्रहाद्यैर्न विज्ञाततो नो परोक्षान्न नक्तं दिवा नैव मित्रादमित्रात् ॥ ३९ ॥

वर्षा होती है, वह धरती को आर्द्र करती है, उसका हृदय आर्द्र है, शिव उसके स्वामी हैं, उसके साथ आते हैं (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१।१)।

लोकस्य राजा महतो महान् (यमो वैवस्वतः) यस्मिन्नक्षत्रे एति ।
यस्मिन्नेनमभ्यषिचन्त देवाः । तदस्य चित्रं हविषा यजेम ॥ सुगं नः पन्थामभयं कृणोतु भरणी ॥

आर्द्रया रुद्रः प्रथमान एति श्रेष्ठो देवानां पतिरघ्नियानाम् ।
नक्षत्रमस्य हविषा विधेम । आर्द्रानक्षत्रं जुषतां हविर्नः ॥

वेद कहते हैं कि हे हृदय ! जैसे तेजस्वी सूर्यचन्द्र सबको नाना प्रकार के प्रभावों का दान करते हुये आकाश में निर्भय विचरण करते हैं, जैसे ब्राह्मण और क्षत्रिय अपने ज्ञान और बल से सबका उपकार और संरक्षण करते हुये पृथ्वी पर निर्भय और मान्य होकर घूमते हैं तथा जैसे आकाश और विश्वंभरा (पृथ्वी) दानी एवं निर्भीक हैं उसी प्रकार तुम भी सदा निर्भय रहो ॥ ३७ ॥ हे मानव हृदय ! तुम स्वभावतः कृती (वैज्ञानिक, कुशल, कर्मठ) हो, अतः कृत (कर्म और सफलता) तुम्हारे दायें हाथ में है और हे बली ! विजय तुम्हारे बायें हाथ में रखा है। अतः निराशा और भयों को छोड़ो। ऐसा करने पर तुम्हारा गृह निश्चित रूप से गायों, अश्वों, धनों और अन्य अभिलषित पदार्थों से अरं (शीघ्र ही) पूर्ण हो जायेगा ॥ ३८ ॥ हे प्रभो! मुझे ऊपर से, नीचे से, प्रजाओं से, पशुओं से, पीछे से, आगे से, ग्रहों से, ज्ञात से, परोक्ष (अज्ञात) से, रात से, दिन से और मित्र से, अमित्र से कभी भी कोई भय न हो ॥ ३९ ॥

यथा द्यौश्च पृथिवी च, यथाहश्च रात्रिश्च, यथा सूर्यश्च
चन्द्रश्च, यथा ब्रह्म च क्षत्रं च, न बिभीतो न रिष्यतः, एवा
मे प्राण मा बिभेः (अथर्ववेद २।१५।४) ॥
कृत मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः । गोजिद्
भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित् (अथर्ववेद ७।५०।८) ॥

महावीर चेतोबलं न त्यज त्वं विपन्निम्नगायास्तदेवास्ति सेतुः ।
भविष्यन्ति देवा वशे हृद्बलात्ते तदेवास्ति ते श्रेयसो मुख्यहेतुः ॥ ४० ॥
नरो बालिशः सोऽस्ति यस्यास्ति चेतो भयैः कल्पितैर्निन्द्यकामैरशान्तम् ।
नरोऽप्यस्ति देवः स यस्यास्ति चित्तं सदा निर्भयं संयतं च प्रशान्तम् ॥ ४१ ॥
न भीतोऽस्म्यतो राहुणा नोल्कया नो विधोः शृंगतो नो च मेघैः कुरूपैः ।
न काकस्वरान् मण्डलादिन्दुभान्वोर्न चेन्द्रायुधाद् धूमकेतुस्वरुपैः ॥ ४२ ॥

अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ।
अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातात्परोक्षादभयं नक्तममयं दिवा नः । सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु । यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु । शं नः कुरु प्रजाभ्यो अभयं नः पशुभ्यः (अथर्ववेद १९।१५।५) ॥

हे मानव! तुम महावीर हो, तुममें ईश्वरप्रदत्त अनेक महाशक्तियां बैठी हैं, उन्हें जगावो और मनोबल का त्याग मत करो क्योंकि तुम्हारी विपत्तिनदी का वही पार करने वाला सेतु है। तुम्हारे कल्याण का वही मुख्य हेतु है। उसके बल से अनेक देव तुम्हारे वशीभूत हो जायंगे ॥ ४० ॥ वह मानव अल्पज्ञ है जिसका मन अनेक काल्पनिक मिथ्या भयों से और दूषित कामनाओं से अशान्त है और वह मानव देव है जिसका मन सर्वदा निर्भय, संयमित और प्रशान्त रहता है ॥ ४१ ॥ इसलिये मैं राहु, उल्का, चन्द्रशृंग, कुरूप मेघ, काकस्वर, चन्द्रसूर्य के मण्डल, इन्द्रधनुष, इन्द्रध्वजस्थिति और धूमकेतु के स्वरूपों से भयभीत नहीं होता ॥ ४२ ॥ हमारे वर्तमान ज्योतिष में सूर्यचन्द्रग्रहण भय का कारण है। पुराणों में राहु एक भीषण दैत्य है। उसे केवल अमावास्या और पूर्णिमा को भूख लगती है और वह सूर्यचन्द्र को निगलने मात्र से शान्त हो जाती है। ज्योतिष में उल्काओं और चन्द्रमा की सींग से संबन्धित अनेक भयों का विशद वर्णन है। मेघ की आकृति यदि काक, सूकर, श्वान, व्याघ्र आदि सदृश हो तो समझ लो कि आपत्तियों की वर्षा होने वाली है। काक के अनेक स्वर भीषण हैं। चन्द्र सूर्य पर कभी-कभी दिखाई देने वाले मण्डल भयंकर हैं और ज्योतिष मैं ऐसे अन्य सहस्रों भयों का वर्णन है पर वस्तुतः ये सब प्राकृतिक दृश्य मात्र हैं। पृथ्वी की छाया ही राहु है, तम है और वही रात्रि भी। वृक्ष की छाया भी राहु है। मैं इनसे नहीं डरता। कितना डरूंगा ॥ ४२ ॥

न गण्डान्तघातव्रजैः कर्तरीभिर्न वेधैर्विषैः संयुताभिर्घटीभिः ।
न पंग्वन्धकाणैडलग्नैर्न कालैर्न पाशैर्न दिक्शूलदुर्योगिनीभिः ॥ ४३ ॥
विभीतः फलादस्मि तासां क्रियाणां कृता मोहतो याः पदार्थात्मजादेः ।
अभुक्तं न हि क्षीयते जन्मभिर्यत् प्रभूतैर्मखैरर्चनैर्देवतादेः ॥ ४४ ॥
असत्सद्युगं नास्ति कालो विशालः श्रुतीनां मते तद्धि वृत्तं नराणाम् ।
शयानः कलिश्चोत्थिता द्वापराद्याः कृतं चास्ति वृत्तिः सतां कर्मठानाम् ॥ ४५ ॥

गण्डान्त कई प्रकार के हैं। उनमें तीन मुख्य हैं। नक्षत्र गण्डान्त, तिथि गण्डान्त, लग्नगण्डान्त। कुछ नक्षत्रों, तिथियों और लग्नों के सन्धिकाल को अति भीषण गण्डान्त कहा गया है। उसमें उत्पन्न बालकों को फेंक देने का अथवा लम्बा शान्तियज्ञ करने का आदेश है। कुछ योगों में, संक्रान्ति में, कुछ तिथियों में, पिता भाई आदि के नक्षत्र में जन्म होना भी उतना ही भीषण है। घात बीस से अधिक है। ये प्राणघात करते हैं। तिथिघात, ग्रहघात, वारघात, घातनक्षत्र, घातयोग, घातलग्न, घातमास, स्त्रीराशिघात आदि इनमें मुख्य हैं। लग्न से या राशि से द्वितीय भाव में स्थित ग्रह वक्री हो तो कर्तरी (कैंची) योग बनता है। वह वर वधू का गला काट देता है। भाई, माता, पिता, पुत्र, मामा, धन, भाग्य आदि भावों में इस योगके रहने पर उन्हें भी नष्ट कर देता है पर इससे रहित काल मिलना कठिन है। ग्रह अपने सामने वाले नक्षत्र को वेध देता है अतः उसमें शुभ कर्म नहीं किये जाते पर हर ग्रह के सामने नक्षत्र रहता है। हर नक्षत्र में कुछ विषघटियां रहती हैं। उनमें विवाह करने पर कन्या शीघ्र ही विधवा हो जाती है। कुछ स्थितियों में लग्न पंगु, अन्धे, काने, बहरे हो जाते हैं। दिक्शूल की ही भांति काल और पाश भी अपने नाम सदृश फल देते है। योगिनियां आठो दिशाओं में घूमा करती हैं और भीषण हैं पर मैं इनमें से किसी को भी भीषण नहीं मानता क्योंकि इनके फल अनुभूत नहीं, काल्पनिक हैं ॥ ४३ ॥ हां, मैं अपने दुष्कर्मों के फल से अवश्य भयभीत हूं, जिन्हें मैंने पदवी, धन, पुत्र, पुत्री आदिके मोह से ग्रस्त होकर किये हैं क्योंकि अनेक जन्मों तक यज्ञ, देवपूजन आदि करने पर भी इनके कुफलों का विनाश नहीं होता, उन्हें भोगना ही पड़ता है ॥ ४४ ॥ नामुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ।

आजकल चार लाख बत्तीस सहस्र वर्षों का कलियुग, उसका दूना द्वापर, तीन गुना त्रेता और चार गुना कृत (सत्) युग माना जाता है। कलि अति पापी है, कृत

शुभो यानपार्श्वोऽस्ति हेमन्तमध्यः सुपर्णश्च विष्णुश्च संवत्सरोयऽम् ।
शरद्ग्रीष्मपक्षश्च वर्षर्तुपुच्छो वसन्ताननः शीतकालोदरोऽयम् ॥ ४६॥

रविर्याति येनायनेनोत्तरस्यां स आयात्यवाच्यांतु तेनैव तस्मात् ।
समानप्रकाशेऽन्धकारे न युक्तो विभेदोऽस्ति पक्षेऽयने चाह्नि तस्मात् ॥ ४७ ॥

युग अति सात्त्विक है और शेष दो मिश्रित हैं किन्तु वेदों के मत में चार युग लम्बे-लम्बे काल नहीं बल्कि मानवों की चार प्रकार की मनोवृत्तियां हैं और स्थितियां हैं। सोया हुआ अकर्मण्य मनुष्य कलि है, उठनें का प्रयास करने वाला द्वापर है, उठा हुआ त्रेता है और सज्जनों एवं कर्मठों की वृत्ति कृतयुग है। महाभारत और मनुस्मृति में ये राजा की चार व्यवस्थायें हैं तथा भागवत और रामचरितमानस में मनुष्य की चार वृत्तियां हैं ॥ ४५ ॥

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः । उत्तिष्ठन्
त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन् (तैत्ति-ब्रा-३३।३) ॥
राजा कृतयुगस्रष्टा त्रेताया द्वापरस्य च (शान्तिपर्व ६९) ॥
राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते (मनु ९।३०१) ॥
प्रभवन्ति यदा सत्त्वे मनोबुद्धीन्द्रियाणि च । तदा कृतयुगं
विद्याद् ज्ञाने तपसि यद् रुचिः (भागवत १२।३) ॥
नित युगधर्म होहिं सब केरे हृदय राममाया के प्रेरे ॥

अतः कोई युग या काल अशुभ नहीं होता, मानव कर्म अशुभ होते हैं। हमारे वर्तमान ज्योतिष में अनेक संवत्सर स्वभावतः अशुभ माने गये हैं और कुछ कई अन्य कारणों से अशुभ माने जाते हैं किन्तु वेदों में संवत्सर प्रजापति है, विष्णु भगवान है, सुपर्ण (गरुड) पक्षी है, देवयान और पितृयान अथवा उत्तरायण दक्षिणायन उसके दो पार्श्व हैं, हेमन्त ऋतु मध्यभाग है, शरद् और ग्रीष्म दो पांखें हैं, वर्षा ऋतु पुच्छ है, वसन्त शिर और मुख है तथा शीतकाल उदर है ॥ ४६ ॥

सूर्यदेव अपने उदय के समय उत्तरायण के आरंभ से क्षितिज में जिस मार्ग से उत्तर जाते दिखाई देते हैं, दक्षिणायन में उसी से लौटते हैं। उत्तरायण में प्रकाश और अन्धकार का जितना-जितना समय रहता है, दक्षिणायन में भी उतना ही होता है। दोनों के विपल तक समान होते हैं अतः उत्तरायण को शुभ और दक्षिणायन को अशुभ कहना उचित नहीं है। शुक्ल और कृष्णपक्षों की भी यही स्थिति है। दोनों में प्रकाश और अन्धकार के क्षण तक समान होते हैं। अमावास्या

विवृद्धिर्यदा जायते सौम्यताया नृणां मानसेष्वस्ति सौम्यायनं तत् ।
यदा वृद्धिरीर्ष्याघहिंसास्मरादेरसत्सम्पदामस्ति याम्यायनं तत् ॥ ४८ ॥
वसन्ताननं नौमि दिव्यं सुपर्णं गरुत्मन्नहं शीतकालोदरं त्वा ।
शरद्ग्रीष्मपक्षं च हेमन्तमध्यं च वर्षर्तुपुच्छं भजे वत्सरं त्वा ॥ ४९ ॥

और पूर्णिमा में अन्तर है तो प्रारंभ की तिथियों में भी अन्तर है। वहां कृष्णपक्ष अधिक प्रकाशयुत रहता है। वारों की भी यही स्थिति है। आज का शुक्रवार शुभ है और कल आने वाला शनि अशुभ है पर दोनों के प्रकाश अन्धकार समान हैं। यही स्थिति सोम मंगल वारों की भी है, मंगल बुध की भी है ॥ ४७ ॥

जिस काल में मनुष्य के मन में सौम्यता (दया, क्षमा, सन्तोष, सत्य, शौच आदि) की वृद्धि होती है उसे सौम्यायन और जिसमें ईर्ष्या, पाप, हिंसा, काम, लोभ आदि की वृद्धि होती है उसे दक्षिणायन कहते हैं। गीता में अग्नि, ज्योति आदि को उत्तरायण और धूम, कृष्ण आदि को दक्षिणायन कहा गया है। ये शब्द कालवाचक नहीं अपितु स्थिति वाचक हैं। अतः ज्ञानप्रकाश से युत स्थिति उत्तरायण और अज्ञानान्धकार से युत पापकारिणी स्थिति दक्षिणायन है ॥ ४८ ॥

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ॥ ८।२४
शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ।८।२६।
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था अधो गच्छन्ति तामसाः १४।१८

जिस वसन्त ऋतु में दुर्गा और राम का अवतार होता है, जिसमें सूर्य भगवान् अपने मित्र बृहस्पति और मंगल की मीन मेष राशियों में रहते हैं, जिसमें वर्ष का आरंभ होता है, समशीतोष्ण सुगन्ध मन्द पवन बहता है, हर वृक्ष पुष्प फल पत्र से सुशोभित हो जाता है और जो परमेश्वर का आनन कहा गया है उसका एक महत्त्वपूर्ण विशिष्ट भाग कुछ दिनों से खलमास कहा जा रहा है। हमें उसमें विवाह, गृहप्रवेश आदि कोई मांगलिक कर्म करने का साहस नहीं है। इसका कुछ भाग उस शीत ऋतु में पड़ता है जो विष्णु का उदर है। वर्षा और शरद् ऋतुयें भगवान् गरुड़ के पुच्छ और पक्ष हैं। इन दोनों के गुणों और सौन्दर्य के वर्णन से हमारे वेद, पुराण, काव्य भरे हैं पर इस समय इनके चार मास सब शुभ कर्मों में इसलिये वर्जित हैं कि हरि इनमें सोते हैं। हेमन्त साकार विष्णु के शरीर का मध्य

सदाचारिणामुत्तमोऽस्त्यात्मयागः प्रभूतार्थसाध्याध्वरेभ्यः सुराणाम् ।
विनाप्यश्वमेधं सदाचारवन्तो लभन्तेऽनुकम्पां शिवस्यामराणाम् ॥ ५० ॥

भाग है किन्तु आज उसका विशिष्ट भाग (पोषक पौषमास) खल मास हो गया है। उसमें अन्न की हरियाली और सरसों के पीले पुष्पों से धरती सुशोभित हो जाती है पर आज उसमें हर शुभ कर्म वर्जित है पर मेरा संवत्सररूपी उन प्रजापति विष्णु को प्रणाम है जिन्हें वेदों ने सुपर्ण (गरुड) पक्षी की उपमा दी है। वसन्त जिनका आनन है, शिशिर ऋतु उदर है, शरद् ग्रीष्म दो पंख हैं, हेमन्त मध्य है और वर्षा पुच्छ है ॥ ४९ ॥

संवत्सरः प्रजापतिः, तस्य वसन्तः शिरः, ग्रीष्मो दक्षिणपक्षः शरदुत्तरः ।
वर्षाः पुच्छं हेमन्तो मध्यं (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१०।४) ।
संवत्सरोधिदैवमाध्यात्मं च प्रतिष्ठितः । य एवं वेद प्रजया पशुभिः
प्रतिष्ठिति, एष महासुपर्णः (गोपथ ब्राह्मण २।५।५) ॥
संवत्सरः प्रजापतिः महान् कः (तै. ब्रा. ३।१०।१) ॥

हम रामायण में गरुड, भुशुण्डी, जटायु, सम्पाती आदि के द्वारा रामचरित के कथन श्रवण का वर्णन पढ़ते हैं और कभी-कभी शंका करते हैं कि ये गीध और काक मानव भाषा कैसे बोलेंगे। ऋग्वेद आदि में इस विषय का आलंकारिक वर्णन है। यहां ईश्वर को काव्य की भाषा में सुन्दर पंखों वाला गरुड पक्षी तथा पूरे संवत्सर को ईश्वररूपी गरुड़ पक्षी कहा गया है। इससे यह सिद्ध हो जता है कि पूरा संवत्सर शुभ है और उसके सब अंग शुभ हैं तथा गरुड़ कोई पक्षी नहीं है। इसका भाव दूसरा है। श्वेताश्वतर आदि उपनिषदों के अनुसार आत्मा और परमात्मा एक वृक्ष पर रहने वाले दो पक्षी हैं, सुपर्ण (गरुड़) हैं। उनमें से एक खाता है और दूसरा केवल देखता है। भागवत के अनुसार संकट में फंसे गजराज की विष्णु भगवान् ने रक्षा की। उस समय वे जिस गरुड़ पर बैठे थे वह वेदमय था, वेद था, ज्ञान था। वहां मन को ही गरुड़ कहा है। यजुर्वेद के मत में ईश्वर गरुड़ हैं, तीन वेद उनके सिर हैं, साम शरीर है, छन्द अंग हैं और नक्षत्र खुर हैं। यजुर्वेद (२७।४५) के अनुसार पांच संवत्सरों वाला युग ईश्वर का गरुड़रूपी शरीर है और ऋतु, मास, पक्ष आदि उसके अंग हैं। ऋग्वेद में कई स्थानों में यह वर्णन है कि सूर्य की किरणें गरुड़ हैं, मेघ रुपी सर्पों को पैदा करती हैं और खाती

ब्रवीति श्रुतिर्माऽत्र हन्या द्विपादं पशुं वा मखे ते पशुस्त्वस्ति भानुः ।

श्रुतौ विष्णुरेवास्ति यागश्च तस्मिन् पशुर्वायुरेवास्ति होता कृशानुः ॥ ५१ ॥

हैं। यह बात निघण्टु से भी सिद्ध होती है। सारांश यह कि ये सारे वर्णन आलंकारिक हैं और कोई कालमान अशुभ नहीं है।

अथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् (ऋक् १।१६४।१६)। सुपर्णोसि गरुत्मान् त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुः छन्दास्यंगानि साम तनूः धिष्ण्याः शफाः (यजु ११।४)। संवत्सरोसि सुपर्णचिदसि (यजु २७।४५)। द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया (श्वेत उप)। छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमानः ८।३।३१, इन्द्रियाणि शरानाहुराकूतीः स्यन्दनं तथा १२।११।६, त्रिवृद्वेदः सुपर्णाख्यो यज्ञं वहति पूरुषम् १२।११।१९ भागवत। कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णाः (ऋग्वेद १।१६४।४७)।

गीता में आत्मज्ञान की सदाचार की और ज्ञानयज्ञ की तथा वेद में आत्मयज्ञ की बड़ी प्रशंसा है। गीता कहती है कि ईश्वर की पूजा अपने सत्कर्मों से करो और जान लो कि ईश्वर को ज्ञानयज्ञ सबसे प्रिय है। वेदों का कथन है कि अश्वमेध अवश्य करो पर उसका अर्थ जान कर करो। अश्वमेध में द्विपदों (मानवों) और एक खुर वाले अश्व, गाय, भेंड़, बकरा आदि चतुष्पदों की हिंसा मत करो। सदाचारियों के लिये देवों सम्बन्धी बहुधनसाध्य यज्ञों की अपेक्षा आत्मयाग अधिक श्रेयस्कर है। सदाचारी मनुष्य अश्वमेध आदि यज्ञों को किये विना ईश्वर और देवों की कृपा पा जाते हैं ॥ ५० ॥

आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च योगयज्ञास्तथा परे
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः
श्रेयान् द्रव्यमयद् यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप
तद् विद्धि प्रणिपातेन परिपश्नेन सेवया
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्त्यात्मन्यथो मयि ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा
न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति
श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः (अध्याय ४) ॥

वसन्तो घृतं ग्रीष्म इध्मो हविष्यं शरद्यस्य वन्दे तमाद्याध्वरं त्वाम् ।
बुधायं विदित्वा लभन्तेऽतिमृत्युं भजेऽहं समेषां तमन्तश्चरं त्वाम् ॥ ५२ ॥
सहस्राक्षमृत्वंगमीडेऽभ्रनीलं घनैर्नीलकण्ठं खगंगाधरं त्वा ।
घनागोत्थशम्पांगनाशोभितांकं भजे धूर्जटे चन्द्रमःशेखरं त्वा ॥ ५३ ॥

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ७।१५
यजन्ते नाम यज्ञैस्ते दंभेनाविधिपूर्वकम् १६।१७
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः १८।४६
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः १८।७०

वेद में विष्णु ही यज्ञ हैं और सूर्य, वायु, अग्नि उस यज्ञ के पशु हैं। अग्नि होता भी हैं। देवगण यज्ञ से यज्ञ करते हैं अर्थात् यहां विष्णुस्तवन ही यज्ञ है। वेद में विष्णु पुरुष हैं। उन्हें यज्ञयूप (हृदय) में बांधा जाता है, द्विपद चतुष्पद मारे नहीं जाते ॥ ५१ ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः । देवा यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् । सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् (यजु ३१) ॥ अग्निर्वायुः सूर्यः पशुरासीत् तेनायजन्त (२३।१७) ॥ अश्वं गां अविमेकशफं ऊर्णायुं द्विपादं मा हिंसीः (यजु १३) । वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय । प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते । तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः । तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा (यजु ३१) ॥

इस यज्ञ में वसन्त ही घृत है, ग्रीष्म ईंधन है और शरद् ऋतु हविष्य है। बुध इसका भाव जान लेने पर मुक्त हो जाते हैं। सबके हृदय में स्थित आप आदियज्ञ को प्रणाम है (यहां उत्तरायण दक्षिणायन, दोनों आ गये हैं। ये ज्ञानयज्ञ और शुभकर्मों के साधन हैं, अशुभ नहीं) ॥ ५२ ॥

संवत्सरः प्रजापतिः। तस्य वसन्तः शिरो। ग्रीष्मो दक्षिणपक्षः शरदुत्तरः। वर्षाः पुच्छं हेमन्तो मध्यम् (तै. ब्रा. ३।१०।४)। वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्म- शरद्धविः (यजु ३१)।

हे धूर्जटे! आप को सहस्र (अगणित) नेत्र हैं, छ ऋतु आप के अंग हैं, नीला अभ्र (आकाश) आप का शरीर है, उसीसे आप नीलकण्ठ हैं, आकाशगंगा आप के सिर पर है, घन रूपी अग (पर्वत) से उत्पन्न शम्पा (बिजली) रूपी अंगना से

किरीटस्थनक्षत्ररत्नैर्मनोज्ञं भभागौरकायं खकेशं हरंत्वा ।
अहोरात्रपार्श्वं भमासादितातं प्रभो सन्ध्ययो रक्तमाशाम्बरं त्वा ॥ ५४ ॥
शरद्वर्षयोरस्ति नो स्त्रीत्वभावस्तयोश्चास्ति नो सूर्यविष्णुः सुषुप्तः ।
अतस्ते वधूत्वाच्च याम्यायनत्वात् सुषुप्तेश्च विष्णोर्न निन्द्ये शुभे स्तः ॥ ५५ ॥
श्रियं शान्तिमाप्नोति वर्षासु भूमिः सवाता भृशं तप्तदेहा निदाघात् ।
सुरक्षां च वर्षैव नृणां पशूनां वनान्नौषधीनां करोत्यर्कतापात् ॥ ५६ ॥

आप का अंक (गोद) शोभित है और चन्द्रमा से शिर अलंकृत है ॥ ५३ ॥ आपके नील के अतिरिक्त गौर और रक्त वर्ण भी हैं। आप मुकुट में स्थित नक्षत्र रूपी रत्नों से सुन्दर हैं, नक्षत्रों की प्रभा से आप का शरीर और भी गौर हो गया है, आकाश का ऊपरी भाग आप का केश है, दिन रात शरीर के दो पार्श्व हैं, आप नक्षत्र, मास, ऋ:तु आदि के पिता हैं और संध्याकालीन रक्त दिशायें ही आप के वस्त्र हैं ॥ ५४ ॥ (संवत्सर, ऋतु, अयन, मास, पक्ष, तिथि आदि कालमान सूर्य चन्द्र से उत्पन्न होते हैं और ये दोनों ईश्वर से उत्पन्न हैं अतः सब शुभ हैं। चारों वेद इस सिद्धान्त के समर्थक हैं) ॥ ५४ ॥

वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यो वर्षाण्यनु
शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः (सामवेद ६।४।२ पूर्व)॥

माण्डव्य ऋषि के शिष्यों और अन्य अनेक पण्डितों ने निर्णय कर दिया है कि स्त्री दोषों की खान है अतः स्त्रीलिंगी वर्षा शरद् ऋतुओं में कोई शुभकर्म नहीं करना चाहिये। आज यह कथन सर्वमान्य हो गया है। इन दोनों में तीन भीषण दोष हैं. हरिशयन, दक्षिणायन और नारीत्व किन्तु शरद् और वर्षा ऋतुओं में स्त्री का कोई लक्षण नहीं है। संस्कृत में ऋतु शब्द पुल्लिंगी है। वेद में सूर्य को अनेक बार विष्णु कहा गया है किन्तु सूर्य कभी सोते नहीं (मनुस्मृति के प्रथम अध्याय में ही लिखा है कि हरि कभी नहीं सोते। संसार का क्रिया कलाप इसलिये चल रहा है कि वे जाग रहे हैं)। याम्यायन भी अशुभ नहीं है अतः ये दोनों ऋतुयें अशुभ नहीं है ॥ ५५ ॥

निदाघ (ग्रीष्म) से वातसहित सन्तप्त शरीर वाली धरती वर्षा ऋतु में श्री (शोभा, सम्पत्ति) पाती है। वर्षा ही सूर्य के ताप से मनुष्यों, पशुओं, वनों और औषधियों की रक्षा करती है ॥ ५६ ॥

जलं जीवनं चामृतं क्षीरमुक्तं धरा निर्जला जायते प्राणिहीना ।
पयोदा ततो नास्ति वर्षा कुनारी न वर्ज्या शुभे सद्गुणैर्नो विहीना ॥ ५७ ॥
निदाघोत्थतापं हरन्ती क्षमाया नभोवातयोरस्ति शान्तिप्रदेयम् ।
प्रियं भोजनं मानवेभ्यः पशुभ्यः प्रदत्ते हरिद्वृक्षतृण्याम्बिकेयम् ॥ ५८ ॥
प्रभूतान्नशाकादि धेन्वादिकानां पयो वर्धयन्ती ददात्यंगपुष्टिम् ।
तथा कज्जलीकृष्णजन्मादिर्गीतैश्च धान्यस्य रोपोत्थगानैः सुतुष्टिम् ॥ ५९ ॥
उदारा बुधा दुर्गताज्ञप्रजाभ्यो धनं च प्रबोधं प्रयच्छन्ति यद्वत् ।
समागत्य भूभेः समीपं पयोदाः प्रभूतं ददत्यम्बु वर्षासु तद्वत् ॥ ६० ॥
स्थितं व्योम्नि नीराशयादौ च भूमौ निदाघे हरत्यम्बु यावद्विवस्वान् ।
पुनस्तत् समस्तं च वर्षासु भूम्यै समीराम्बराभ्यां प्रदत्ते दयावान् ॥ ६१ ॥
गभीराश्च नीराशया एव तेषां प्रगृह्णन्ति भागाधिकं जीवनानाम् ।
यथा सज्जना एव विद्याः शुभाशीर्लभन्ते नितान्तोत्सुकाः पण्डितानाम् ॥ ६२ ॥

वेद शास्त्र जल को जीवन, अमृत, दूध आदि कहते हैं और जल से विहीन धरा प्राणियों से विहीन हो जाती है। इसीलिये वे भाग मरुस्थल हो जाते हैं। अतः जल देने वाली वर्षा नारी, गुंणों से हीन, दूषित और त्यांज्य नहीं है ॥ ५७ निदाघ से उत्पन्न धरती के ताप का हरण करने के बाद वर्षा माता धरा, नभ और वात को शान्ति देती है, मानवों और पशुओं को उनका रुचिकर भोजन देती है तथा वृक्षों और तृण्या (तृणसमूह) को हरा भरा कर देती है ॥ ५८ ॥

अनेक अन्नों, शाकों और दुधारू पशुओं के दूध को बढ़ाकर सबके अंगों को पुष्ट करती है तथा कजरी से, कृष्ण भगवान् के जन्म के गीतों से और धान की रोपाई के गीतों से एक अद्भुत तुष्टि और आनन्द देती है ॥ ५९ ॥ जैसे उदार सज्जन और विद्वान् नर निर्धन और विद्याविहीन प्रजा को प्रबोध और धन का प्रदान करते हैं वैसे ही वर्षा ऋतु में मेघ धरती के समीप आ कर प्रभूत जल देते हैं, शान्ति देते हैं ॥ ६० ॥ दयालु 'विवस्वान्' (सूर्य) देव ग्रीष्म ऋतु में आकाश में, जलाशयों में और धरती में स्थित जितने जल का अपहरण करते हैं, वर्षा में वह सब धरती को वायु को और अम्बर (आकाश) को दे देते हैं ॥ ६१ ॥ जिनमें गंभीरता नहीं है वे स्थल दयालु सूर्य के दिये उस अमृत का तुरंत व्यय कर देते हैं पर जो जलाशय गंभीर हैं वे उसका अधिकाधिक भाग लेते हैं और उसे संजो कर बहुत दिनों के लिये रखते हैं। जैसे अति उत्सुक गंभीर स्वभाव के धीर मनुष्य

निरुद्धाः सरःस्वाप एताः प्रणालीपथैर्निगता भूरि यच्छन्तिं धान्यम् ।
तथा विद्युतं ताः समुत्पाद्य यन्त्रैः प्रकुर्वन्ति देशं समृद्धं च मान्यम् ॥ ६३ ॥
यथेशानुकम्पाप्रबोधोपलब्ध्या लभन्ते मुदं श्रेयसं चाभिजाताः ।
तथा स्वैर्नवैः पल्लवैः कान्तहृष्टाः सुवर्षर्तुतः पादपाः सन्ति जाताः ॥ ६४ ॥
यथा मौनिनः साधकाः संयमान्ते सुरागैः स्तुवन्ति स्वदेवं प्रहृष्टाः ।
निशम्याभ्रनादं तथा दर्दुराणां समूहाः प्रगायन्ति वर्षासु हृष्टाः ॥ ६५ ॥
मयूरैः खगैर्नृत्यगीतप्रसक्तैश्च दुग्धान्नवृद्ध्या नृणां सर्वदुःखम् ।
समाप्तं भवत्यत्र वृष्ट्या च भानोर्विधोर्मण्डलैर्वारिदैः शोभते खम् ॥ ६६ ॥
जलग्राहका आपगानां घनानां उदारार्णवा नो भवन्त्यम्बुहीनाः ।
गुणग्राहकोदारजिज्ञासुमर्त्या यथा नो भवन्त्युद्धता नो च दीनाः ॥ ६७ ॥

पण्डितों से विद्या और शुभाशीर्वाद ले कर उससे बहुत दिनों तक लाभ उठाते हैं ॥ ६२ ॥ सरोवरों आदि में रुके हुये ये जल नालियों के मार्ग से बाहर निकल कर प्रभूत अन्न देते हैं और बिजली उत्पन्न कर देश को समृद्ध एवं मान्य बना देते हैं ॥ ६३ ॥

जैसे अभिजात (कुलीन) मनुष्य ईश्वर की कृपा और ज्ञान के लोभ से प्रमोद और कल्याण पाते हैं उसी प्रकार वृक्ष समूह सुन्दर वर्षा ऋतु को पाकर अपने नूतन पल्लवों से सुन्दर और हर्षित हो गये हैं ॥ ६४ ॥

जैसे मौनी साधक अपनी धारणा, समाधि और ध्यान की समाप्ति के बाद प्रसन्न हो कर सुन्दर स्वरों और रागों में अपने इष्ट देव की स्तुति करते हैं वैसे ही वर्षा में मेघों के नाद को सुन कर दादुरों के समूह प्रहृष्ट होकर गाते हैं ॥ ६५ ॥

इस वर्षा ऋतु में सूर्य और चन्द्रमा के मण्डलों से और मेघों से आकाश सुशोभित हो जाता है। नृत्य और गीत में आसक्त मयूरों एवं अन्य पक्षियों के दर्शन से तथा दूध, अन्न, शाक आदि की वृद्धि से मनुष्यों के सारे सन्ताप समाप्त हो जाते हैं ॥ ६६ ॥

समुद्रों के सूक्ष्म जलकणों से ही मेघ बनते हैं। समुद्र वस्तुतः जल के दाता हैं। आपगाओं (नदियों) और मेघों का जल लेने वाले उदार अर्णव (सागर) जल से विहीन कभी भी नहीं होते। जैसे गुणग्राहक, जिज्ञासु और उदार (दाता) मनुष्य कभी भी उद्धत और दीन नहीं होते ॥ ६७ ॥

शरद्यागतायां भवन्त्यत्र सर्वे जलस्याशया निर्मलाः पंकहीनाः ।
यथा योगिसंगेन चित्तानि नॄणां भवन्ति स्मयेर्ष्यादिदोषैर्विहीनाः ॥ ६८ ॥
अगस्त्योदयाद् भूरभूदन्नपूर्णा च शीतोष्णताधूलिपंकैर्वियुक्ता ।
सुरूपा सुगन्धा सुशब्दा सरोजैः सुमैः पद्मिनीखंजनाद्यैश्च युक्ता ॥ ६९ ॥
शरद्योषितः पुष्पपुंजोऽस्ति कांची सुहारोंगदं नैकवर्णं च वासः ।
हरिद्वर्णवन्यास्ति शाटी दुकूलं नलिन्यः प्रफुल्लारविन्दानि हासः ॥ ७० ॥
तथा शोभतेऽस्यां वृतस्तारकाभिः स्थितो निर्मले खे सुधांशुर्द्विजेशः ।
यथा तापसानां सुराणां गणानां समाजे स्थितो देवदेवो महेशः ॥ ७१ ॥
जहुः प्राणिनस्तापमासेव्य वातं सुगन्धिं समं चोष्णताशीतहीनम् ।
विमुंचन्ति यद्वद् बुधाश्चित्तदोषान् गुरुं प्राप्य योगीशमीशांघ्रिलीनम् ॥ ७२ ॥

वर्षा के बाद शरद् ऋतु के आ जाने पर सारे जलाशय उसी प्रकार कीचड़ से विहीन और निर्मल हो जाते हैं जैसे योगियों की संगति से सब मनुष्यों के चित्त स्मय (अहंकार) और ईर्ष्या आदिं दोषों से विहीन हो जाते हैं ॥ ६८ ॥ शरद् के आने पर अगस्त्य का उदय हो जाने से पृथ्वी अन्न से परिपूर्ण और अतिशीत, अतिउष्णता, धूल एवं पंक से विहीन हो जाती है। कमलों से, पुष्पों से, कुमुदिनियों से, खंजन आदि पक्षियों से, सुरूप से, सुगन्धों से, सुशब्दों से सुशोभित हो जाती है। ॥ ६९ ॥

शरद् ऋतु यदि नारी है तों अनेक प्रकार के पुष्पों का समूह उसकी कांची (करधनी) है, सुन्दर हार है, अंगद (बाजूबन्द) है और अनेक प्रकार का वस्त्र है। हरे भरे वन उसकी साड़ियां है, चादर हैं और प्रफुल्ल कमल एवं कुमुदिनियां उसके हास हैं ॥ ७० ॥

शरद् ऋतु में आकाश निर्मल हो जाता है। उस समय सुन्दर तारों से घिरा हुआ आकाशस्थ द्विजराज सुधांशु (चन्द्रमा) ऐसा प्रतीत होता है मानो अनेक तपस्वियों, देवों और अपने योगी गणों के समाज में देवदेव महादेव बैठे हैं ॥ ७१ ॥

सुगन्धिंत, सम (तीव्र मन्द नहीं), अति उष्णता और अतिशीतलता से विहीन शारद वायु के सेवन से प्राणियों का ताप उसी प्रकार समाप्त हो गया है जैसे किसी योगीश और ईश्वर के चरणों में आसक्त गुरु को पाकर बुधों के चित्तदोष समाप्त हो जाते हैं ॥ ७२ ॥

भवन्त्यन्नतः कर्षका अत्र हृष्टा गृहाः सर्पदंशादिदुर्जन्तुहीनाः ।
यथा सद्गुरोः संगतो भाग्यवन्तो भवन्ति प्रहृष्टाश्च दोषैर्विहीनाः ॥ ७३ ॥
सदाऽऽयान्ति वृष्टौ शरद्यत्र तिथ्यो जने रामकृष्णर्षिबुद्धादिकानाम् ।
उमामातृदीपावलीवामनादेः कुशागस्त्यवाल्मीकिदत्तादिकानाम् ॥ ७४ ॥
गुरोर्नव्यरात्रस्यपुत्रार्थदात्र्यो हनूमद्हलादित्यनागादिकानाम् ।
पितृस्कन्दधन्वन्तरिभ्रातृपानां हरानन्तयक्षार्थराड्भैरवाणाम् ॥ ७५ ॥

जैसे भाग्यशाली मनुष्य सद्गुरु की संगति से निर्दोष और प्रमुदित हो जाते हैं वैसे ही शरद् के आने पर कृषक गण नूतन अन्नों को पाकर प्रसन्न हो जाते हैं। वे सर्प, मच्छर आदि दुर्जन्तुओं के भय से रहित हो जाते हैं ॥ ७३ ॥ वर्षा और शरद् ऋतुओं में प्रतिवर्ष अनेक महान् पर्व आते हैं। उनमें से कुछ ये हैं राम की रावण पर विजय, विजयादशमी, भगवान् कृष्ण का अवतार, ऋषिपंचमी, बुद्धावतार, गौरीपूजा, मातृनवमी, दीपावली, वामन जयन्ती, कुशोत्पाटिनी, अगस्त्योदय, वाल्मीकिजयन्ती, दत्तात्रेय जयन्ती ॥ ७४॥ गुरुपूर्णिमा, नवरात्र, जीवत्पुत्रिका, महानवमी, हनुमत्जन्म, लोलार्कषष्ठी, हलषष्ठी, नागपंचमी, पितृपक्ष, धन्वन्तरि जयन्ती, भ्रातृद्वितीया, हरतालिका, अनन्त चतुर्दशी, कुबेरजयन्ती, भैरवाष्टमी, वामनावतार, श्रावणीपर्व, रक्षाबन्धन,कज्जली, दूर्वाष्टमी, कार्तिकेयजन्म, कपिलाषष्ठी, पापांकुशा, राधाजयन्ती, गोपाष्टमी आदि ॥ ७५ ॥

दक्षिणायन में मरे प्राणियों को नरक होता है पर इनमें मरे लाखों महापुरुषों में से कुछ हैं महावीर जैन, गुरु नानक,गुरु तेगबहादुर, गुरुगोविन्द, महर्षि दयानन्द, तैलंगस्वामी, रामकृष्णपरमहंस, श्रीविवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, गोस्वामी तुलसी-दास, स्वामी विशुद्धानन्द, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजाराममोहन राय, श्यामाचरण लाहिड़ी, योगी अरविन्द, श्रीराणाप्रताप, विष्णुदिगम्बर गायनाचार्य, बालगंगाधर तिलक, सुभाष बाबू, साईं बाबा, रवीन्द्र नाथ टैगोर, प्रेमचन्द्र, सन्त नामदेव, अहल्याबाई, खुदीराम बोस, मदन लाल धींगरा; महारानीपद्मिनीजौहर, तुकाराम, सन्त ज्ञानेश्वर, भाई परमानन्द, वल्लभभाई पटेल, स्वामी श्रद्धानन्द, रामप्रसाद विसमिल, यतीन्द्रनाथ दास, लाला लाजपत राय, मदन मोहन मालवीय, दुर्गादास राठौर, रामदास स्वामी, सन्त एकनाथ, सावरकर, चन्द्रशेखर आजाद, शिवाजी, मंगलपाण्डेय, जलियांबागकाण्ड; बांजीरावपेशवा, गुरु अर्जुन देव, वल्लभाचार्य,

पुनर्वच्म्यतो नास्ति वर्षा कुनारी शरन्नास्ति सीमन्तिनी चापकृष्टा ।
यथास्त्यंगनात्वान्न गंगा न कृष्णा नदी गोमती नर्मदा नो निकृष्टा ॥ ७६ ॥
न मैत्री प्रतिष्ठा तितिक्षा न तुष्टिर्न मेधा न विद्या न लक्ष्मीर्न शान्तिः ।
न नासा शिरा नो कटिर्नो च पुष्टिर्न जिह्वांगुली नो तनुर्नैव कान्तिः ॥ ७७ ॥
स्त्रियोश्चैतयोः सन्ति देहस्य भागा नरा वासराः पक्षमासा अनिन्द्याः ।
न चैतेषु शेते कदाप्यर्कविष्णुर्न विश्वेश्वरोऽमी प्रकृत्या न निन्द्याः ॥ ७८ ॥
शरद्वर्षयोर्नास्ति निन्द्यं नृनार्यो रतं पुत्रपुत्र्योश्च नो जन्म यस्मात् ।
विवाहो न निन्द्यस्तयोरस्ति गेहे प्रवेशो वधूनां गमादिश्च तस्मात् ॥ ७९ ॥
अजानामहं नास्ति वर्षा शरद्वा कुनारी खलो वा मलः कोऽपि मासः ।
न शेते हरिर्नास्ति कस्मिंश्चिदृक्षे तिथौ वासरादौ व्यथापापवासः ॥ ८० ॥

श्रीलक्ष्मी बाई, श्री हेडगेवार, श्रीश्यामाप्रसाद मुखर्जी, महाराज रणजीतसिंह, चित्तौड़ का दूसरा जौहर, शंभाजी, नाना फडनवीस, भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव, गणेश शंकर विद्यार्थी, यतीन्द्रनाथ दास इत्यादि ॥ ७५ ॥

इसलिये मैं पुनः कह रहा हूं कि वर्षा कोई कुनारी नहीं है, शरद कोई भ्रष्ट स्त्री नहीं है और दक्षिणायन में, इन दोनों ऋतुओं में मरने वाला नरकगामी नहीं होता। गंगा, कृष्णा, नर्मदा, गोमती आदि नाम स्त्रीलिंगी हैं पर ये नदियां निकृष्टा नहीं है। इनमें नहाने से नरकों में नहीं जाना पड़ता है ॥ ७६ ॥ इसी प्रकार मित्रता, प्रतिष्ठा, तितिक्षा, तुष्टि, मेघा, विद्या, लक्ष्मी, शान्ति आदि स्त्रीलिंगी शब्द भी निकृष्ट नहीं है। नाक, नाड़ी, कटि, पुष्टि, जीभ, अंगुली, तनु और कान्ति भी त्याज्य नहीं है ॥ ७७ ॥ वर्षा और शरद् के अंग दिवस, मास, पक्ष आदि पुरुष निन्दित नहीं है अतः ये दोनों भी निन्दित नहीं है। इनमें न विष्णु कभी सोते हैं न ये स्वभावतः अशुभ हैं (इन दोनों की प्रशंसा से हमारे वेद, पुराण और काव्य भरे पड़े हैं। प्राकृत भाषाओं में भी इनके सौन्दर्य की बड़ी स्तुति है) ॥ ७८ ॥ इन दोनों ऋतुओं में पुरुषस्त्री का रत (मैथुन) और पुत्रीपुत्र का जन्म अशुभ नहीं माना जा रहा है अतः विवाह, गृहारंभ, गृहप्रवेश, वधूप्रवेश आदि भी अशुभ नहीं है ॥ ७९ ॥ मैं ने जान लिया है कि वर्षा शरद् न तो दूषित नारियां है, न कोई मास खल है, न कोई मास मलमास होने से अशुभ होता है (वह पुंरुषोत्तममास है)। न हरि

श्रुतिः प्राह यो वेद नामानि विद्वानहोरात्रभानां मुहूर्तादिकानाम् ।
न तन्मानसेऽस्त्यार्तिरेषां न भीतिः कुयानर्तुदुर्मासपक्षादिकानाम् ॥ ८१ ॥
न मासोऽस्ति निन्द्यो मधुर्माधवो वा न शुक्रः शुचिर्नो नभो नो नभस्यः ।
न चेषो न चोर्जो न भाद्रो न पौषः सहो नो सहस्यस्तपो नो तपस्यः ॥ ८२ ॥
न वाजः सवः संभरो नो क्रतुर्नो वसुः पुण्डरीकोऽरुणो विश्वजिन्नो ।
न सर्वौषधो नो महस्वानिरावान् रसाढ्योऽन्नवानार्द्र ईशोऽभिजिन्नो ॥ ८३ ॥
न निन्द्योऽस्ति मासो हृषीकेशसंज्ञो न नारायणो माधवः श्रीधरो वा ।
न संकर्षणः पद्मनाभोऽच्युतो नो हरिर्नास्त्युपेन्द्रश्च दामोदरो वा ॥ ८४ ॥
न पक्षोऽस्ति निन्द्यो यशः स्वर्ग आर्द्रः पवित्रोऽमृतः पूत आयुर्यशस्वान् ।
न केशो हरेर्नो प्रमोदो न मोदो न मेध्योऽर्थदो नो जयन्नो सहस्वान् ॥ ८५ ॥

कभी सोते हैं, न किसी नक्षत्र तिथि या वासर आदि में कष्ट और पाप का निवास है ॥ ८० ॥

तैत्तिरीय ब्राह्मण (३।१०।१०) ने कहा है कि जो मासों, पक्षों, नक्षत्रों, दिवसों, रात्रियों और मुहूर्तों के इन शुभ नामों को जानेगा उसे किसी भी काल में अशुभत्व और कष्ट की शंका नहीं होगी किन्तु जानेगा तब ॥ ८१ ॥

यो ह वा मासानामर्धमासानां नक्षत्राणां अहोरात्राणां मुहूर्तानां नामधेयानि वेद नैतेष्वार्तिमार्च्छति। य एवं वेद ॥

मासों के नाम हैं मधु माधव शुक्र शुचि नभः नभस्य इष (अन्न), ऊर्ज (शक्ति), सहः (बल), सहस्य, तपः, तपस्य। इनमें एक भी अशुभ नहीं है ॥ ८२ ॥ अन्य नाम हैं—वाज, प्रसव, सव, संभर, क्रतु, वसु, भुवनपति, प्रजापति, अधिपालक आदि। ये सब शुभ हैं। अन्य बारह नाम हैं अरुण, पुण्डरीक, विश्वजित्, अभिजित्, आर्द्र, रसवान्, इरावान्, महस्वान्, सर्वौषध आदि। ये सब शुभ हैं ॥ ८३ ॥ अन्य बारह मासनाम हैं—हृषीकेश नारायण माधव श्रीधर दामोदर आदि। इनमें एक भी अशुभ नहीं है। चैत्रादि बारह नामों की भी यही स्थिति है। भाद्रपद का पद भद्र है। श्री कृष्ण का जन्म इसी में हुआ है। पौष खलमास नहीं बल्कि पोषक है। मलमास पुरुषोत्तम मास है और वेद में इन्द्र का गृह है ॥ ८४ ॥ तैत्तिरीय ब्राह्मण में वर्ष के १२ कृष्ण और १२ शुक्ल पक्षों के २४ नाम लिखे हैं और कहा है कि वे सब शुभ हैं। वे नाम है-सहस्वान् ओजस्वान् जयत् अभिजयत् हरिकेश मोद प्रमोद पवित्र, द्रविण पूत मेध्य यशस्वान् आयु जीव, अमृत, स्वर्ग आदि ॥ ८५ ॥

गणेशेशदुर्गातिथिर्नास्ति रिक्ता प्रिया नास्ति निन्द्या च विष्णोरमेयम् ।
विधीशार्कविष्ण्वग्निगौरीमनूनां न तिथ्योऽशुभा नाशिवा पूर्णिमेयम् ॥ ८६ ॥
श्रुतावस्ति देवस्वसा देवपत्नी च पीयूषदाऽमा मुकुन्दस्य जाया ।
सुपुत्रप्रदा शान्तिदेन्द्रप्रियेयं सुबाह्वंगुलीकेशजंघा सुकाया ॥ ८७ ॥
भवन्त्यत्र योगीन्दुताराः प्रसन्ना न दृश्यो विधुर्मित्रपार्श्वे स्थितत्वात् ।
गुरौ ज्ञे च शुक्रे स्थितेऽर्कोपकण्ठे भवत्याविलः कोऽपि कालो न तस्मात् ॥ ८८ ॥
न नन्दास्त्यनन्दा न पूर्णास्त्यपूर्णा जया नास्ति निन्द्या न भद्रास्त्यभद्रा ।
मृता नास्ति काचित्तिथिर्नो सरन्ध्रा करोत्यम्बरं भीषणं नैव भद्रा ॥ ८९ ॥

आज गणेश की तिथि ४, दुर्गा और राम के अवतार की तिथि ९ और शिव की तिथि १४ रिक्ता (रिक्त करने वाली) मानी जाती है किन्तु यह कथन वेदविरुद्ध है। आज अमा और उसके पास की चार तिथियाँ अशुभ मानी जाती हैं पर वेद में अमा विष्णुप्रिया है, शुभ है। वेद में ब्रह्मा, शिव, सूर्य, विष्णु, अग्नि, गौरी की २,१४,७,१३,१,३ तिथियां शुभ हैं, मन्वादि की ३,१०,१२,१५ तिथियां शुभ हैं, पूर्णिमा अति शुभ है पर आज सब अशुभ हैं। स्कन्द, शिव, हरि की ६,८,१२, तिथियां भी अशुभ हैं ॥ ८६ ॥ अमावास्या वेद में देवभगिनी, देवपत्नी, अमृतदात्री, विष्णुपत्नी, सुपुत्रदा, शान्तिदा, इन्द्रप्रिया और सुन्दर बाहु, अंगुली, केश, जंघा वाली सुन्दरी है (यह आलंकारिक वर्णन है) ॥ ८७ ॥ योगी निशाके अन्धकार से प्रसन्न होते हैं क्योंकि उसमें मधु और शान्ति का वास है। अमावास्या में चन्द्रमा और तारे भी प्रसन्न रहते हैं। सूर्य के पास स्थिति होने से चन्द्रमा हमें दिखाई नहीं देता किन्तु वेद ने इस काल (अमावास्या) को अशुभ नहीं कहा है। इसी प्रकार गुरु, बुध और शुक्र की सूर्य के पास स्थिति अर्थात् उनका अस्तकाल भी आविल (अशुभ) नहीं होता ॥ ८८ ॥

सिनीवालि पृथुष्टुके,या देवानामसि स्वसा। प्रजां देहि । विष्णोः पत्नि ।
कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी। रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् ।
अहमेवास्म्यमावास्या । मयि देवाः साध्याश्चेन्द्रज्येष्ठाः
समगच्छन्त सर्वे । ७।७९ ऋग्वेद ॥ मधुनक्तमुतोषसो ॥

ज्योतिष में १५ तिथियां ५ भागों में बांटी गई है और उनके नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता, पूर्णा नाम हैं। इनमें रिक्ता से भिन्न चार शुभ मानी गई हैं पर वे भी कुछ नक्षत्रों से मिलने पर मृत और मृत्युदा हो जाती हैं और कुछ पक्ष का छिद्र हो

श्रुतौ सन्त्यहोरात्रनामानि शुक्रं च तेजस्वि तेजोऽमृतं चाभिजानत् ।
समृद्धं स्तुतं संस्तुतं श्रेय आयत् तपत् ज्ञानकल्याणयुक्तं च जानत् ॥ ९० ॥
सुतायुष्मती तर्पयन्ती च तृप्तिश्च कान्ता च कामप्रदा विश्वरूपा ।
इरा सूनृता पूरयन्ती च पूर्णा प्रपा पूर्णिमा पूर्यमाणा सुरूपा ॥ ९१ ॥
मुहूर्तो न निन्द्योऽस्ति मोदः प्रमोदो न कल्याणदः शोभनः शोभमानः ।
न दाता प्रदाता न शुक्रो न शान्तः प्रभानातपन् रोचनो रोचमानः ॥ ९२ ॥
न हि ज्योतिरानन्दवान्नो सुतेजा न चित्रो न केतुः प्रभुः संस्तुतो नो ।
न शान्तोऽभिजिन्नारुणो नो तपस्वान् समृद्धोऽमृतः प्रस्तुतो विष्टुतो नो ॥ ९३ ॥
शुभा कृत्तिकास्त्यग्निदेवस्य जाया शुभं ज्येष्ठभं चास्ति देवेशवासः ।
प्रिया देवयोरेतयोरस्ति राधा शरद्यर्कविष्णोर्भवत्यत्र रासः ॥ ९४ ॥

जाती हैं पर सत्य यह है कि नन्दा अनन्दा नहीं होती, पूर्णा अपूर्णा नहीं होती, भद्रा निन्द्या और अभद्रा नहीं होती, कोई तिथि मृता नहीं होती और किसी में छेद नहीं होता। भद्रा या कोई अन्य तिथि न तो आकाश में छेद करती है, न उसे भीषण बनाती है। रिक्ता में आकाश और भूतल रिक्त नहीं होते। ये मिथ्या कल्पनायें हैं ॥ ८९ ॥ वेद में कृष्णपक्ष के १५ दिनों के नाम संस्तुत, कल्याण, तेजस्वी, तेज, समृद्ध, शुक्र, अमृत, अरुण, भानुमान्, तपस्वत् आदि हैं। शुक्लपक्ष के १५ दिनों के नाम संज्ञान, विज्ञान, प्रज्ञान, जानत्, अभिजानत्, श्रेय, कल्याण आदि हैं। इन तीस में एक भी अशुभ नहीं है ॥ ९० ॥ कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष की तीस रातों के नाम हैं सुता आयुष्मती तर्पयन्ती तृप्ति कान्ता कामदुघा काम्या सूयमाना इरा सूनृता पूरयन्ती पूर्णा दर्शा सुदर्शना आदि। इनमें एक भी अशुभ नहीं है (देखिये मेरा ग्रन्थ, हमारा ज्योतिष और धर्मशास्त्र) ॥ ९१ ॥

वेद में शुक्लपक्ष के दिवसों के १५ और रात्रि के १५ मुहूर्तों का वर्णन है। यही स्थिति कृष्णपक्ष की भी है। दोनों में ६० मुहूर्त हैं और उनमें एक भी अशुभ नहीं है। शुक्लपक्ष के मुहूर्त हैं-मोद प्रमोद कल्याण शोभन शोभमान ज्योतिष्मान तेजस्वान् रोचन रोचमान दाता आनन्द संशान्त आदि ॥ ९२ ॥ कृष्णपक्ष के मुहूर्त हैं तेजस्वी आनन्द संस्तुत शान्त समृद्ध अमृत आदि ॥ ९३ ॥
वेदों का सर्वश्रेष्ठ देव इन्द्र है। उसे सुरेश कहते हैं और उसके बाद द्वितीय स्थान अग्निदेव का है किन्तु वेदों का प्रारंभ प्रायः अग्नि शब्द से ही होता है। वेदों में प्रथम नक्षत्र कृत्तिका है और उसका पति अग्नि है। कृत्तिका अग्नि की पत्नी है

प्रिया शंकरस्यार्द्रचित्तास्ति चार्द्रा ददात्यम्बु साऽऽदौ वसूनां धरायै ।
प्रदत्ते श्रियं शर्म माता पुनः सा वसूनौषधीः सर्वमन्नं प्रजायै ॥ ९५ ॥
जलेशाम्बुसर्पप्रियाः सन्ति पूताः शुभा भद्रपादास्ति शस्तं भगर्क्षम् ।
सुराणां गुरोर्वेश्म पुष्यः प्रशस्तो वसूनां निवासो धनिष्ठा शुभर्क्षम् ॥ ९६ ॥
करोत्यम्बरं साम्प्रतं किन्तु भीमं क्वचिद् भैश्च तिथ्यादिभिर्वारयोगः ।
समुत्पद्यते तेन वज्रं च मृत्युर्विषं कण्टकं कालदण्डः कुयोगः ॥ ९७ ॥

और क्षेत्र है। इसी प्रकार ज्येष्ठा इन्द्रदेव की पत्नी और निवासस्थान है, गृह है। अतः वेद में ये दोनों नक्षत्र परम शुभ हैं किन्तु आज के ज्योतिष में दोनों हर कर्म में त्याज्य हैं, तीक्ष्ण हैं, दारुण हैं और ज्येष्ठा में उत्पन्न बालक त्याज्य है। राधा (विशाखा) इन दोनों की प्रिया है। शरद् ऋतु में जब अर्क (सूर्य) रूपी विष्णु इसके पास पहुंचते हैं तो उनकी रासलीला होती है। चित्रा, अनुराधा आदि उसकी सखियां हैं किन्तु आज के ज्योतिष में राधा तीक्ष्ण है, दारुण है, हरकार्य में निषिद्ध है और समाज को यह निर्णय मान्य है ॥ ९४॥ यही स्थिति आर्द्रा आदि की है। वेद में आर्द्राशिवप्रिया है, आर्द्रचित्ता (दयामयी) है और प्रथम वर्षा आर्द्रा में ही होती है। उसके बाद पुनर्वसु (नया अन्न धन), पुष्य (पोषण) और आश्लेष आदि आते हैं। माता आर्द्रा धरती को आर्द्र करने के बाद वसुंधरा को श्री, कल्याण, वसु, औषधी और प्रजा को अनेक अन्न देती है ॥ ९५ ॥ वरुण, जल, सर्प के नक्षत्र घनिष्ठा, आषाढ़ा, आश्लेषा परम शुभ हैं, भद्रपदा का तो नाम ही मांगलिक है, भगदेव की प्रिया भगवती फाल्गुनी भी वैसी ही हैं, देवगुरु का नक्षत्र पुष्य पोषक है पर आज सब अशुभ हैं। पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी इस समय उग्र क्रूर हैं और घनिष्ठा से रेवती तक पांच नक्षत्र भीषण हैं। वेद में सर्प वह है जो सरकता है। देव, शंकर, और समाजसेवक मुख्य सर्प हैं पर आजकल सब विवाह आदि में वर्जित हैं ॥ ९६ ॥

वेद में सब, तिथियां, नक्षत्र और ग्रह शुभ हैं किन्तु भारत में विदेशी वारों के आगमन के बाद ज्योतिषियों ने लिख दिया कि वारों का कुछ तिथियों और नक्षत्रादिकों से योग हो जाने पर अनेक भीषण योग बन जाते हैं। सोम वार और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र, दोनों शुभ हैं पर उनसे मृत्यु योग बनता है। बुध वार और रेवती के योग से उत्पात योग बनता है। शुक्रवार और रोहिणी का योग यमघण्ट हो जाता है। गुरुवार का उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी और मृग से योग होने पर दग्ध,

न किन्त्वीशनेत्रं सुधावर्षकोऽर्कः सुरात्मास्ति पापः सुरांशुर्ग्रहेशः ।
न षण्ढौ शनिज्ञौ खलो मंगलो नो न नारी च शुक्रो न चन्द्रो द्विजेशः ॥ ९८ ॥
प्रसादात् श्रुतेर्निर्भयं चित्तमासीद् यदीशान नित्यं प्रसन्नं सुधाभम् ।
तदेवाधुना कल्पितानां भयानां व्रजैरस्ति जातं विभीतं विषाभम् ॥ ९९ ॥
मनःशक्तिहीनाः समे सन्ति भीता नराः कल्पितैर्भूरिदोषैर्दिनानाम् ।
भयैः खेटभानां दिशां चायनादेस्तिथीनामृतूनां च योगादिकानाम् ॥ १०० ॥
अहं किन्तु मन्ये निकृष्टं न कंचित् सुरं वा निसर्गात् क्षणं वासरं वा ।
न निन्द्यं भगेशाग्निशक्रादिगेहं न सूर्यं शनिं मंगलं खेचरं वा ॥ १०१ ॥

उत्पात और मृत्यु योग बनते हैं। पृथ्वी, वायु और आकाश को भयंकर बनाने वाले अन्य योग हैं वज्र, विष, कण्टक, कालदण्ड, रोग, उद्वेग, ध्वांक्ष, घोर, मृत, दग्ध, यमघण्ट, अधम, अग्नि, काण, लुम्ब, मुसल, मुद्गर, मातंग, राक्षस, केतु आदि ॥ ९७ ॥ किन्तु सत्य यह है कि शंकर का नेत्र, सारे जगत् का आत्मा अमृत का वर्षक और ग्रहों का स्वामी वह सूर्य पापग्रह नहीं हो सकता जिसकी किरणों को वेदों ने देव देवी कहा है। इसी प्रकार आज के ज्योतिष ने शनि बुध को नपुंसक, मंगल को खल और शुक्र एवं द्विजेश चन्द्र को नारी कहा है। यह भी मान्य नहीं है। वस्तुतः इन योगों में आकाश, वायुमण्डल आदि भीषण नहीं हो जाते ॥ ९८ ॥

चक्षोः सूर्यो अजायत । सूर्यचन्द्राग्निनयनः । निवेशयन्नमृतं
याति देवः सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च । बण्महानसि सूर्य
महानसि श्रवसा महानसि । असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः
सुमंगलः । सोमोस्माकं ब्राह्मणानां राजा । बृहस्पतिः प्रथमं
जायमानः । तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि (यजुर्वेद) ।

हे ईशान! वेदों की कृपा से समाज का जो चित्त निर्भय, सर्वदा प्रसन्न और अमृत तुल्य था वही अब अनेक काल्पनिक भयों से भयभीत और विष तुल्य हो गया है ॥ ९९ ॥ सब मनुष्य दिन, ग्रह, नक्षत्र, अयन, ऋतु, तिथि, योग और दिशा आदि के अगणित दोषों को सुन कर मनोबल से विहीन और भयभीत हो गये हैं ॥ १०० ॥ किन्तु मैं यह मान चुका हूं कि न कोई देव निकृष्ट है न कोई क्षण, वार आदि। सब कालमानों का देवों से सम्बन्ध है। कहीं रवि का वार है तो कहीं शिव का नक्षत्र है तो कहीं दुर्गा की तिथि है। भग, शंकर, अग्नि, इन्द्र आदि के

भजे सर्वदिग्देशकालग्रहस्थं विभो पार्श्वपृष्ठस्थमग्रेसरं त्वा।
हृदा सर्वदा सर्वयोगार्क्षसंस्थं विदेहं यतीनां सतां शंकरं त्वा ॥ १०२ ॥

जानीहि हे मित्र तवार्तहेतुर्नो दुर्मुहूर्तोऽस्ति न कोऽपि खेटः।
संगो धनाप्तेः करणानि पित्रोस्ते कर्म पूर्वं नवमत्र हेतुः ॥ १०३ ॥

नक्षत्र न तो अशुभ हैं, न सूर्य मंगल शनि ग्रह पाप हैं ॥ १०१ ॥

मैं हृदय में सर्वदा उन शंकर का स्मरण करता हूं जो हर देश काल ग्रह योग और नक्षत्र में और आगे पीछे दायें बायें स्थित हैं तथा सज्जनों के शंकर (कल्याणकारी) हैं ॥ १०२ ॥

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् (यजु ४०।१)
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् (यजु ३१।२)
संवत्सरोमासोऽहोरात्रोऽयनं प्रजापतिः (प्रश्नोपनिषत्)
एषोह देवः प्रदिशो नु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः (यजु ३२।४)
सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात् सर्वगतः शिवः (श्वेत उप)
सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरो मुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति (गीता १३।१३)
सोऽन्तरादन्तरं प्रादिशत्, प्रांचः प्रत्यंचोहं दक्षिणामु
दंचोऽहं दिशः प्रदिशश्चाहं मध्यं बहिः पुरस्तात्

योऽग्नौ रुद्रो योऽप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश।
य इमा विश्वा भुवनानि चक्लृपे तस्मै रुद्राय नमः (अथर्व, उप) ॥

हे मित्र! जान लो, तुम्हारे दुःख का कारण अशुभ मुहूर्त या ग्रह नहीं है। मुहूर्तों के नाम, क्रम और ग्रहों के फल तो बदलते रहते हैं। दुःख के हेतु हैं, कुसंग, धनप्राप्ति के साधन और तुम्हारे तथा पूर्वजों के नये पुराने कर्म ॥ १०३ ॥

नरो हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः ।
दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी लभते न कष्टम् ॥ १०४ ॥

हित आहार विहार का सेवी, दूरदर्शी, जितेन्द्रिय, दाता, दूसरों के दुःख से दुखी, सत्यनिष्ठ, क्षमावान् और महान् पुरुषों का सेवक कभी कष्ट नहीं पाता (चरकसंहिता) ॥ १०४ ॥

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् १४।१६ ॥
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था अधो गच्छन्ति तामसाः १४।१८
अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् १८।१४
पंचैतानि महाबहो कारणानि निबोध में १८।१३ गीता
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि (गरुडपुराण)

चतुर्थोऽध्यायः

आधुनिकं ज्यौतिषम्

अयि शिक्षित पृच्छसि चन्द्रबलं शुभलग्नमुहूर्तयुतं सुदिनम् ।
न हि वेत्सि न निर्मितवान् भगवान् प्रियसन्ततिहानिकरं कुदिनम् ॥ १ ॥
अवधेहि शुभं निर्ऋतं निर्ऋतं पितृभं च मघां भरणीं भरणीम् ।
शिवभं च यदार्द्रतरां च पुवर्वसुपोषणदां कुरुते धरणीम् ॥ २ ॥
यदि नूतनदैवविदां सकलं वचनं मनुषे हितसत्यमलम् ।
सुलभं न हि दोषसमुद्रगतं सुदिनं तव वर्षशतैर्विमलम् ॥ ३ ॥
बहुकर्मसु पश्यसि देवगुरोर्बुधचन्द्रमसोश्च भृगोरुदयम् ।
न हि चेच्छसि सूनुसुतोपयमे ग्रहदीप्तिनिदानखेरुदयम् ॥ ४ ॥

मेरे शिक्षित भाई! तुम ज्योतिषी से चन्द्रबल और शुभलग्न एवं शुभ नक्षत्र, शुभवार, शुभतिथि, शुभयोग, मुहूर्त आदि से युत सुदिन पूछ रहे हो पर यह भूल गये हो कि दयालु भगवान ने अपनी प्रिय सन्तान के लिये कोई कुदिन नहीं बनाया है ॥ १ ॥ ज्योतिषी ने मूल नक्षत्र को अशुभ कहा है, उसमें उत्पन्न शिशुको फेंकने का आदेश दिया है पर वह नक्षत्र आकाशगंगा का मूल है। उसका स्वामी निर्ऋत राक्षस कहा जाता है पर उस शब्द का अर्थ है, पूर्ण ऋत (सत्य)। पितरों का नक्षत्र मघा भी शुभ है। ज्योतिषी ने इनको, शिव के नक्षत्र आर्द्रा को और तीनों पूर्वाओं को उग्र, क्रूर, तीक्ष्ण और दारुण कहा है किन्तु ये सब शुभ हैं। मघा और मूल में आज भी विवाह होते हैं। पितर हमारे पूज्य हैं, भरणी भरण करती है और शिव का नक्षत्र आर्द्रा तो पृथ्वी को जल से आर्द्र कर हमें पुनः वसु और पोषण (पुष्य) देता है ॥ २ ॥ ज्योतिषियों ने दोषों का एक सागर तैयार किया है अतः तुम यदि उनके सब वचनों को अलं (पूर्ण) हितावह और सत्य मानते हो तो जान लो कि तुम्हें विमल (दोषरहित) दिन सौ वर्षों में भी नहीं मिलेगा ॥ ३ ॥ तुम हर कर्म में देवगुरु, बुध, चन्द्रमा और शुक्र नामक शुभग्रहों का उदय देखते हो पर अपने पुत्र पुत्री का उपयम (विवाह) उस सूर्य के अस्त (रात्रि) में करते हो जो सब ग्रहों की

उदितैरपि किं निखिलैः खचरैर्हृदये यदि नास्ति शिवाभ्युदयः ।
प्रददाति मुदं हृदि शुक्रबुधाद्युदयश्च शिवाशिवयोरुदयः ॥ ५ ॥
अवधेहि तवास्ति तदेव हितं सुदिनं च खगोडुमुहूर्तबलम् ।
कुरुषे स्वशुभाचरणैर्यदुमां जनतां मुदितां हृदयं विमलम् ॥ ६ ॥
प्रवदन्ति हि दैवविदो वपुषः स्फुरणं स्खलनं करटादिखान् ।
सरठाद्युपपातशिवादिपशून् स्थितिभेदवंशादशिवांश्च शिवान् ॥ ७ ॥
प्रतिराहुबुधक्षितिजा न शुभाः प्रविशेन्न गृहे यदि दक्षरविः ।
कुशलाय न पृष्ठगवामविधुः सुफलाय न पृष्ठगवामकविः ॥ ८ ॥

दीप्ति का निदान (हेतु) है, सबका पिता है। तुम सूर्य को पापग्रह कहते हो और उसके प्रकाश से प्रकाशित बुध, गुरु, शुक्र को शुभ ग्रह मानते हो ॥ ४ ॥

वेदमत में शरीरस्थ शुक्र और बृहस्पति का अर्थात् वीर्य और सुमति का उदय ही वास्तविक उदय है। उस समय छोटे बच्चों और अरजस्का कन्याओं का विवाह नहीं होता था।

हे विद्वन्! इन खचरों (ग्रहों) के उदय की प्रतीक्षा मत करो। ये और तारे तो प्रतिदिन हमें चार प्रहर दर्शन देते रहते हैं। केवल क्षितिज के नीचे जाने पर अस्त होते हैं। हृदय में परमात्मा अस्त हैं, सोये हैं तो इनके उदय से कोई लाभ नहीं है। प्रमोद तो तब मिलता है जब हृदय में शुभ ग्रहों का, देवों का और शिवा शिव का उदय होता है ॥ ५ ॥ भली भांति जान लो, तुम्हारा हित, सुदिन, ग्रहबल, उडु (नक्षत्र) बल और मुहूर्त बल वही है जब अपने सदाचार से माता उमा को और जनता को प्रमुदित कर देते हो, जब तुम्हारा हृदय निर्मल रहता है, जब सबका आशीर्वाद मिलता है ॥ ६ ॥

तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव । विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेंऽघ्रियुगं स्मरामि ॥ लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः । येषां हृदिस्थो भगवान् मंगलायतनो हरिः ।

हे मन! दैवविद् (ज्योतिषी) कहते हैं कि भिन्न भिन्न अंगों के स्फुरण के, गिरगिट, छिपकली आदि के पतन के, सियारिन लोमड़ी आदि के दर्शन के, वस्त्र खिसकने के और काक आदि के शब्दों के परिस्थिति के अनुसार शुभ अशुभ अनेक फल होते हैं ॥ ७ ॥ राहु, बुध, मंगल अनेक स्थितियों में भयंकर हो जाते हैं। रवि के दायें रहने पर गृहप्रवेश नहीं होता तथा पीछे और बायें रहने पर विधु और कवि

शकुनाब्धिमगाधमिमं जहिहि त्यज वामगदक्षिणगव्यसनम् ।
त्यज खेट शुभाशुभतां हस मा विकलांगदुराकृतिदुर्वसनम् ॥ ९
व्रणिमूकजडान्धदरिद्रनरा बधिरा विधुरा विधुता विधवाः ।
यदि यन्ति मदक्षयकुष्ठरुजाः पुरतः क्षुतकासितभीतरवाः ॥ १० ॥
परुषोक्तिमनादरकाकुघृणा अपहाय च दुःशकुनोत्थभयम् ।
प्रियवागनुरागयुतः सदयो भव पश्य च तत्र शुभातिशयम् ॥ ११ ॥
दिवि सन्ति खगाश्च नृभावखाः पवना ध्रुवसप्तमहर्षिगणाः ।
मृगलुब्धककुंभजविष्णुपदीबहुपुच्छलदीप्तिनगा भगणाः ॥ १२ ॥
न हि सर्वफलं विदुरात्मविदः कपिलात्रिकणादपतंजलयः ।
न हि दैवविदश्च विदुः सकलं भृगुगर्गपराशरजैमिनयः ॥ १३ ॥

(शुक्र) भीषण हो जाते हैं ॥ ८ ॥ पर मैं कहता हूं कि तुम शकुनों के इस अगाध सागर को, ग्रहों के दायें बायें आगे पीछे रहने के विचारव्यसन को और उनके शुभाशुभत्व की भावना को छोड़ दो तथा एक बात का सदा ध्यान रखो कि जनता ज्योतिषियों के कहने से विकलांग, कुरूप और मलिन या फटे वस्त्र वाले दरिद्र मनुष्य को अपशकुन मानती है। उसको देख कर तुम न हंसो न अपशकुन मानो ॥ ९ ॥ यदि तुम्हारे सामने व्रणी (घाव वाले), मूक, जड़, अन्धे, दरिद्र, बधिर, विधुर (पत्नीहीन) मनुष्य आते हैं, विधवायें आती हैं, उन्माद क्षय और कुष्ठ के रोगी आते हैं, छींक खांसी और भयभीत के शब्द आते हैं ॥ १० ॥ तो अपशकुन का भय छोड़ दो। उनके साथ कटु भाषा, अनादर, काकु (विकृत ध्वनि), और घृणा का प्रयोग मत करो। प्रिय वाणी अनुराग और दया से युत होकर उनमें शुभ शकुन देखो ॥ ११ ॥ इस बात का सदा ध्यान रखो कि आकाश में खग (ग्रह) हैं तो मनुष्यों के काम, लोभ, कोप, मोह, शान्ति, दया, क्षमा, उत्साह आदि नाना प्रकार के मनोभाव भी हैं, भले बुरे अगणित रव (शब्द) भी हैं, असंख्य पवन भी हैं, धूम हैं, ग्रहों से विशाल धूमकेतु, उल्का, नीहारिकायें हैं। ध्रुव, सप्तर्षिगण, मृगव्याध, अगस्त्य, आकाशगंगा के अगणित तारे, पुच्छल तारे हैं और भगणों (अश्विनी आदि नक्षत्रों) के ऐसे तारे हैं जो ग्रहों से बहुत बड़े हैं तथा दीप्ति के नग (पर्वत) हैं तो क्या केवल ग्रहों का ही प्रभाव पड़ेगा? ॥ १२ ॥

सच पूछो तो इन सबों के मिश्रित फल को कपिल, अत्रि, कणाद, पतंजलि आदि आत्मवेत्ता योगी भी पूरा पूरा नहीं जान सके। इनके सारे फलों को महान्

मुनिगौतमपुत्रवसिष्ठमुखा बुधकौशिककल्पमहामुनयः।
प्रभुरामविवाहमकुर्वत भे सुखदे ग्रहतत्त्वविदो यतयः ॥ १४ ॥
यजमान इहेन्द्रसखाजसुतो जनकश्च गुरुर्गुरुबोधवताम् ।
अगमन् मृतिबन्धुवियोगरणा अशुभानि बहूनि विदेहसुताम् ॥ १५ ॥
प्रशशंस पुरा बहुरामगुणान् हृदि संसदि केकयराजसुता ।
अधिकं भरतादपि हार्दमभूदथ तत्र ततोप्यधिका ममता ॥ १६ ॥
गुरुशिष्टसमुत्सुकमंत्रिमतादभिषेक्ष्यति भूपपदेऽस्य पिता ।
मम राम इलाधिपतिर्भवितेति निशम्य बभूव परं मुदिता ॥ १७ ॥
निजदास्युपहारकृते त्वरया बहुमूल्यनिजाभरणान्यददात् ।
सुररामकुटुम्बकृते भगभं च मुहूर्तबलं न हि भद्रमदात् ॥ १८ ॥

ज्योतिषी भृगु, गर्ग, पराशर, जैमिनि आदि भी नहीं जान सके ॥ १३ ॥ महर्षि गौतम के पुत्र महापण्डित श्रीशतानन्द जी राजर्षि जनक के और महर्षि वसिष्ठ तथा विश्वमित्र राजा दशरथ के पुरोहित थे। ग्रहतत्त्ववेत्ता कहे जाने वाले इन यतियों ने परमशुभ भग नक्षत्र में, मार्गशीर्ष मास में, सुयोग में और सुमुहूर्त में सीताराम का विवाह किया ॥ १४ ॥ इस विवाह में इन्द्र के मित्र और महाराज अज़ के पुत्र दशरथ तथा प्रबुद्ध पुरुषों के गुरु जनक जी यजमान थे फिर भी दशरथ की कष्ट से अकालमृत्यु हुई, राम की मातायें विधवा हो गई, बन्धुओं का वियोग हुआ, वनवास हुआ, सीताहरण के बाद घोरयुद्ध हुआ और विदेहसुता सीता पर अन्य अनेक आपत्तियां आईं ॥ १५ ॥

राम के विवाह के पूर्व एक ऐसा शुभ समय था कि कैकेयी हृदय में और सभा में राम के गुणों की बार-बार प्रशंसा करती थी। उसके हृदय में राम के प्रति भरत से अधिक स्नेह था और अधिक ममता थी ॥१६॥ उसने सुना कि वसिष्ठादि गुरुजन, मन्त्रिगण और अयोध्या के अन्य शिष्ट जन राम का राज्याभिषेक देखने के लिये अति उत्सुक हैं। अतः महाराज दशरथ उनकी संमति के अनुसार वह महोत्सव करने जा रहे हैं। मेरा राम धरती का स्वामी होने जा रहा है, यह समाचार सुन कर कैकेयी अतिशय प्रसन्न हो गई ॥ १७ ॥ उसने यह समाचार सुनाने वाली दासी को उपहार में कई बहुमूल्य आभरण दे दिये किन्तु विवाह वाला भगदेव का शुभ नक्षत्र, शुभ लग्न और मुहूर्त का बल देवस्वरूप राम को और उनके कुटुम्ब एवं स्वजनों को भद्र (मंगल) नहीं दे सका ॥ १८ ॥

सति लग्नमुहूर्तबले यवनैर्बहुधा बहुभूपतयो निहताः ।
रहितैरपि तेन बलेन खलैर्बहुदेवलविप्रवराश्च हताः ॥ १९ ॥
अतएव वदामि कृतिन् नृकृतेः फलदं सुकृतैर्भज साम्बहरम् ।
वद देहि विभो सुमतिं च दमं त्रिपुरान्तक नौमि पिनाकधरम् ॥ २० ॥
शिव शंकर शंभव शाश्वत शर्मद शान्तिद हे शतशक्तिपते ।
शशिशेखर शर्व शरण्य शठान्तक शक्ल शुचे शुचिशान्तगते ॥ २१ ॥
सवितः सनकादिकसिद्धसुरासुरसेव्य सतीश सतां सुहृदम् ।
सुषमासदनं सितसूरतसौम्य सरामि समृद्धिसृतिं सुखदम् ॥ २२ ॥
स्मरशत्रुसुहोत्रसहिष्णुसुपालक शूलिशिखण्ड्यवतार भजे ।
ससुमन्तुसुभद्रकसंजयशिष्यसभाजन साम्ब सुतार यजे ॥ २३ ॥

हे मित्र! हमारे ज्योतिष ग्रन्थों में दिग्विजय के कई सौ प्रबल लग्न, मुहर्त लिखे हैं किन्तु उनके रहते यवनों ने हमारे देश पर अनेक बार आक्रमण किये और अनेक नृप मारे। वे हत्यारे मुहूर्त पूछ कर नहीं आये थे, उनसे अपरिचित थे फिर भी उन्होंने हमारे अनेक देवलों (पुजारियों) और विप्रवरों को मारा तथा अनेक मन्दिर तोड़े ॥ १९ ॥ अतः हे कृतिन् (कुशल) मित्र! मेरा कहा मानो। तुम मनुष्यों के कर्म के फलदाता उमाशंकर की अपने सत्कर्मों द्वारा उपासना करो। उनसे कहो कि हे विभो! हे त्रिपुरान्तक पिनाकधर शिव! आप को प्रणाम है। हमें कृपया सुमति और दम (उत्साह) दें तथा इस भ्रम से मुक्त करें ॥ २० ॥ हे प्रभो! आप शिव (मांगलिक), मंगलप्रद, मंगलबीज, शाश्वत, कल्याणप्रद, शान्तिप्रद, सैकड़ों शक्तियों के स्वामी, दुःखहारी, शरणागतवत्सल, दुष्टहन्ता, शक्ल (प्रियंवद), शुचि, शुचिशान्त के रक्षक आदि हैं। पूरा ब्रह्माण्ड आप का शरीर है और चन्द्रमा आप के सिर का आभूषण है ॥ २१ ॥ हे सवितः (संसारके पिता)! आप सनक, सनन्दन, आदि सिद्धों, सुरों और असुरादिकों से सेवित हैं। सतीश, सज्जनों के मित्र, सौन्दर्य के सदन, गौर, सूरत (दयालु), सौम्य, समृद्धि के सुमार्ग और सुखद हैं। मैं आप का अनुसरण कर रहा हूं ॥ २२ ॥

(शिव के सुहोत्र सहिष्णु आदि २४ योगेश्वरावतार हैं और सुमन्तु आदि ११२ मुख्य शिष्य हैं)। हे साम्ब सदाशिव! मैं इन कामेश्वर, सुहोत्र, सहिष्णु, सुपालक, सुतार, दधिवाहन, दारुक, दम, सुमन्तु, सुतार आदि का यजन भजन करता हूं ॥ २३ ॥

भगवन् भव भास्वर भर्ग भिषग् भजतां भ्रमभंजन भूतिपते ।
भुवनेश भजेऽभ्रभुजंगमभूषण भैरव भूतप भक्तगते ॥ २४ ॥
मुनिमानसमन्दिरमंगलमूर्तिमहेश मनोन्मन मृत्युंजयम् ।
मदनेश मयोभव नौमि मृडं मम मृष्य मयस्कर मन्त्वनयम् ॥ २५ ॥
तुद तत्पुरुष त्रिपुरान्तक मा त्वयि तत्परमार्ततरं तनयम् ।
त्रिदशेश्वर तारय तारकजित् त्यज तात तिरोहिततातिशयम् ॥ २६ ॥
नवनिर्मलनीरदनीलतनुं नकुलीश नमामि नतार्तपतिम् ।
नरसिंहनियामक निर्जरनायक नारद निर्मल नारसृतिम् ॥ २७ ॥
नगराजनिकुंजनिकेतन नौमि नरेशनिधीशनमस्यनुतम् ।
निकटे नय नाथ निराश्रयनारनिदान नटेश निजं निभृतम् ॥ २८ ॥

हे भव! आप ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य आदि अनेक भगों से युत होने के कारण भगवान् हैं। आप का शरीर तेजस्वी है अतः आप भास्वर, भर्ग कहे जाते हैं। वेदों ने आप को भिषक्तम (वैद्यनाथ) कहा है। आप सारी विभूतियों के स्वामी हैं, भक्तों के भ्रम कष्ट के भंजक हैं, तीनों लोकों के स्वामी हैं। अभ्र (मेघ) रूपी सांप आप के आभूषण हैं, आप दुष्टों के लिये भैरव हैं, सब भूतों (जीवों) के स्वामी हैं और भक्तों के मार्गदर्शक हैं। आप को प्रणाम है ॥ २४ ॥

हे महेश्वर! मुनियों के मानस आप के मन्दिर हैं और आप मंगलमूर्ति उनमें सदा जागृत और उदित रहते हैं। आप मनोन्मनी (समाधि) अवस्था के दाता और स्वयं मनोन्मन हैं। भक्तों की दरिद्रता, व्याधि, अज्ञान आदि मृत्युओं के विध्वंसक हैं। कामेश्वर, मुक्तिप्रद और मृड (आनन्दप्रद) हैं। हे मयस्कर! मेरे हृदय से अनीति क्रोध आदि को समाप्त करें और मुझ पुत्र के अपराधों को क्षमा करें ॥ २५ ॥

हे त्रिपुरारे! मैं आप के चरणों में तत्पर आप का एक आर्ततर पुत्र हूं। हे तत्पुरुष शिव! अब मुझे त्रास न दें। हे देवेश्वर तारकेश्वर! मुझे इस चिन्तासागर से तार दें। हे तात! अब इस अति तिरोहितता (अदृश्यता) को छोड़ दें ॥ २६ ॥

हे नकुलीश! आप का एक शरीर नूतन, निर्मल मेघ की भांति नील है। आप नतों और आर्तों के पालक हैं। हिरण्यकशिपु का वध करने के बाद अति कुपित नरसिंह भगवान् को आप ने शरभावतार ले कर शान्त किया। आप निर्जरों (देवों) के नायक, आनन्दप्रद, निर्मल और नार के मार्ग हैं ॥ २७ ॥

नगराज हिमालय के वृक्षों का निकुंज ही आप का गृह है। आप निर्दोष नारद, नन्दी आदि से नुत हैं, निराश्रयों की शान्ति के हेतु हैं, और निधीश (कुबेर),

द्रव दावदरीप्रिय दैवत मे द्रुतमेहि दिगम्बर देहि वरम् ।
दमयेश दयामय दर्शनतो दुरितानि दुराशय दस्युमरम् ॥ २९ ॥
गिरिशन्त गिरित्र गुणाकर गीतगुरो गुरुगन्धगभस्तिवहम्
गिरिजेश गृणामि गणाधिप गात्रगभीरगुहागृहगूढमहम् ॥ ३० ॥
पृथुकप्रमदापरतन्त्रपणस्पृहमप्युदेष्टृपदे प्रथितम् ।
पुरुषापसदं पुरुषार्थमपास्य परार्पितपानपचापुषितम् ॥ ३१ ॥
प्रियतापरिपूर्णपवित्रहृदा परिपालितयाऽथ पुरस्कृतया ।
परिभूतमपासितमप्रतिभं प्रसभं परवत् परुषप्रजया ॥ ३२ ॥
परितापपरिष्कृतमप्रगुणं परिचारकमीश पदप्रसितम् ।
पृथुपातकपीवरपाशपशुं पशुपालक पाहि पुनीहि नतम् ॥ ३३ ॥

नरेशों तथा नमस्यों (पूजितों) से पूजित हैं। हे नटराज! अब इस अपने निभृत (सेवक, भक्त) को निकट बुला लें ॥ २८ ॥ हे मेरे दैवत! आप कुबेर इन्द्र आदि के पूज्य होकर भी दाव (वन) और दरी (गुहा) में ही रहते हैं। हे दयामय! वन में आप दिगम्बर हो जाते हैं। प्रभो! शीघ्र आवें और वर दें। अपने दर्शन से हमारे दुरितों (पापों) और दुराशय रूपी दस्युओं का अरं (शीघ्र) दमन कर दें ॥ २९ ॥ मैं आप के उस रूप को ग्रहण करता हूं जो गिरि में शयन करता है, वहां रह कर हमारा त्राण करता है, गुणों का निधान है, गीत का गुरु है, उच्च गन्ध और गभस्ति (किरण प्रकाश) का वाहक है, गणपति है, हमारे गात्र के गुहागृह में गूढ़ है और माता गिरिजा का उपास्य है ॥ ३० ॥ हे नाथ! हम पृथुकों (पुत्रों) और पत्नी के जाल में फंसे परतन्त्र हैं, पण (धन) के लोभी हैं, पुरुषाधम हैं, पुरुषार्थ को छोड़ दूसरे द्वारा दिये पान और भोजन से पुषित हैं, फिर भी उपदेशक के पद में सुप्रसिद्ध हैं ॥ ३१ ॥ स्नेह से परिपूर्ण पवित्र हृदय से जिनका परिपालन किया, जिन्हें पुरस्कृत किया उन्हीं परुष (कठोर) प्रजाओं द्वारा अब पराये की भांति प्रसभ (बलपूर्वक) पराजित कर के तिरस्कृत हैं। अब हमारी प्रतिभा निरर्थक हो गई है ॥ ३२ ॥

अब पश्चात्ताप से परिष्कृत हम अप्रगुण (व्याकुल) हैं। हे ईश! बड़े पातकों रुपी दृढ़ पाश से बंधे हम पशु अब आप के परिचारक (दास) हैं, चरणों में आसक्त हैं, नत हैं। आप का नाम पशुपति है। अतः हमारे हृदयों को पवित्र कर हमारी रक्षा करें ॥ ३३ ॥

पुरुपण्डितपूग्ममवेक्ष्य मखे परतत्त्वपराङ्मुखमर्थपरम् ।
पृथिवीसुरपूज्यपुरोहितपूतपरार्घ्यविपश्चिदुपाधिधरम् ॥ ३४ ॥
पशुपक्षिपलादपरिस्रुदिरापमुपाकृतपीडनपिंजपरम्।
प्रविहाय परिग्रहपापजदुष्परिपाकभयं प्रभुकोपदरम् ॥ ३५ ॥
प्रविलोक्य प्रजापतिदक्षमपि प्रतिकूलमतिं प्रवयस्पितरम् ।
परिणाममुपेक्ष्य परेशपथप्रदपुण्यसवप्रतिपक्षपरम् ॥ ३६ ॥
प्रणयार्द्रमपि प्रतिघालुहरं प्रणमामि पृषत्कपिनाककरम् ।
पृथुपुण्यहरं च सतीसुपितुः परिचिन्त्य परःशतपापभरम् ॥ ३७ ॥

हमने सुना और देखा कि बड़े-बड़े पण्डितों के अनेक पूग (समूह) यज्ञशाला में बैठे हैं। वे परमतत्त्व से विमुख और धन के इच्छुक हैं फिर भी उनकी भूसुर, पूज्य, पुरोहित, पवित्र, परमपूज्य और विद्वद्वर आदि अनेक उपाधियां हैं ॥ ३४ ॥

वे परिग्रह (दान लेने) के पाप से उत्पन्न दुष्परिणाम के और प्रभु के कोप के भय का परित्याग कर उन यज्ञों में रत हैं जिनमें पशु पक्षियों का पल (मांस) खाया जाता है। परिस्रुत् (मदिरा) और इरा (गन्धवती मदिरा) का पान होता है। उपाकृत (मंत्र पढ़कर पशुमारण) कर्म होता है, पीड़न होता है और पिंज (वध) होता है ॥ ३५ ॥

हे हरे! आपने देखा कि प्रजापति दक्ष सदृश प्रवय (वयोवृद्ध) पितर की भी मति प्रतिकूल हो गई थी। वे परिणाम की उपेक्षा कर उस पुण्यप्रद यज्ञ के प्रतिपक्षी (विरोधी) हो गये जो परमात्मा की प्राप्ति के पथ की ओर ले जाता है ॥ ३६ ॥

(संस्कृत में संयुक्ताक्षर के पूर्व का अक्षर दीर्घ माना जाता है। उस नियम के अनुसार इस श्लोक के प्रविलोक्य का क्य-दीर्घ है, छन्दोभंग कर रहा है पर पिंगलसूत्र के 'प्रह्रेवा' सूत्र के अनुसार प्र और ह्र के पूर्व वर्ण का दीर्घत्व विकल्प से होता है अतः यहां क्य ह्रस्व है)।

मैं आप के उस रूप को प्रणाम कर रहा हूं जो प्रणयार्द्र (स्नेहार्द्र) हो कर भी प्रतिघालु (कुपित) हो गया। जिसने हाथ में पृषत्क (बाण) और पिनाक धारण कर सती के पिता का बहुत सा पुण्य समाप्त कर दिया। हम तो अपने शताधिक पापों का चिन्तन कर और भी भयभीत हैं॥ ३७॥

परमेश पुरातनपूरुष पूज्यपुरोग तवापरिपक्वसुतः ।
प्रणतोऽस्ति परात्पर पामरपावनपुंगव पाहि पुनीहि पितः ॥ ३८ ॥
प्रणमाम्युपमन्युपराशरपिप्पलपंचशरप्रमथापचितम् ।
पवमानपुरन्दरपावकपाशिपरेतपतिप्रभृतिप्रणुतम् ॥ ३९ ॥
कृतिकश्यपकौशिककर्दमकोकिलकंककुबेरकणादनुतम्।
कपिलार्चितकृष्णकुमारसमादृतकैरवकान्तकुठारभृतम् ॥ ४० ॥
कमले कमलासन कोमलकांचनकुंचितकेशकपर्दधरम् ।
कलशांक नमामि किशोरकलानिधिकान्तकरैः कमनीयतरम् ॥ ४१ ॥
कलयामि करालकिरातकलेवर कृत्रिमकोपन कारणिकम् ।
कृपणार्तकिरीटिनि कृच्छ्रकृशे किरिणा क्लिशिते कृतकारुणिकम् ॥ ४२ ॥

हे परमेश्वर, पुरातन पुरुष, पूज्यों के पूज्य, परात्पर, पामरों को पवित्र करने वालों में सर्वश्रेष्ठ पिता शंकर! आप का अपरिपक्व मति वाला पुत्र चरणों में गिरा है। इसे बचा लें, इसका उद्धार करें ॥ ३८ ॥

मैं आप के उस रूप को प्रणाम कर रहा हूं जो उपमन्यु, पराशर, पिप्पल, कामदेव, प्रमथगण, वायु, इन्द्र, अग्नि, वरुण, यमराज आदि से पूजित है ॥ ३९ ॥

जो कृती (महान् पुरुष) कश्यप, विश्वामित्र, कर्दम, कोकिल, कंक, कुबेर, कणाद, कपिल, भगवान् कृष्ण, कार्तिकेय आदि से समादृत और पूजित है। जो कैरव (श्वेतकमल) सा गौर है और जिसने दुष्टों के संहारार्थ हाथ में कुठार लिया है ॥ ४० ॥

मैं आप के उस रुप को प्रणाम कर रहा हूं जिसमें आप कमलों के आसन पर पद्मासन में बैठे हैं। आप ने वह कपर्द (जटाजूट) धारण किया है जिसके केश कोमल हैं, कुंचित हैं और किंचित् पिंग (सुवर्णवत्) हैं। आप के दोनों हाथों में दो जलपूर्ण कलश हैं। आप उनसे नहा रहे हैं तथा किशोर कलानिधि (चन्द्रमा) की कान्त किरणों से और भी कमनीय (सुन्दर) हो गये हैं (यह रूप मृत्युंजय कहा जाता है) ॥ ४१ ॥

(अर्जुन पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति के लिये इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या कर रहे थे। दुर्योधन का भेजा मूक दानव सूकर का रूप धारण कर उन्हें मारने आया तो शंकर ने किरात का रूप धारण कर उसका वध कर दिया)।

असकृद्विफलं कृतसन्धिपणं समितौ च मुधा बहुधावमतम् ।
स्वजनैर्हृतदायपदं कुधिया विपिनेऽर्जुनमीशवराय गतम् ॥ ४३ ॥
अपि जिष्णुसहिष्णुमरातिहितं फलकाममपीन्द्रियकामजितम् ।
मघवाच्युतशंभुशिवादयितं विजने च समाधिरतं विनतम् ॥ ४४ ॥
विनिहन्तुमनाः प्रमनाः कुगिरा गिरिकम्पकरोऽभिययौ पुरतः ।
घननीलमहीधरभीमवपुर्जडदानवमूक उपाधिरतः ॥ ४५ ॥
स्मरसूदनरीत्यनभिज्ञममुं नियमस्थकपिध्वजघातपरम् ।
अविनीतकुयोधनवैतनिकं खणं पृथुसूकररूपधरम् ॥ ४६ ॥
कृपया परया विवशस्तरसा निशितेन शरेण जघान हरः ।
शरखिन्नतनुः पतितो धरणौ पिशुनः स मृतोऽस्रमुखो मुखरः ॥ ४७ ॥

मैं आप के उस रूप का आकलन करता हूं जिसने कराल किरात का शरीर धारण किया था और कृत्रिम कोप किया था। जो कारणिक (परीक्षक) था। कृच्छ्र (तप) से कृश, किरि (सूकर) से पीडित एवं कृपणार्त (चिन्तित) किरीटी (अर्जुन) पर कृत (पर्याप्त) कारुणिक (दयावान्) था ॥ ४२ ॥ पाण्डव बार-बार संधि का प्रस्ताव रख कर भी विफल थे। सभा के बीच उनका बार-बार निष्कारण अपमान किया गया था। स्वजनों ने दुर्मति से उनके दायभाग का अपहरण कर लिया था। इसलिये अर्जुन शिव की कृपा प्राप्त करने के लिये सब कुछ छोड़ कर वन में चले गये थे ॥ ४३ ॥ वे विजयी होने पर भी अराति (शत्रु) के हितचिन्तक थे, फल की इच्छा रहते हुये भी जितेन्द्रिय थे, इन्द्र विष्णु शिव और शिवा के प्रिय थे, विनीत थे। वे वन में एकान्त में समाधिनिष्ठ हो गये ॥ ४४ ॥ मेघ और पर्वत की भांति काला और भीम मूक दानव प्रमना (प्रसन्न मन) होकर अर्जुन के घात की इच्छा से सामने आया और उपाधिरत हो गया। वह अपनी भीषण गर्जना से पर्वत को कंपा रहा था ॥ ४५ ॥

वह कामेश्वर महादेव की रीति से अपरिचित था और समाधि में स्थित अर्जुन को ही मारना चाहता था। वह अविनीत दुर्योधन का दास था और विशाल सूकर का रुप धारण कर भीषण नाद कर रहा था ॥ ४६ ॥

अतिशय दया से विवश होकर हर ने तरसा (वेग से) उसको निशित (तीक्ष्ण) बाण से मार दिया। मुखर (चिल्लाता हुआ) और मुख से अस्र (रक्त) का वमन करता हुआ वह पिशुन (कपटी) बाण से पीड़ित होकर धरती पर गिर

शरणागतवत्सलमीशमिमं हृदि कारुणिकं बहिरुग्रतरम् ।
त्रिपुरान्तकलुब्धकभीममपि प्रणयेन हलाहलपानपरम् ॥ ४८ ॥
अवलोक्य पृथातनयव्यसनं त्वरयांसनिषंगपिनाकधरम् ।
प्रणमाम्यरुणाक्षमधीरतरं कुपितं शिवमंकुशशूलकरम् ॥ ४९ ॥
शिखिबर्हपरिष्कृतपिंगकचं कुसुमौघलतान्तनिबद्धजटम् ।
मलयाचलचन्दनलिप्ततनुं कृमिरोमजबादरजादिपटम् ॥ ५० ॥
निजपाशुपतास्त्रद पार्थपते नम ईश वृषध्वज धूर्जटये ।
द्विरदान्धकतारकमारक हे वृषयान नमोऽस्तु वृषाकपये ॥ ५१ ॥
विगुणाय नमः सगुणाय नमस्त्रिगुणाय हराय नमो हरये ।
जय खण्डपरश्वज तत्पुरुष प्रमथेश नमो विविधाकृतये ॥ ५२ ॥
क्वचिदुत्सवमिच्छसि नाट्यगुरो गिरिमूजवतो हिमवच्छिखरे ।
त्रिजगज्जननीमुपवेश्य शिवां मणिरत्नविभूषितपीठवरे ॥ ५३ ॥

पड़ा ॥ ४७ ॥ हमारा उन शरणागतवत्सल ईश्वर को प्रणाम है जो बाहर से अति उग्र होकर भी हृदय से कारुणिक हैं। वे त्रिपुरारि हैं, लुब्धक (व्याध) रूप धारी हैं, भीम हैं तो भी सदय होने के कारण हलाहल पी जाते हैं ॥ ४८ ॥ मेरा उन शंकर को बार-बार प्रणाम है जिन्होंने भक्त अर्जुन का संकट देख कर कंधे पर झट निषंग (तरकस) और पिनाक धारण कर लिया, जो अधीर हो गये, जिनके नेत्र कोप से लाल हो गये तथा जिन्होंने हाथों में अंकुश और शूल ले लिया ॥ ४९ ॥ जिन्होंने अपने पिंगल केशों को शिखिबर्ह (मयूरपंख) से सजाया है, जटा को अनेक कुसुमों और लतान्त से बांधा है, रेशम ऊनी और बादर (कपास) आदि के वस्त्र पहने हैं तथा शरीर में सुगन्धित मलय चन्दन लगया है ॥ ५० ॥ अर्जुन को अपना पाशुपत अस्त्र देने वाले पार्थेश! आप वृषध्वज, धूर्जटी, वृषवाहन, वृषाकपि तथा गज, अन्धक और तारकासुर आदि के मारक को नमस्कार है ॥ ५१ ॥

आप निर्गुण, सगुण और त्रिगुण हर एवं हरि को प्रणाम है। विविध आकार धारण करने वाले आप खण्डपरशु, तत्पुरुष, अज और प्रमथेश को प्रणाम है ॥ ५२ ॥ हे प्रभो! हिमाचल के उच्च शिखर पर स्थित मूजवान् आप को बहुत प्रिय है। आप वहां कभी-कभी तीनों लोकों की माता शिवा को मणियों और रत्नों से विभूषित सिंहासन पर बैठा कर उत्सव मनाते हैं। आप नाट्य के गुरु हैं अतः वहां नाटक कराते हैं ॥ ५३ ॥

घनवंशमृदंगसरोदततादिमनोहरसुस्वरवाद्यपरः।
द्रुतमध्यविलम्बिलयैर्डमरुध्वनिसंगतताण्डवनृत्यकरः ॥ ५४ ॥
वसुकिन्नरगुह्यकयक्षगणै रिटिनन्दिकतुण्डिकभृंगियुतः।
तुषितानिलभास्वरसिद्धवरैर्गतपापनरैरमरैः प्रणुतः ॥ ५५ ॥
असि च क्वचिदीश वृतो हरिणैर्मृगराजशृगालबिडालवृकैः।
अहिमूषककीरमयूरबकैः शशधेनुगजैर्वृषहंसपिकैः ॥ ५६ ॥
इति वीक्ष्य मया विदितं नितरां प्रियता विरीतनिसर्गवताम्।
तवसंगजसत्त्वगुणोदयतः सहवास इहास्ति मिथो द्विषताम् ॥ ५७ ॥
किमिहास्ति रहस्यमहं न तवस्थितिमीश्वर वेद्मि न गूढगतिम्।
अतिसूक्ष्मविशालतमस्य विभो करवाणि कथं भवतोऽपचितिम् ॥ ५८ ॥

कैलास शैलशिखरे त्रिजगज्जनित्रीं गौरीं निवेश्य
मणिकांचनरत्नपीठे। नृत्यं विधातुमभिवांछति शूल—
पाणिर्देवाः प्रदोषसमये तमनुव्रजन्ति ॥

करताल घण्टा आदि घनवाद्य हैं, बांसुरी शहनाई आदि वंशवाद्य हैं और सरोद वीणा सितार सारंगी आदि तत या तन्तुवाद्य है। आप के यहां ये तीनों और मृदंग आदि वाद्य मनोहर सुस्वर स्वरों एवं द्रुत, मध्य, विलम्बित तीनों लयों में बजते हैं और डमरुध्वनि से संगत ताण्डव नृत्य होता है ॥ ५४ ॥ उस समय वसु किन्नर गुह्यक यक्ष तुषित अनिल भास्वर आदि देवगण, रिटि नन्दिक तुण्डिक भृंगी आदि आप के गण, अनेक सिद्ध साध्य और निष्पाप नर आप को घेर कर स्तोत्रपाठ करने लगते हैं ॥ ५५ ॥

आप हरिण सिंह सियार बिडाल भेड़िया सांप मूषक शुक मयूर खरगोश गाय गज वृष हंस कोकिल आदि से भी घिर जाते हैं ॥ ५६ ॥ इनमें से अनेक का स्वभाव एक दूसरे के विपरीत है पर यहां सहवास है और आपस में अतिशय प्रीति है। हे प्रभो! मैं जान गया कि शत्रुओं की इस मित्रता का हेतु आप के संग से उत्पन्न सत्त्व गुण का उदय है ॥ ५७ ॥

हे नाथ! इसके रहस्य को, आप की स्थिति और गति को वस्तुतः मैं नहीं जानता। आप कहीं अतिसूक्ष्म हैं तो कहीं अति विशाल हैं तो मैं पूजा कैसे करुं ॥ ५८ ॥

चरकादय औषधयोगविदो बुधवाग्भटसुश्रुतवद्भिषजः।
रचितं भवताद्भुतदेहमिमं न विदुर्न च सम्यगशेषरुजः॥ ५९ ॥
शुकनारदसूतमुखा मुनयः कपिलात्रिकणादपतंजलयः।
रचनां न विदुर्ग्रहदैवविदो भृगुगर्गपराशरजैमिनयः॥ ६० ॥
अतिमन्दमतिस्तनवानि कथं तवरूपचरित्रगुणस्तवनम्।
अवतामवनं पवतां पवनं शिवनाम गृणामि मुदो भवनम्॥ ६१ ॥
भवतार्पितकान्तिसुगन्धगुणैर्युतपुष्पवनौषधिवृक्षलताः।
पशुपक्ष्युरगान् जलजान् रुचिराम्ररदेवगणान् पुरुषान् वनिताः॥ ६२ ॥
जलवायुनभस्तडिदिन्द्रधनुर्घनशैलमरूर्वरभूसरितः।
चकितोऽस्मि विलोक्य समुद्रततिं विपिनानि फलान्नचयं परितः॥ ६३ ॥

चरकादि मुनि वैद्य, योगी और शास्त्रज्ञ, तीनों थे। सुश्रुत वाग्भट आदि विद्वानों और वैद्यों की भी यही स्थिति थी पर वे आप द्वारा रचित इस अद्भुत शरीर को और सारे रोगों के रहस्य को सम्यक् (भली भांति) नहीं जान सके॥ ५९ ॥

शुक नारद व्यास सूत कपिल अत्रि कणाद पतंजलि आदि महामुनि तथा भृगु गर्ग पराशर जैमिनि आदि ग्रहवेत्ता और भाग्यवेत्ता भी आप के रचित विश्व और उसमें स्थित ग्रहादिकों का पूर्ण रहस्य नहीं जान सके॥ ६० ॥

तो फिर मैं अति मन्दमति आप के रूप, चरित्र और गुणों का विस्तृत वर्णन एवं स्तोत्रपाठ कैसे करूं। बस, आप के उस शिव नाम का केवल जप करता हूं जिसका प्रभाव मैंने योगियों में देखा है। वह रक्षकों का रक्षक है, पावनों को भी पवित्र करता है और प्रमोद का भवन है॥ ६१ ॥

मैं आप द्वारा रचित और अर्पित अनेक वस्तुओं को देख कर चकित हो जाता हूं। इन्हें आप के अतिरिक्त दूसरा नहीं बना सकता। ये हैं अनेक जड़ चेतन वस्तुओं की कान्ति, प्रभा, इन्द्रियों के आश्चर्य.जनक गुण, मानस की अपार शक्ति, विभिन्न सुगन्धों और गुणों से युत पुष्प, औषधियां, लतायें, नाना प्रकार के वृक्ष, सुन्दर पशु पक्षी सांप, जल में रहने वाले विचित्र जीव, नर नारी की विचित्र देह-रचना अनेक सूक्ष्म देव॥ ६२ ॥

जल, वायु, आकाश, बिजली, इन्द्रधनुष मेघ, पर्वत, मरुभूमि, उर्वरा, भूमि, नदियां, विस्तृत सागर, विशाल वन, नाना प्रकार के फल और अन्न आदि॥ ६३ ॥

न हि सन्ति तवोज्वलदीप्तिसमा दिवि सूर्यसहस्रभवा अपि भाः।
न तु चर्मदृशास्ति न दिव्यदृशा नरशक्तिरवेक्षितुमिद्धविभाः ॥ ६४ ॥
तपनादिखगारुणधूमशिखाः स्ववहा ध्रुवसप्तमहर्षिगणाः।
मृगलुब्धककुंभजविष्णुपदीबहुपुच्छलदास्रमुखा भगणाः ॥ ६५ ॥
नियमेन निजाध्वनि खे क्रमशो विचरन्ति कदापि न यन्ति रणम्।
परियन्ति वसन्तशरच्छिशिरा रजनीदिवसौ कुरुतो भ्रमणम् ॥ ६६ ॥
सचराचरविश्वनियामक हे हरिकेश न ते स्मरणं सुकरम्।
मनसा मनुतेऽणुतमो न भवानत ईश भजे शिवरुद्रनरम् ॥ ६७ ॥
असि शंकर जातु भयंकरवद् द्विविधोऽपि ममास्यविता सविता।
कुपितोऽप्यपराधपरे तनये मनसास्ति हितावह एव पिता ॥ ६८ ॥

हे प्रभो! प्रत्येक तारा हमारे सूर्य से लाखों गुना बड़ा और प्रकाशवान् है तथा आकाश में तारे अगणित हैं अतः निश्चित है कि आकाश में सहस्रों सूर्यों से उत्पन्न भायें (प्रकाश) आप की दीप्ति के एक अंश के समान नहीं हो सकतीं। मानव में उन्हें देखने की शक्ति नहीं है। वह उन्हें न तो चर्मचक्षु से देख सकता है, न दिव्य दृष्टि से ॥ ६४ ॥

आश्चर्य है, तपन (सूर्य) आदि ग्रह, अरुण मण्डल, अनेक धूमकेतु, स्वयंवह आवह आदि वायु, ध्रुव, सप्तर्षि, मृगव्याध, अगस्त्य, आकाशगंगा, अनेक पुच्छल तारे और दास्र (अश्विनी) आदि नक्षत्रों के समूह ॥ ६५ ॥ प्रतिक्षण नियम से आकाश में अपने मार्ग में घूम रहे हैं पर कभी युद्ध नहीं करते, आपस में टकराते नहीं। वसन्त, शरद्, शिशिर आदि ऋतुयें तथा दिन और रात नियम पूर्वक आते रहते हैं ॥ ६६ ॥ हे प्रभो! हरि (दिशायें) ही आप के केश हैं, आप दिगम्बर हैं और विश्व के सब चरों अचरों के सूक्ष्म नियामक हैं अतः आप का स्मरण मेरे लिये सुकर नहीं है। आप अणुतम (अति सूक्ष्म) हैं, मन की पकड़ में नहीं आते। इसलिये मैं आप के नरदेह धारी दो रूपों का स्मरण करता हूं। एकशिव है, सौम्य है, मांगलिक है, सुन्दर है और दूसरा वह रुद्र है जिसे आप मूक आदि दानवों के वध के समय धारण करते हैं ॥ ६७ ॥

हे शंकर! आप कभी-कभी भयंकर हो जाते हैं किन्तु दोनों स्थितियों में हमारे अविता (रक्षक) और सविता (उत्पादक, पिता) हैं। अपराधी तनय पर कुपित होने की स्थिति में भी पिता मन से हितचिन्तक ही रहता है ॥ ६८ ॥

सयमे नियमे निरता विरता बहवो यतयो हृदयाब्जशयम् ।
गुणरूपविहीनमणुं मनसा प्रजपन्त्यपवर्गदमृत्युजयम् ॥ ६९ ॥
सुरलोकफलप्रदयज्ञपरा हविषाभ्युदयाय यजन्ति च यम् ।
अतिसात्त्विकरूपशिवं गृहिणं सुकृतेन निजेन यजे तमहम् ॥ ७० ॥
मनसो वचसो वपुषोऽघरुजां शमनं प्रणमामि महाभिषजम् ।
अखिलेशमपि द्विभुजं मनुजं जनपुष्टिविवर्धनमीशमजम् ॥ ७१ ॥
रघुनाथपदाम्बुजपादुकयोर्विनिवेद्य समं सरलो भरतः ।
व्यथितो नयतोऽखिलराज्यभरं समुवाह कृती प्रतिमानरतः ॥ ७२ ॥
अगदीदनयोर्बलतो भविता नगरीबलराष्ट्रसुहृत्कुशलम् ।
मनुते स्म तथापि भृशं विफलं प्रभुरामविहीनमिदं सकलम् ॥ ७३ ॥
अशने वसने मुनिरामसमो नृपराममना अजपत् प्रयतः ।
द्रुतमेहि दयाघन राम परात्पर राम विहाय कुतोऽसि गतः ॥ ७४ ॥

यम, नियम आदि योग के अंगों में निरत अनेक विरक्त यति अपवर्ग (मोक्ष) की अभिलाषा से मन से उन ईश्वर को जपते हैं, जो हृदय कमल में स्थित हैं, गुण और रूप से हीन हैं, सूक्ष्म हैं और मृत्युंजय हैं ॥ ६९ ॥

इस लोक में अभ्युदय और मरने पर स्वर्गसुख पाने के लिये याजक गण आप की पूजा आहुतियों से करते हैं, पर मैं आप के अति सात्त्विक गृहस्थ रूपधारी साम्बशिव की पूजा अपने सुकर्मों से करता हूं ॥ ७० ॥ हे नाथ! आप मन, वचन और शरीर के पापों तथा रोगों का शमन करने वाले वैद्यनाथ हैं। मैं आप के उस रूप को प्रणाम कर रहा हूं जो अखिलेश (विश्वनाथ) और अज हो कर भी दो भुजाओं वाला मानव है और अपने भक्तों की हर प्रकार की पुष्टि का संवर्धन करता है ॥ ७१ ॥ सरल और कृती (कुशल) भरत ने पूरे राज्य का भार श्रीराम के पदपद्म की पादुकाओं को समर्पित कर दिया। उन्हें राजसिंहासन पर रख दिया और वे हृदय से व्यथित होते हुये भी खड़ावूं में रत होकर नय (न्याय) पूर्वक राज्य भार संभालते रहे ॥ ७२ ॥ उन्होंने सबसे कह दिया कि इस प्रतिमान के बल से मेरी नगरी, सेना, राष्ट्र और मित्रों का सदा कल्याण होगा किन्तु प्रभु राम के अभाव में उन्हें सब कुछ अति निष्फल प्रतीत हो रहा था ॥ ७३ ॥

उनका भोजन और वस्त्र वनवासी मुनि राम के समान था पर मन राजाराम को जपा करता था और वे अति संयमित थे। दिन रात यह रटा करते थे कि हे

द्रवितः स ससीत उदारमना भगवान् कृतवान् करुणां भरते ।
मयि सोम तथैव कुरुष्व दयां विगुणेऽप्यनिशं तव पादरते ॥ ७५ ॥
सवितः समुदेहि मनोगगने मलिने तमसा रजसा महता ।
कुरु नाथ तथैव यथा भवता विहितं त्रिपुरं मदनं दहता ॥ ७६ ॥
अनुभूतमिदं शकुनग्रहभादिफलेषु भये न ममास्ति हितम् ।
मतिदुर्बलतावगताऽत्र मया जनतारक तारय पादनतम् ॥ ७७ ॥
स्थितमीश नमामि पुनर्निखिले खगदिग्भचये च पदे समये ।
उदिते क्वचिदेव ममास्तु रतिर्विषपानपरे त्रिजगन्निलये ॥ ७८ ॥

दयाघन परात्पर राम! शीघ्र आयें। आप मुझे छोड़ क्यों और कहां चले गये ॥ ७४ ॥ उदारचित्त राम भरत की इस हार्दिक प्रार्थना को जान द्रवित हो गये और एक क्षण का विलम्ब किये विना ठीक समय पर सीता के साथ अयोध्या आ गये। हे उमाशंकर! मैं गुणविहीन होने पर भी मन से आप के चरणों में रत हूं। मुझ पर राम की ही भांति कृपा कर दें ॥ ७५ ॥ हे सवितृ देव! मेरा मनोगगन सचमुच महान् तम और रज से मलिन है। कृपया उसमें स्थित आप उदित हो जायं। हे नाथ! आप इन दोनो को उसी प्रकार जला दें जैसे त्रिपुर और मदन को जलाया था ॥ ७६ ॥ हे प्रभो! मुझे इसका अनुभव प्राप्त हो गया है कि अनेक शकुनों, ग्रहों, नक्षत्रों, तिथियों आदि के फलों में जो भय बताये गये हैं वे काल्पनिक हैं और उन्हें मानने में हमारा हित नहीं है। भद्रा भरणी आदि अशुभ होते तो वेद में उनके शुभ नाम नहीं रखे जाते। मैंने जान लिया है कि यह भय हमारे मन की दुर्बलता है अतः हे तारकेश्वर! हमें इस सागर से पार कर दें। हम आप के चरणों में नत हैं ॥ ७७ ॥ हे ईश! मैं पुनः सारे ग्रहों, नक्षत्रों, दिशाओं, स्थानों और समयों में स्थित आप को प्रणाम कर रहा हूं। हां, आप कुछ ही स्थानों में उदित हैं। मेरी रति उन्हीं विश्वनाथ में हो जो भक्तों के संकटरूपी विष को पीते हैं ॥ ७८ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

परा (श्रेष्ठ) पूजा

बुधा आहुरीशानुकम्पां च शान्तिं यथाप्नोति ना ज्ञानशस्तक्रियाद्यैः ।
तथा नो मुहूर्तादिभिर्नैव तीर्थैर्न च स्नानपूजोपवासाध्वराद्यैः ॥ १ ॥
नृदेहे स्थिताः सन्ति पुर्यः सुराद्या अमीषां ततोऽन्वेषणात्रैव युक्ता ।
न युक्तार्थनार्चेश्वराणां बहूनां न चान्नोदकत्यागशिक्षोपयुक्ता ॥ २ ॥
विहायान्ननीरे हरिं भूतसंघं तनुस्थं मुधा ये हठात् पीडयन्ति ।
बुधास्तानहंकारपाखण्डयुक्तान् जडानासुरान् बालिशांश्च ब्रुवन्ति ॥ ३ ॥

बुधों का कथन है कि ना (मानव) ज्ञान एवं सत्कर्म आदि से जितनी शान्ति और ईश्वरकृपा पा लेता है उतनी मुहूर्त, लग्न, तीर्थयात्रा, स्नान, पूजा, उपवास और यज्ञ आदि से नहीं पाता ॥ १ ॥ सारी पुरियां, देव, और ग्रह आदि हमारे शरीर में स्थित हैं अतः इनका अन्वेषण इसी में योगमार्ग से करना चाहिये। हमें न तो अन्न जल के त्याग से ईश्वर प्राप्ति की शिक्षा देनी चाहिये, न अनेक ईश्वर मान कर उनकी अति प्रार्थना और पुष्पादि से पूजा करनी चाहिये। हमारे यहां कोई शिव को, कोई विष्णु को, कोई राम को और कोई कृष्ण, गणेश, दुर्गा आदि को ईश्वर एवं शेष को उनका पुत्र, दास आदि कहता है। अनेक देवों से दिन भर कुछ न कुछ मांगता रहता है और उनकी प्रशंसा करता है। वेदों में यह प्रार्थना है कि हे शिव, हे देवो! हमें यव, गेहूं, तिल, मूंग आदि अन्न, सुख, गौ, अश्व, सुदिन, पुत्र, विजय, शत्रुनाश आदि दें। शिव, राम, दुर्गा, हनुमान् आदि के कवचों में लम्बी प्रार्थना है कि हमारे नाक, कान, दांत, सिर, बाहु, उदर जांघ, मांस, चर्म, अस्थि, गोत्र, पशु आदि की रक्षा करें और हमें सुन्दर रूप, मनोरमा पत्नी, आज्ञाकारिणी भार्या, अनेक पुत्र, यश, धन, विजय आदि दें। वस्तुतः इतनी लम्बी याचना उपयुक्त नहीं है ॥ २ ॥

तदेव लग्नं सुदिनं तदेव लक्ष्मीपते तेंऽघ्रियुगं स्मरामि ।
क्रियते गंगासागरगमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम् ॥
ज्ञानविहीनं सर्वमनेन मुक्तिर्न भवति जन्मशतेन ।

कुतृट्चौर्यहिंसाव्यवायानृतानां परित्याग उक्तो यमो योगविज्ञैः ।
प्रयुक्ता यमाः सर्वदा सर्वदेशे निरुक्ता महान्ति व्रतान्यागमज्ञैः ४ ॥

तनुं त्यजतु वा काश्यां श्वपचस्य गृहेऽथवा । ज्ञानसम्प्राप्ति–
समये मुक्तोऽसौ विगताशयः (आदिशंकराचार्य) ॥
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ।
न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥
नात्यश्नतस्तु योगोस्ति न चैकान्तमनश्नतः (गीता) ॥

योगीश्वरों का कथन है कि जिन भक्तों की श्रद्धा मूढ़तापूर्ण पकड़ से दूषित है, जो अन्नजल का परित्याग कर व्रत और उपवास के नाम पर शरीर में स्थित पृथ्वी जल आदि पांच महाभूतों को तथा हरि को पीड़ित करते हैं वे बुद्धिहीन हैं, अहंकारी और पाखण्डी हैं और निश्चित रूप से आसुर हृदय वाले मन्द हैं ॥ ३ ॥

युक्तहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ६।१७ ॥
अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दंभाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः १७।५ ॥
कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान् विद्ध्यासुरनिश्चयान् १७।६ ॥
मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् १७।१९ (गीता)॥
एकभुक्तोपवासाद्यैर्नियमैः कायशोषणैः ।
मूढा विमुक्तिमिच्छन्ति हरिमायाविमोहिताः ॥
देहदण्डनमात्रेण का मुक्तिरविवेकिनाम् ।
वल्मीकताडनादेव मृतः कुत्र महोरगः (गरुडपुराण) ॥
अन्नं प्राणस्तथापानं मृत्युर्जीवितमेव च ।
अन्नं ब्रह्म च विज्ञेयं (वायुपुराण १५।११) ॥
अन्नं पुष्टिकरं तत्र ममाप्यव्याहतं सुखम् ।
अन्नं बलाय मे भूमेः (विष्णुपुराण ११।९१) ॥

विहायान्ननीरे हृदा ते स्मरन्तः प्रकुर्वन्त्यतोऽमी व्रतस्योपहासम् ।
तदेवोपवासं विदन्तश्च मोहान्न कुर्वन्ति देवेशसाधूपवासम् ॥ ५ ॥
इमे मन्वते साधनान्येव साध्यान् जटाद्यैरनायासमिच्छन्ति सिद्धिम् ।
मनःक्लिष्टवृत्तेर्निरोधाद्विरागान्न चाभ्यासतः कुर्वते हृद्विशुद्धिम् ॥ ६ ॥
क्वचिद्दण्डकौपीनमात्रेण बोधं विना सन्ति नारायणास्ते विजाताः ।
जरद्देहवन्तोऽप्यमुंचन्न कोपं न लोभं न हर्म्यादि सन्तोऽभिजाताः ॥ ७ ॥

योगशास्त्र के अभिज्ञों ने कुतृष्णा, चोरी, हिंसा, अशास्त्रीय संभोग और असत्य के परित्याग को यम कहा है। आगम और योगशास्त्र के विशेषज्ञों का कथन है कि इन यमों का हर जाति, हर देश, प्रत्येक काल और प्रत्येक समय (अवसर) में पालन करने पर ये महाव्रत हो जाते हैं। सारांश यह कि यम ही व्रत हैं ॥ ४ ॥

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः २।३० ॥
जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् २।३१ ॥ पातजल योगशास्त्र

ये अन्न और जल तो छोड़ देते हैं पर हृदय से उन दोनों का स्मरण करते रहते हैं। यह व्रत का उपहास है। मोहवश इसी व्रत को उपवास भी मानते हैं और यह भूल जाते हैं कि उपवास है देवों के,परमात्मा के और साधुओं के उप (समीप) में वास करना। गीता में कृष्ण भगवान् का कथन है कि जो मनुष्य कर्मेन्द्रियों को संयमित कर मन से विषयों का स्मरण करता रहता है वह मिथ्याचारी है ॥ ५ ॥

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥

हे प्रभो! ये लोग साधनों को ही साध्य मान रहे हैं। जटा, माला, स्नान आदि से प्रयास के विना सिद्धियां प्राप्त करना चाहते हैं। मन की क्लिष्ट (दूषित) वृत्तियों के निरोध से, विराग से, अभ्यास से अपने हृदय को विशुद्ध नहीं करते। ये अपने को जाने विना ईश्वर को पाना चाहते हैं ॥ ६ ॥

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः । वृत्तयः क्लिष्टाक्लिष्टाः । अभ्यास-
वैराग्याभ्यां तन्निरोधः । तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानं (योगशास्त्र) ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते (गीता) ।

हमारे यहां कुछ संन्यासी बोध प्राप्त किये बिना, मन को रंगे विना, मन शरीर और वाणी को दण्डित किये विना केवल दण्ड और कौपीन के धारण मात्र से

विरागाच्चिराभ्यासतो यं लभन्ते यतीशाः कदाचित् प्रभुं तत्प्रकाशम् ।
सकृन्नामभी रामनारायणादेस्तमाप्याशु कुर्वन्ति तेऽघाद्रिनाशम् ॥ ८ ॥
उषित्वा चिरं दैवविद्वृन्दपादे मठे मन्दिरे नैकतीर्थे भ्रमित्वा ।
हताशोऽधुनात्रागतोऽहं पदे ते प्रभो त्वां मृडं चाशुतोषं विदित्वा ॥ ९ ॥
विलोक्य प्रभूतानबोधेन निघ्नान् स्मयेन प्रभून् मत्सरेणाप्तविद्यान् ।
निराशोऽस्मि विद्वद्वरांस्तीक्ष्णबुद्धीनवेक्ष्याधुना दुष्प्रथासिन्धुमग्नान् ॥ १० ॥
यतीशेज्यकृष्णस्य रामस्य शिक्षाः शुभाः सन्ति मग्नाः कथाब्धावपारे ।
विलुप्ता मनुव्यासवाल्मीकिवाचः सुगाथाश्च शंभोः कुकाव्यान्धकारे ॥ ११ ॥

नारायण हो गये हैं। हमारे अभिजात (मान्य) सन्तों और संन्यासियों ने शरीर के जर्जर हो जाने पर भी अभी क्रोध, लोभ और भव्य भवनों का त्याग नहीं किया है ॥ ७ ॥

दण्डग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत् ।

विषयों में विराग से और यमों नियमों के चिरकालीन अभ्यास से बड़े बड़े योगीश्वर जिन प्रभु को और उनके दिये प्रकाश को कभी कभी पाते हैं उन दोनों को यहां श्रद्धा के विना सकृत् (केवल एक बार) राम, नारायण आदि कह देने पर लोग अघों के सागर को सुखा देते हैं ॥ ८ ॥

हे प्रभो! मैं ऐसे लोगों के और अनेक ज्योतिषियों के चरणों में तथा अनेक मठों, मन्दिरों और तीर्थों में भ्रमण करने के बाद हताश हो कर अब आप के चरणों में यह जानकर आया हूं कि आप मृड (सुखद) और आशुतोष हैं ॥ ९ ॥

मैं ने देखा कि अनेक लोग अबोध से, धनी अहंकार से और विद्वान ईर्ष्या से आहत हैं। मैं यह देख कर हताश हूं कि अनेक मेधावी विद्वान् इस समय कुरूढ़ियों के सागर में डूब रहे हैं ॥ १० ॥

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः । अबोधोप-
हताश्चान्ये जीर्णमंगे सुभाषितम् (योगिराज भर्तृहरि) ॥

यतीशों के पूज्य भगवान् राम और कृष्ण की शुभ शिक्षायें अपार कथासागर में डूब गई है, मनु व्यास वाल्मीकि आदि की वास्तव वाणियों का बहुत बड़ा भाग लुप्त हो गया है, उनमें अनेक प्रक्षेप आ गये हैं और आप की सुगाथायें कुकाव्य के अन्धकार में अदृश्य हो गई हैं ॥ ११ ॥

शिवो याति नग्नो विवाहे पिशाचैः समं भीमरावैः शरीरैर्विशालैः ।
गणैः शोणितार्द्रैश्च तुण्डे समानैः खरैः सूकरैः कुक्कुराद्यैः शृगालैः ॥ १२ ॥
समालोक्य सेनां वरं बालवृद्धा विभीता रुदत्यो रमण्यः प्रणष्टाः ।
ददुर्लिंगपातस्य शापं च पश्चान्महेशाय विप्रा अभीकाय रुष्टाः ॥ १३ ॥
सभास्थस्य शंभोः शिरस्यस्ति गंगा नदी स्त्री च वामांकगास्त्यद्रिकन्या ।
स दृष्ट्वा हरिं मोहिनीं कीशतातो बभूवांजना तेन पुत्रेण धन्या ॥ १४ ॥

आज की शिवकथा में आप अपने विवाह के दिन ससुराल में उन पिशाचों और गणों के साथ जाते हैं जिनके उच्च शब्द भीषण हैं, शरीर विशाल हैं, मुख गधे सूअर कुत्ते सियार आदि के समान हैं, किसी को मुख है ही नहीं, किसी को अनेक मुख हैं और सबके शरीर ताज़े रक्त से लथपथ हैं। ॥ १२ ॥

खरश्वान सुअर शृगालमुख सब सद्य शोणित तन भरे ।
कोउ मुखहीन विपुल मुख काहू । नगन जटिल भयंकरा ।

लिखा है कि वर और बारात की भीषणता देख कर बाल वृद्ध युवक अतिशय भयभीत होकर भागे और रोती हुई नारियां भी घरों में छिप गईं। विवाह के बाद आप ने ऐसा घृणित कर्म किया किं रुष्ट सप्तर्षियों ने क़ामी आप के लिंगपात का शाप दे दिया। अब्र उसी की पूजा होती है जब कि पुराणों में लिखा है कि हिमाचल पुरी के नर नारी प्रसन्न होकर कहने लगे कि हमने ऐसा सुन्दर वर न सुना है न देखा है। आज हम सब धन्य हो गये हैं और हमारा जन्म सार्थक हो गया है। (देखिये मेरा उमोद्वाहमहाकाव्य) ॥ १३ ॥

न श्रुतो वर इत्येवं नास्माकं दृष्टिगोचरः ।
वयं धन्याः स्त्रियः सर्वाः पुरुषाः सकला अपि ।
ये ये पश्यन्त्यदो रूपं तेषां वै सार्थक जनुः ॥

सभा में बैठे मानव शिव के सिर पर एक पत्नी गंगा बैठी है। वह नारी है और नदी भी। गोद में बाईं ओर वे पार्वती बैठी हैं जो मानवी होकर भी पर्वत की कन्या हैं। समुद्रमंथन के समय हरि ने मोहिनी नारी बन कर दैत्यों को छला था। आप ने उसे देखा तो वीर्यपात हो गया और वह बहुत दिनों बाद अंजना के कान में डाला गया तो उससे वानर हनुमान् पैदा हो गया। जबकि न तो उसके पिता आप वानर थे न उसकी माता अंजना वानरी थी ॥ १४ ॥

कथावाचका दैवविज्ञाः प्रथान्धा भृशं कुर्वते भुक्तये वाग्विलासम् ।
उपेक्ष्यार्यविज्ञानयोगानुभूतिं जगच्छंकरं सत्यशोधप्रयासम् ॥ १५ ॥
भ्रमन्तः स्वयं भ्रामयन्ति प्रथायां पुरा कल्पितं विद्यते पुस्तके यत् ।
शिवं चाशिवं संभवासंभवं वा शुभं वर्तते सर्वमेषां मते तत् ॥ १६ ॥
व्रतस्योपहासं प्रकुर्वन्ति हित्वा यमान् संयमादींश्च कृत्वोपवासम् ।
अहिंसार्जवास्तेयतुष्टिक्षमाभिर्विधातुः सतां कुर्वते नोपवासम् ॥ १७ ॥
जटाभस्ममालोर्ध्वपुण्ड्रैश्च दण्डैरनायसमिच्छन्ति सिद्धिं प्रसिद्धिम् ।
न वांछन्ति वैराग्यतो ऽभ्यासतस्ते कुवृत्तिक्षयं चित्तशुद्धिं सुबुद्धिम् ॥ १८ ॥
अबोधेऽपि संन्यासतीर्थे प्रशंसन् परं तीर्थमुज्झित्य लोकोपकारम् ।
प्रतन्वन्ति तेनैव सृष्टैः पदार्थैर्विधेर्विश्वनाथस्य पूजोपचारम् ॥ १९ ॥

इन कथाओं के वे रूढ़िवादी लेखक वाचक और ज्योतिषी लौकिक भोगों की प्राप्ति के लिये लम्बा वाग्विलास करते हैं। उन्होंने संसार के कल्याणकारी श्रेष्ठविज्ञान, योगानुभव और सत्य की खोज के प्रयास की उपेक्षा कर दी है ॥ १५ ॥

वे स्वयं भ्रम में हैं और दूसरों को प्रथाओं में भरमा रहे हैं। उनकी पुरानी पुस्तकों में जो कल्पित सिद्धान्त लिख दिये गये वे शुभ हों या अशुभ हों, संभव हों या असंभव हों, इनके मत में सब ठीक हैं ॥ १६ ॥

ये अन्नजल का परित्याग कर उपवास करते हैं तथा अहिंसा, सत्य आदि यमों और धारणा ध्यान समाधि आदि संयमों का परित्याग कर व्रत का उपहास करते हैं। ऐसा नहीं करते कि अहिंसक, विनम्र, अचोर, सन्तुष्ट क्षमाशील आदि बन कर विधाता और सन्तों के उप (समीप) में वास करें॥ १७॥

ये आयास (साधना, परिश्रम) किये विना केवल जटा, भस्म, माला, ऊर्ध्वपुण्ड्र, त्रिपुण्ड, दण्ड, रंगीन वस्त्र आदि धारण कर अष्ट सिद्धि और प्रसिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं। योगशास्त्र कहता है कि सिद्धियां चाहते हो तो वैराग्य और अभ्यास द्वारा मन की दूषित वृत्तियों का नाश करो। चित्त को शुद्ध और बुद्धि को निर्मल बनावो पर इन्हें यह श्रम अवांछित है ॥ १८ ॥

इनके मत में बोध के अभाव में भी संन्यास और तीर्थयात्रा से सब कुछ मिल जाता है। इन्होंने सबसे बड़ा तीर्थ लोकोपकार त्याग दिया है। विश्वनाथ ने जो पदार्थ बनाये हैं उनको ही देकर ये पूजा के अनेक उपचार करते हैं ॥ १९ ॥

अशास्त्रीयघोरं तपश्चाश्रितास्ते वपुष्पीडनेनैव सिद्धिं विदन्तः ।
विधायात्महिंसां प्रयागे लभन्ते न मुक्तिं शिवं देहगं कर्षयन्तः ॥ २० ॥
विना भौतिकज्ञानमध्यात्मविद्यां विना कौशलं कर्मसु ज्ञानयोगम् ।
अमी प्राप्तुमिच्छन्ति बाह्योपचारैरनायासमानन्दमीशं मनोगम् ॥ २१ ॥
मते योगिनां सन्ति पापैर्विभीता अजातारयो ये सदाचारवन्तः ।
प्रपश्यन्ति दासानपि भ्रातृदृष्ट्या त एव प्रियास्ते नरा भाग्यवन्तः ॥ २२ ॥
गुरुप्राज्ञदेवान् रतान् लोकभद्रे समर्चन्ति भक्त्या समाजप्रिया ये ।
परित्यज्य जातिस्वदेशादिभेदान् मते मे प्रियास्ते प्रभो सत्क्रियास्ते ॥ २३ ॥
पशून् पक्षिणो रोगिणश्चासहायान् नरान्निम्नवार्तान् निषादान् श्वपाकान् ।
प्रपश्यन्ति दासानपि स्नेहदृष्ट्या स्वबन्धून् विजानन्त्यधीरान् वराकान् ॥ २४ ॥
समं वारि तेषां कृते गांगमंभो गमस्तीर्थयात्रास्ति निद्रा समाधिः ।
गिरो वेदवाक्यानि वाराणसी भूर्जयो हृज्जयः क्वापि नोपाधिराधिः ॥ २५ ॥

इन्हें इस बात का भी दृढ़ विश्वास है कि अन्न जल छोड़ कर शरीर को पीड़ित करने से, सुखाने से सारी सिद्धियां मिल जाती हैं। ये स्वर्गादि उत्तम लोकों की प्राप्ति के लिये प्रयाग आदि तीर्थों में अनेक विधियों से आत्महत्या भी करते हैं। किन्तु शरीरस्थ आत्मा के पीड़क ये मुक्ति आदि नहीं पाते ॥ २० ॥

ये भौतिक ज्ञान की निन्दा करते हैं जबकि आप का नाम भूतनाथ है, आप हर भूत में बैठे हैं। ये अध्यात्मविद्या, ज्ञानयोग कर्ममें कुशलता और आयास के विना केवल बाह्य उपचारों द्वारा आनन्द और हृदयस्थ आप को पाना चाहते हैं ॥ २१ ॥ योगियों का कथन है कि जो भाग्यशाली मनुष्य पाप से डरते हैं, शत्रु से हीन हैं, सदाचारी हैं और अपने दासों में भी भ्रातृभावना रखते हैं वे ही आप के प्रिय हैं ॥ २२ ॥ हे प्रभो! मेरे मत में वे सदाचारी हैं और आप को प्रिय हैं जो समाज के प्रिय हैं, स्वजाति स्वदेश आदि के भेदभाव को भूलकर गुरुजनों, विद्वानों, देवों और लोककल्याण में लगे सज्जनों की सेवा करते हैं ॥ २३ ॥ जो पशुओं, पक्षियों, रोगियों, असहायों, निम्न वर्ण के निषादों, श्वपाकों, दासों, अधीरों और दरिद्रों को स्नेहदृष्टि से देखते हैं तथा उन्हें अपना बन्धु समझते हैं ॥ २४ ॥ उनके लिये सारे जल गंगाजल हैं, उनकी हर यात्रा तीर्थयात्रा है, निद्रा समाधि है, वाणी वेदवाक्य है, सारी धरती वाराणसी है, उनकी जितेन्द्रियता ही विजय है और उन्हें न कहीं आधि है न उपाधि है ॥ २५ ॥

जगन्नन्दनं काननं कल्पवृक्षाः समे पादपाः शर्म लाभः समेषाम् ।
धनं ज्ञानमेवाखिलं कर्म पूजा शिवोऽस्ति स्थितः सर्वभूतेषु तेषाम् ॥ २६ ॥
अमी कल्मषं ज्ञानतो भस्म कृत्वा स्वसत्कर्मभिर्विश्वनाथं भजन्तः ।
यशो मंगलं भूम्नि नाके लभन्ते त्वदीयाश्रयं सन्ततं भाग्यवन्तः ॥ २७ ॥
श्वपाकालये वा प्रयागे च काश्यां भवेद्देहदाहो नराणां मृतिर्वा ।
अभावे सदाचारविज्ञानयोस्तैः कदाप्याप्यते नो हरिः सद्गतिर्वा ॥ २८ ॥

उनके लिये सारा विश्व स्वर्ग का नन्दनवन है, सब वृक्ष कल्पवृक्ष हैं और सबका कल्याण अपना शर्म (कल्याण) है। ज्ञान ही उनका धन है, कर्म ही पूजा है और उनका शिव हर जीव में स्थित है ॥ २६ ॥

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च। सन्तुष्टः सततं
योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः ॥ यस्मान्नोद्विजते लोको
लोकान्नोद्विजते च यः । समः शत्रौ च मित्रे च यो मद्भक्तः
स मे प्रियः ॥ विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे
गवि हस्तिनि । शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः (गीता)
सम्पूर्णं जगदेव नन्दनवनं सर्वेपि कल्पद्रुमाः
गांगं वारि समस्तवारिनिवहाः पुण्याः समस्ताः क्रियाः ॥
संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरः
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः ॥
वाचः प्राकृतसंस्कृताः श्रुतिशिरो वाराणसी मेदिनी
यद्यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभो तवाराधनम् ॥

ऐसे भाग्यशाली लोग ज्ञान से सारे दोषों को भस्म कर अपने सत्कर्मों द्वारा विश्वनाथ का भजन करते हुये पृथ्वी पर मंगल और यश तथा स्वर्ग में सर्वदा आप का आश्रय पाते हैं ॥ २७ ॥

मनुष्य का मरण अथवा मरने पर शरीर का दाह श्वपच के घर में हो, या प्रयाग, काशी, अयोध्या आदि पुरियों में हो, सदाचार और विज्ञान के अभाव में उसे कभी भी हरि या सद्गति की प्राप्ति नहीं होती। दण्डग्रहण मात्र से या कहीं मरने से नर नारायण या निष्पाप नहीं हो जाता ॥ २८ ॥

विमुक्तिर्जनीनां शतैराप्यते नो प्रबोधं विना भूरिदानोपवासात् ।
न गंगादिकूलंकषासूदधौ वा मुहुः स्नानतो नो च तीर्थे निवासात् ॥ २९ ॥
श्रुतं योगिनः सन्तताभ्यासशीलाः शरीरस्थचेतःपुरीचक्रशोधात् ।
लभन्ते प्रबोधं च सिद्धीः प्रभूताः प्रभो चेतसः क्लिष्टवृत्तेर्निरोधात् ॥ ३० ॥
नराणां मनःसद्बलं चास्ति मुख्यं बलेभ्यः शरीरास्त्रशस्त्रादिकानाम् ।
युता आयुधैरप्यभावेऽस्यदासा भवन्त्यल्पधीवित्तविद्यायुधानाम् ॥ ३१ ॥
अतो मानसे सद्बलं देहि शंभो निरस्तं क्रिया मेऽन्धकारं विषादम् ।
सुमार्गे नयाश्वानिवाभीषुभिस्तद् यथा प्राप्नुयां त्वां च बोधप्रसादम् ॥ ३२ ॥
पदख्यातिभोगात्मजार्थेषु मुग्धं शिवं त्वामुपेक्ष्येन्द्रियार्थे जविष्ठम् ।
कृथा हे चिदानन्द चेतो मदीयं द्रुतं सात्त्विकं साधुसंकल्पनिष्ठम् ॥ ३३ ॥

मनुष्य बहुत दान उपवास आदि करे, गंगादि पवित्र नदियों और सागरों में बार बार नहाये और बहुत दिनों तक तीर्थवास करे तो भी ज्ञान और सदाचार के अभाव में सौ जन्मों में भी मुक्ति नहीं पाता ॥ २९ ॥

तनुं त्यजतु वा काश्यां श्वपचस्य गृहेऽथवा ।
ज्ञानसम्प्राप्तिसमये मुक्तोऽसौ विगताशयः ॥
क्रियते गंगासागरगमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम् ।
ज्ञानविहीनं सर्वमनेन मुक्तिर्न भवति जन्मशतेन (शंकराचार्य) ॥

हे प्रभो! मैं ने सुना है कि अभ्यास में सदा तत्पर योगी चित्त की कुवृत्तियों का निरोध कर शरीर में स्थित पुरियों एवं चक्रों का अन्वेषण करते हैं और तब प्रबोध एवं सिद्धियां पाते हैं ॥ ३० ॥ मनुष्यों के मन का सद्बल शरीर, अस्त्र, शस्त्र, धन, सेना आदि के बल से श्रेष्ठ है और उसके अभाव में वे आयुध आदि बलों से युत रहने पर भी अल्पबुद्धि, धन, विद्या और आयुध वालों के दास हो जाते हैं ॥ ३१ ॥ अतः हे शंभो! कृपया हमें सत् मनोबल दें और हमारे अज्ञान रूपी अन्धकार को और विषाद को दूर करें। उसे उसी प्रकार सुमार्ग में ले चले जैसे सारथी अश्वों को अभीषु (लगाम) द्वारा सुमार्ग में ले जाता है। ताकि हम आप को और प्रबोधजन्य प्रसाद (हर्ष) को पा सकें ॥ ३२ ॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वा-
जिन इव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं, ज्योतिषां ज्योतिः, यदपूर्वं
यक्षं, यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु, येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्

तमो ज्योतिषा चामृतैः सर्वमृत्युं गुणैर्दोषसंघं कृषीष्ठा दविष्ठम् ।
खलेभ्योऽतिदूरं नयस्वेति याचे कृपासागरं त्वां शिवं हृत्प्रतिष्ठम् ॥ ३४ ॥
अजानां न सन्देहदुस्तर्कमुग्धो भविष्यं न भूतं न च त्वाऽऽशुतोषम् ।
दयालोऽनुतापत्रपार्तं सदोषं शिवैतर्हि पाह्यात्मजं मुंच रोषम् ॥ ३५ ॥
अनादेरनन्तस्य का वा स्तुतिस्ते कृतीनां गुणानाममेया ततिस्ते ।
पुनीया मतिं विस्मृतिं नैव कुर्याः शिव त्वं गतिः स्यात् पदाब्जे रतिस्ते ॥ ३६ ॥
हृषीकेश हे श्रीपते विश्वमूर्ते हरे केशवो मूर्ध्नि गंगाधरस्त्वम् ।
महादेव दामोदरस्त्वं हरस्त्वं शिवः श्रीगलः श्रीघनः श्रीधरस्त्वम् ॥ ३७ ॥

परिगृहीतं, यस्मिन् ऋचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता
रथनाभाविवारास्तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु (यजुर्वेद) ॥

हे सच्चिदानन्द! उच्चपद, ख्याति, भोग, पुत्रपौत्र और धन आदि में मुग्ध मेरा मन आप शिव की उपेक्षा कर इन्द्रियों के अनेक विषयों की ओर दौड़ रहा है। कृपया इसे शीघ्र सात्त्विक और शुभसंकल्पवान् बना दें ॥ ३३ ॥ आप मेरे तम को ज्ञानज्योति से, सब मृत्युओं को कृपामृत से और सद्गुणों से दोषसंघ को दूर कर दें तथा मुझे खलों से दूर रखें। कृपा के सागर और हृदय में स्थित आप परमात्मा से मेरी यही प्रार्थना है ॥ ३४ ॥

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्मा अमृतं गमय (उपनिषत्) ॥

हे प्रभो! सन्देह और दुस्तर्क के जाल में फंस कर न तो मैं भूत भविष्य जान सका, न आप आशुतोष को, जब कि सब मेरे मन में प्रतिष्ठित हैं। मुझे तो आप की सत्ता में ही संशय होने लगा था पर हे दयालो! अब मैं पापी पश्चात्ताप और लज्जा से दुखी हूं। कृपया रोष का परित्याग कर अपने आत्मज की रक्षा करें (येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्) ॥ ३५ ॥

आप की कृतियों और गुणों का विस्तार अपरिमित है तो मैं आप अनादि अनन्त की स्तुति कैसे करूं। बस, एक आप ही गति हैं, आप के पदाब्ज में रति बनी रहे, यही अभिलाषा है ॥ ३६ ॥ हे हृषीकेश! आप ही श्रीपति, विश्वमूर्ति, हरि, केशव, गंगाधर, महादेव, दामोदर, हर, शिव, श्रीकण्ठ, श्रीघन (बुद्ध) और श्रीधर आदि सब कुछ हैं ॥ ३७ ॥

हिरण्याक्षपौलस्त्यकंसा मुराद्या हता विष्णुना पालकेनैव पापाः ।
अतो मारकादिप्रलापस्त्वयीशे शिवे सन्ति मोहोद्भवा विप्रलापाः ॥ ३८ ॥
उमायाः पतिं नौमि मायापतिन्त्वां नमो माधव श्रीपते शक्तिधाम्ने ।
नमो विष्णवे वेधसे शंभवे ते शिवायोरुलीलाकृते नैकनाम्ने ॥ ३९ ॥
विषाध्मातदेवासुरा धूतधैर्या वनेऽपासिताः पाण्डवा गूढचर्याः ।
समुद्वेजितास्तारकाद्यैरनेके पुरारे त्वया रक्षिता भक्तवर्याः ॥ ४० ॥
कथासाबरज्योतिषां मन्त्रशास्त्रस्वरायुर्धनुर्वेदसामुद्रिकाणाम् ।
त्वमाद्यो गुरुर्योगिनामिष्टदाता शिवो ज्ञानदो गीततन्त्रागमानाम् ॥ ४१ ॥
य उद्धर्तुकामः सनन्दादिसिद्धानकार्षीत् स्वढक्काखं नृत्यगानम् ।
विमर्शे ततो दिक्चतुःसूत्रजालं शिवोऽध्यात्मशब्दादिविद्यानिदानम् ॥ ४२ ॥

कुछ अज्ञानी विष्णु को सृष्टि का पालक और आप को संहारक कहते हैं किन्तु हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु मधु कैटभ मुर रावण कुंभकर्ण मेघनाद खर दूषण मारीच ताड़का कंस जरासन्ध शिशुपाल, धेनुक वत्सक आदि पापियों को विष्णु भगवान ने ही मारा अतः वह प्रलाप मोहजन्य है, वस्तुतः विप्रलाप (विरोध) है ॥ ३८ ॥ हे शिव! आप की लीलायें अनेक हैं, नाम अनेक हैं, रूप अनेक हैं पर आप एक हैं। मेरे लिये उमापति, मायापति, श्रीपति, माधव, विष्णु, ब्रह्मा और शंभु एक हैं। उन्हें प्रणाम है ॥ ३९ ॥

हे पुरारे! ये अज्ञानी आप को संहारक कहते समय यह भूल जाते हैं कि समुद्रमन्थन के समय जब सब देव और असुर विष की ज्वाला से सन्तप्त थे तब आप ने ही सबकी रक्षा की। घर से निकाले और वन में गुप्त वास करते हुये पाण्डवों को अस्त्र दे कर आप ने ही बचाया। अर्जुन के रथ पर आप के ही अंशावतार हनुमान् बैठे हैं। तारकासुर गजासुर अन्धकासुर आदि से पीड़ित भक्तों की आप ने ही रक्षा की है ॥ ४० ॥

हे शिव! कथा, इतिहास, साबरतन्त्र, सत्यज्योतिष, मन्त्र, स्वरशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, सामुद्रिक, गायन, वादन, नर्तन, तन्त्र और आगम आदि शास्त्रों के आप आदि गुरु और योगियों के इष्ट दाता है ॥ ४१ ॥

जिन्होंने सनकादि सिद्धों के उद्धार के लिये नृत्यगान करते हुये डमरू बजाया और उससे अध्यात्म शास्त्र, शब्द (व्याकरण) विद्या आदि के निदान चौदह सूत्र उत्पन्न किये ॥ ४२ ॥

व्यधाच्छब्दमात्रेण सिद्धिं मुनीनामहं सर्वविद्येश्वरं तं नमामि ।
गृणन् पूतनामानि वाचं पुनानः शिवं सर्वदेवात्मकं भावयामि ॥ ४३ ॥
बलेर्बोधदं वामनं त्वामुपेन्द्रं ससीतं भजे सानुजं राघवेन्द्रम् ।
रथे सांजनेयार्जुनं यादवेन्द्रं शिवं सोममीडेऽधिरूढ़ं गवेन्द्रम् ॥ ४४ ॥
न जानन्ति दीना अजो भूरिरूपस्त्वमेकोसि धर्मक्षये संभविष्णुः ।
पितेवागसि क्रोधनोऽपि क्षमावान् शिवत्वाच्छिवो व्यापकत्वाच्च विष्णुः ॥ ४५ ॥
अभद्रोदयास्ते न शान्तिं लभन्ते त्रिकालेऽपि नो चित्तशुद्धिं न सिद्धिम् ।
स्वपुण्यद्विषः कुर्वते मन्दभाग्याः शिवब्रह्मकृष्णेषु ये भेदबुद्धिम् ॥ ४६ ॥
यथा भाजनानां चये मृत्तिकैका यथा भूषणानां सुवर्णे न भेदः ।
तथा मर्त्यलीलापराणाममीषां शिवाजाच्युतानां न मूले विभेदः ॥ ४७ ॥

तथा केवल शब्द से मुनियों को अभीष्ट सिद्धियां दे दीं उन सब विद्याओं के स्वामी शिव के पवित्र नामों का उच्चारण करते हुये मैं अपनी वाणी पवित्र कर रहा हूं और उनके शरीर में सब देवों का वास मान रहा हूं ॥ ४३ ॥

नृत्यावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपंचवारम् ।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम् ॥

हे शिव! आप ने उपेन्द्र (विष्णु) वामन के रूप में राजा बलि को बोध दिया। सीता और लक्ष्मण के साथ वन में घूमने वाले श्री राम के शरीर में आप उदित हैं, अर्जुन के रथ में ऊपर आंजनेय हंनूमान और सामने यादवेन्द्र कृष्ण बैठे हैं। आप दोनों के शरीर में जागृत हैं। आप का एक सुन्दर रूप यह है कि उमा के साथ एक वृष पर बैठे हैं। मेरा सबको प्रणाम है ॥ ४४ ॥

हे प्रभो! कुछ दीन यह नहीं जानते कि आप अज और एक होकर भी धर्महानि के समय जन्मी और बहुरूपी हो जाते हैं। पुत्रों को आगस् (अपराध) करते देख पिता की भांति क्रोध करते हैं फिर भी क्षमाशील हैं। आप शिव (मांगलिक) होने से शिव और व्यापक होने से विष्णु कहे जाते हैं ॥ ४५ ॥ जो शिव, ब्रह्मा और कृष्ण (आकर्षक) विष्णु में भेदबुद्धि रखते हैं उनके दुर्दिन का उदय हो गया है। वे कभी भी शान्ति, चित्तशुद्धि और सिद्धि नहीं पा सकते। वे अपने पुण्य के शत्रु और भाग्यहीन हैं ॥ ४६ ॥ यदि तुम उन्हें तीन मानो तो भी जैसे अनेक पात्रों की मिट्टी एक है, अनेक आभूषणों का सोना एक है उसी प्रकार अनेक मानवलीला करने वाले शिव, ब्रह्मा और विष्णु एक हैं, तीन नहीं ॥ ४७ ॥

न कोऽप्यत्र सेव्यो न तत्सेवकोऽन्यः परो नावरस्ते मिथः सख्यभावाः ।
सुधीनां मते तत्र नो तारतम्यं शिवाद्याः सुरैरप्यचिन्त्यप्रभावाः ॥ ४८ ॥
विलापो विवाहो विवादोऽन्यपूजा रणो मित्रता लोकशिक्षार्थमेषाम् ।
सुतैर्वर्णनं कामभावस्य पित्रोः शिवान्ताय पापर्धये चास्ति तेषाम् ॥ ४९ ॥
अनेकत्वभावेऽपि सम्बन्धिनस्ते स्वसारं श्रियं विष्णवे पद्मजोऽदात् ।
शिवो भारतीं ब्रह्मणे शुक्लवर्णा शिवायादरात् कालिकां केशवोऽदात् ॥ ५० ॥
हिमाद्रेर्यतीशः स रुद्राक्षधारी स नागासनः शंखचक्राब्जधारी ।
क्वचिद्दण्डकारण्यभूभारहारी क्वचित् क्षीरसिन्धौ श्मशाने विहारी ॥ ५१ ॥
सवृन्दावने गोकुले नृत्यकारी महेशः क्वचिन्मूजवच्छैलचारी ।
स बुद्धो दयामूर्तिरार्तोपकारी शिवो दक्षबल्यादियागान्तकारी ॥ ५२ ॥

इनमें न तो कोई किसी का सेव्य (स्वामी) है, न दूसरे उसके सेवक या पुत्र आदि हैं। न कोई पर (बड़ा) है, न कोई अवर (छोटा) है। वे एक दूसरे के सखा हैं। विद्वानों के मत में उनमें तर, तम भाव नही है। सत्य यह है कि इन तीनों के चरित्र और प्रभाव इन्द्रादि देवों द्वारा भी अचिन्त्य हैं, अज्ञेय हैं क्योंकि ये परमेश्वर के अवतार हैं ॥ ४८ ॥ इनके विलाप, विवाह, विवाद, एक दूसरे की पूजा, रण मित्रता आदि कर्म लोकशिक्षा के लिये हुये हैं। जो वर्णन शिक्षाप्रद नहीं हैं वे कवियों की झूठी कल्पनाये है। इन्होंने शिव, राम, कृष्ण, विष्णु आदि की संभोगलीलाओं के जो वर्णन किये हैं वे उनके पापों के संवर्धक, और कल्याण के नाशक हैं। पुत्रों द्वारा माता पिता के कामभावों का वर्णन घोर पाप है ॥ ४९ ॥

यदि वे तीन हैं तो आपस में समान सम्बन्धी हैं। इनका तिनफेरवा विवाह हुआ है। पुराणों के अनुसार लाल ब्रह्मा ने अपनी लाल भगिनी रमा विष्णु को दी है। गोरे शिव ने अपनी गोरी भगिनी सरस्वती का विवाह ब्रह्मा से किया है और श्यामवर्ण केशव ने अपनी भगिनी कालिका शिव को दी है ॥ ५० ॥ हिमालय के यतीश शिव रुद्राक्षमाला पहनते हैं तथा विष्णु सांप पर सोते हैं और हाथों में शंख चक्र कमल गदा लिये रहते हैं (इसका सत्यार्थ पीछे लिखा है)। वे ही कभी राम रूप में दण्डकारण्य में जा कर भूभार उतारते हैं तो कभी क्षीरसागर और श्मशान में विहार करते हैं (ये आलंकारिक वर्णन हैं) ॥ ५१ ॥ शिव कभी वृन्दावन और गोकुल में तथा कभी मूजवान् पर्वत पर नाचते हैं। वे कभी दयामूर्ति, दीनबन्धु गौतम बुद्ध बन जाते हैं तो कभी दक्ष और बलि के यज्ञों का विरोध करते

स वैकुण्ठसाकेतगोलोकवासः स एवास्ति कैलासकेदारनाथः।
हरद्वारकाश्युज्जयिन्यादिगोऽयं शिवो भूभुवस्वर्गतो वैद्यनाथः॥ ५३॥
नमाम्यच्युतं गोपिकागोपगोपं हृषीकेश योगेश याचेऽवलम्बम्।
श्रुतौ मोहितानात्मजान् पाहि विष्णो शिवापन्नबन्धो न कुर्या विलम्बम्॥ ५४॥
प्रयच्छन्ति भक्ताः कृपात्यै जलं ते फलं विश्वनाथाय पुष्पासनाद्यम्।
सुलेपं च यज्ञोपवीतं सुधूपं सुजग्ध्यास्यशुद्धी धनं चाम्बराद्यम्॥ ५५॥
अहं किन्तु पूजाकृते त्वामखण्डं विभुं विश्वदेहं च नावाहयामि।
नभोद्योधरा:ारदेवाय तुभ्यं सहस्रांघ्रये चासनं नार्पयामि॥ ५६॥
खगंगाधरं निर्मलं वारिमूर्तिं न भूमिस्थदुर्वारिभिः स्नापयामि।
विहीनोऽसि वर्णेन गोत्रेण तस्मादहं ते न यज्ञोपवीतं ददामि॥ ५७॥

हैं॥ ५२॥ वे सर्वान्तर्यामी वैकुण्ठ, साकेत, गोलोक, कैलास, केदार, हरद्वार, काशी, उज्जयिनी आदि नगरियों के साथ साथ भूः भुवः स्वः लोकों के भी निवासी हैं। सर्वत्र हमारी रक्षा के लिये जाते हैं क्योंकि वैद्यनाथ हैं॥ ५३॥ मेरा उन अच्युत शिव को प्रणाम है जो हृषीकेश (सब इन्द्रियों के स्वामी) हैं, योगेश्वर हैं और कृष्णरूप में गोपों, गोपियों एवं गायों का पालन करते हैं। इन सबों ने पूर्वजन्म में घोर साधना की थी। उनसे हम अवलम्ब की याचना करते हैं और बार बार कहते हैं कि हे दीनबन्धो विष्णो! शिव! सुनी सुनाई बातों (श्रुति) में फंसे हम पुत्रों की रक्षा करें। अब इसमें विलम्ब न हो॥ ५४॥

कुछ भक्त आप को दूर से बुलाते हैं और आप की कृपा पाने के लिये आप विश्वनाथको जल, फूल, आसन, पुष्प, चन्दन, यज्ञोपवीत, धूप, दीप, सुजग्धि (भोजन) मुखशुद्धि (पान आदि), दक्षिणा और वस्त्र आदि देते हैं॥ ५५॥ किन्तु मैं जानता हूं कि आप विभु (सर्वव्यापक) और अखण्ड हैं। सारा विश्व आप का शरीर है अतः बुलाता नहीं क्योंकि आप सर्वत्र स्थित हैं। आप नभ, द्यो पृथ्वी तीनों लोकों के आधार हैं और सहस्रों हाथ पैर वाले हैं, अतः मेरे पास आप के बैठने योग्य आसन नहीं है॥ ५६॥ आकाशगंगा आप के सिर पर है और आप अष्टमूर्ति हैं। जल भी आप का शरीर है तो जल कैसे चढ़ावूं और भूमि के तो सारे जल समल हैं। आप निर्मल को वह कैसे दूं। वस्तुतः आप निर्मल को स्नान की आवश्यकता ही नहीं है। आप का न तो कोई वर्ण है न गोत्र तो यज्ञोपवीत कैसे चढ़ावूं॥ ५७॥

न विश्वोदरायाशनं वस्त्रमंभो न पित्रे खेर्दीपकं दर्शयामि ।
अवेद्यस्य वेदैः पठामि स्तवं नो सदान्तर्बहिःस्थं च नोद्वासयामि ॥ ५८ ॥
स्मरामीश तेजोमयं हृत्स्थितं त्वां स्वपुण्यात्मकं स्वासनं तेऽर्पयामि ।
शिवालापपाद्यं ददे शौचमर्घ्यं स्वभक्त्यापगावारिणा स्नापयामि ॥ ५९ ॥
स्वसन्तोषहार्दात्मकं पूतवस्त्रं सुसंकल्पयज्ञोपवीतं ददामि ।
प्रयच्छामि सद्वासनाचन्दनं ते मदत्यागजं धूपमाघ्रापयामि ॥ ६० ॥
स्तुतिध्यानलब्धामृतांभोऽशनं ते सदाचारपुष्पांजलिं चार्पयामि ।
ददे भक्तिनीराजनं च प्रदीपं मुदे सर्वगं सर्वदा त्वां स्मरामि ॥ ६१ ॥

सारा विश्व आप के उदर में है और आप सूर्य, चन्द्र, अग्नि के पिता हैं अतः मैं आप को वस्त्र देना खिलाना और दीप दिखाना अनुचित समझता हूं। जिन्हें वेद नहीं जान सके उनकी स्तुति पढ़ना और जो भीतर बाहर सर्वत्र बैठे हैं उनका विसर्जन करना भी मुझे अच्छा नहीं लगता ॥ ५८ ॥

पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम् ।
स्वच्छस्य पाद्यमर्घ्यं च शुद्धस्याचमनं कुतः ॥
निर्मलस्य कुतः स्नानं वस्त्रं विश्वोदरस्य च ।
अगोत्रस्य त्ववर्णस्य कुतस्तस्योपवीतकम् ॥
वेदवाचामवेद्यस्य किं वा स्तोत्रं विधीयते ।
अन्तर्बहिः संस्थितस्य चोद्वासनविधिः कुतः (आदिशंकराचार्य) ॥

हे ईश्वर! मैं आप के उस स्वरूप का स्मरण करता हूं जो मेरे हृदय में स्थित है और ज्योतिर्मय है। मैं उसे बैठने के लियें अपना पुण्य रूपी शुभ आसन दे रहा हूं, पाद्य के लिये शुभ वचन अर्पित कर रहा हूं, अर्घ्य में पवित्रता दे रहा हूं, और आप को अपनी भक्तिनदी के जल से नहला रहा हूं ॥ ५९ ॥

मेरा सन्तोष और प्रेम आप का पूत वस्त्र है, शिवसंकल्प यज्ञोपवीत है, शुभवासना चन्दन है और मद का त्याग ही धूप है ॥ ६० ॥

स्तुति और ध्यान से प्राप्त अमृत ही आप के लिये जल और भोजन है। मैं आप को अपने सदाचार की पुष्पांजलि और भक्ति का दीप एवं नीराजन (आरती) अर्पित कर रहा हूं तथा सर्वत्र स्थित आप का सर्वदा स्मरण करता हूं ॥ ६१ ॥

हरे राम कृष्णार्तिहन् हे मुरारे न पश्यामि गौरीश वर्त्मान्धकारे ।
महावीर हे मारजिद् गौतमार्हन् जिन त्राहि मग्नं भवाब्धावपारे ॥ ६२ ॥
गजारे हरायाहि शूलिन् पुरारे गजेन्द्रेश गोपाल देयाः प्रसादम् ।
मुहुर्नौमि नारायणं कैटभारे रमाकान्त देया न हेलावसादम् ॥ ६३ ॥
नमः शाक्यसिंहाय शौद्धोदने ते नमो धर्मराजाय ते लोकभर्त्रे ।
मुनीन्द्राय सर्वार्थसिद्धाय भद्रे प्रसक्ताय ते दुर्मखध्वंसकर्त्रे ॥ ६४ ॥
अघारे खरारे नमो दूषणारे प्रभो राम सीतापते रावणारे ।
नमः पूतनावत्सहन्त्रे गजारे शिव त्राहि दीनार्तनाथान्धकारे ॥ ६५ ॥
वहस्यच्युत क्षेमयोगं जनानां सुराणां पदं तेऽपवर्गं लभन्ते ।
समर्चन्ति सत्कर्मभिः स्वैर्हरे त्वां शिवं सुन्दरं सत्यनारायणं ये ॥ ६६ ॥

आराधयामि मणिसन्निभमात्मलिंगं मायापुरी हृदयपंकजसंनिविष्टम् ।
श्रद्धानदी विमलचित्तजलाभिषेकैर्नित्यं समाधिकुसुमैरपुनर्भवाय ॥

आसनं कल्पयेत् पश्चात् स्वप्रतिष्ठात्मचिन्तनम् ।
ब्रह्मानन्दजलेनैवाभिषेकाचमनं मतम् ॥
समस्तवासनात्यागं धूपं तस्य विचिन्तयेत् ।
ज्योतिर्मयात्मविज्ञानदीपं सन्दर्शयेद् बुधः (शंकराचार्य) ॥

हे राम, कृष्णा (द्रौपदी) की आर्ति के नांशक मुरारे, गौरीश शंकर, जिन और अर्हन् महावीर तथा मारजित् गौतम! मैं अपार संसार सागर में डूब रहा हूं। घोर अन्धकार के कारण मुझे वर्त्म (मार्ग) नहीं दीख रहा है, कृपया सहायता करें ॥ ६२ ॥

गजारि, पुरारि, शूली, हर, गजेन्द्रेश, गोपाल, नारायण, कैटभारि, रमाकान्त! अपना प्रसाद (आशीर्वाद) दें, अवहेलना रूपी विषाद न दें ॥ ६३ ॥

हे शाक्य सिंह, शुद्धोदनसुत, धर्मराज, लोकपालक, मुनीन्द्र, सर्वार्थसिद्ध, भद्रप्रद और दूषित यज्ञों के विरोधी बुद्ध भगवान्! आप को बार बार प्रणाम है ॥ ६४ ॥

अघारे, खरारे, दूषणारे, सीतापते रावणारे, पूतना वत्सासुर गजराज आदि के मारक श्री कृष्ण, दीन आर्त के नाथ अन्धकारे शिव! आपको प्रणाम है ॥ ६५ ॥ हे हरि! मैं ने सुना है कि सत्कर्मपरायण होना ही आप की सर्वोत्तम पूजा है। इसे करने वाले जनों के योगक्षेम की व्यवस्था आप स्वयं करते हैं। आप उनके लिये

सधूमाग्निवद् दृश्यते मानसं मे मलैरावृतादर्शवत् साम्प्रतं यत् ।
क्रिया हेऽमलेशाशुतोष स्मरारे भवारे द्रुतं निर्मलं दीप्तिवत्तत् ॥ ६७ ॥
भवांभोधिकैवर्त दुर्यागशत्रो स्वभक्तेषु पीयूषधाराधराय ।
नमो मीढुषे ते महादेव शंभो भवान्या समेताय मृत्युंजयाय ॥ ६८ ॥
विधातुर्हरीशादिसंज्ञस्य शक्तयै प्रकृत्यै शिवायै श्रियै शारदायै ।
नमो देवि गायत्रि सावित्रि तुभ्यं विदेहे समेषां शरीरे स्थितायै ॥ ६९ ॥
नमो ज्ञानविज्ञानमेधातितिक्षादयामित्रताशान्तिकान्त्यात्मिकायै ।
नमस्ते बुधैर्बुद्धिशुद्ध्यै स्मृतायै सतां सर्वदा मानसेषूदितायै ॥ ७० ॥
सदेहे नमो भूरिरूपेऽम्बिके ते नमो हैमवत्यै सुरैर्वन्दितायै ।
नमो भद्रिके तुष्टिपुष्ट्यादिसंज्ञे जनेभ्यः सुधीक्षेमलाभप्रदायै ॥ ७१ ॥

सदा शिव और सुन्दर हैं। जो सत्य को नारायण समझ कर उसका अनुगमन करते हैं वे सुरों का पद और मोक्ष, दोनों पाते हैं ॥ ६६ ॥ हे शिव! मेरा मन अभी भी धूमयुत अग्नि और धूल आदि से आच्छादित दर्पण की भांति मलिन है पर मेरे आराध्य देव आप अमलेश, कामारि, भवारि और आशुतोष हैं अतः अपने नामों को सत्य करें। इसे शीघ्र ही निर्मल और प्रदीप्त कर दें ॥ ६७ ॥

हे महादेव! हे शंभो! आप संसारसागर के केवट हैं, कुयज्ञोंके शत्रु हैं, अपने सन्तप्त भक्तों के लिये अमृत के धाराधर (मेघ) हैं। आप का नाम ही मीढुष (वर्षा करने वाला) है, मृत्युंजय है। भवानी समेत आप को बार बार प्रणाम है ॥ ६८ ॥ निराकार परमात्मा की विधाता हरि, ईश आदि अनेक संज्ञाये हैं और उनकी प्रकृति, शिवा, श्री, शारदा, गायत्री, सावित्री, श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, लज्जा, क्षमा, मेघा आदि अनेक निराकार शक्तियां हैं। परमात्मा की भांति ये सब भी सबके शरीर में स्थित हैं। जिन नारियों में इनका पूर्ण उदय हो जाता है वे ईशशक्ति का अवतार कही जाती हैं। उमा सीता आदि ऐसी ही हैं ॥ ६९ ॥ इनमें ज्ञान, विज्ञान, मेघा, तितिक्षा, दया, मित्रता, शान्ति, कान्ति आदि का उदय हो गया है। बुधजन बुद्धिशुद्धि के लिये इनका स्मरण करते हैं और सचमुच ये उनके मानस में उदित हो जाती हैं। इन्हें प्रणाम है ॥ ७० ॥

या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता। या देवी सर्वभूतेषु शान्ति क्षमा श्रद्धा मैत्री क्षान्ति कान्ति तुष्टि पुष्टि बुद्धिमेघा लज्जा क्षुधा निद्रा रूपेण संस्थिता नमस्तस्यै नमो नमः (दुर्गा सप्तशती) ।

गृहे धर्ममूर्तेर्नृपस्यावतीर्णे नमस्तुभ्यमीशानि मेनात्मजायै ।
अनाथातुरापन्नदासेयदासीविपश्चिज्जरत्साधुसेवारतायै ॥ ७२ ॥
महार्घाम्बरै रत्नमाणिक्यमुक्तासुवर्णैर्वपुर्मण्डने निःस्पृहायै ।
उमे ते नमः शान्तिलज्जासुभाषाक्रियायोगविद्यादिभिर्भूषितायै ॥ ७३ ॥
अरण्ये यमे संयमे तत्परायै समानस्वभावालिभिः सेवितायै ।
शरण्ये नमो विप्रशूद्रप्लवंगैर्विहंगैर्भुजंगैः कुरंगैर्वृतायै ॥ ७४ ॥
अपर्णे नमस्ते पराधीनजीवे लताशाखिवृन्देऽनुकम्पान्वितायै ॥
तरूणां दलच्छेदने क्लेशितायै प्रसूनैः फलैः पल्लवैर्हर्षितायै ॥ ७५ ॥

शिव की शक्ति उमा के अम्बिका आदि कई नाम और रूप हैं। इन्होंने देवों को हैमवती के रूप में दर्शन दिया था। इनका एक नाम भद्रा या भद्रिका भी है। ये अपने साधक भक्तों को तुष्टि, पुष्टि, सुबुद्धि, क्षेम, लाभ आदि देती हैं ॥ ७१ ॥ उमा हिमाचल पर्वत की कन्या कहीं जाती हैं पर वस्तुतः वे वहां के राजा की पुत्री हैं। वे धर्म के अवतार प्रतीत होते थे। उनकी पत्नी मेना से उमा देवी का जन्म हुआ। वे राजकन्या होने पर भी जन्म से ही अनाथ, रोगी, शरणागत, दास, दासी, विद्वान्, वृद्ध, साधु आदि की सेवा में लगी रहती थीं ॥ ७२ ॥ उन्हें महार्घ (बहुमूल्य) वस्त्र, रत्न, माणिक, मोती, सोना आदि से शरीर को मण्डित करने की इच्छा कभी भी नहीं होती थी। वे शान्ति, लज्जा, मधुरभाषा, सत्कर्म, सेवा, योगाभ्यास, विद्या आदि को ही आभूषण मानती थीं और सबको यही शिक्षा देती थीं। उन उमा माता को प्रणाम है ॥ ७३ ॥

उमा के प्रभाव से वहां की अनेक नारियां उन्हीं के स्वभाव की बन गईं और उमा ने उनको अपनी सखी मान लिया। उमा राजसुखों का परित्याग कर हिमालय के शिखर पर स्थित एक अरण्य (वन) में जा कर यमों (अहिंसा, सत्य आदि) और संयमों (धारणा ध्यान समाधि) में तत्पर हो गईं। उनके हृदय में जन्म से जाति मानने पर श्रद्धा नहीं थी। वे वन में भक्त विप्रों और शूद्रों से तथा प्लवंगों (वानरों),पक्षियों और मृगों से घिरी रहती थीं। उनका आपसी वैर समाप्त हो गया। शरणागतवत्सला उन उमा माता को प्रणाम है। ॥ ७४ ॥ उमा को पूजा में बिल्वपत्र, तुलसी पत्र, कच्चा पुष्प आदि तोड़ना उचित नहीं प्रतीत होता था अतः उनका नाम अपर्णा हो गया। उनके हृदय में पराधीन निर्बल जीवों, लताओं, वृक्षों आदि के प्रति बहुत अनुकम्पा थी। वे वृक्षों के दलछेदन से दुखी होती थीं और

विवाहे यतीशान् गणान् वीक्ष्य शंभोः सुरांस्ते जनन्यै नमो मोदितायै ।
तदानीं प्रजाबन्धुतातान् प्रहृष्टान् समालोक्य तुभ्यं नमो हर्षितायै ॥ ७६ ॥
विषेभ्योऽवितुः पुष्टिपीयूषदातुः सुगन्धेरघोरस्य शंभोः प्रियायै ।
नमो मंगले मंगलस्यास्य तुष्ट्यै सदा प्राणिनां मंगलायोद्यतायै ॥ ७७ ॥
नमस्तेऽन्नपूर्णे प्रकाशेऽन्धकारे फलेऽन्ने जलादौ मधुस्थापिकायै ।
क्षुधा निद्रया तुष्टिपुष्टिप्रदात्र्यै नमो भर्गशक्त्यै प्रजावत्सलायै ॥ ७८ ॥
मृडानि श्रुतं त्वं सतां सर्वचिन्ता अशेषामयानापदो हंसि तुष्टा ।
वदन्त्यागमा गौरि सर्वानभीष्टान् प्रमोदं श्रियं दुष्कृतां हंसि रुष्टा ॥ ७९ ॥
नरस्यानघस्यैव शंभोस्तवांघ्रौ श्रुतं मातरुत्पद्यते भक्तिभावः ।
अपापं कथं तर्हि वां भक्तमार्ये तुदत्येष मां बोधशान्त्योरभावः ॥ ८० ॥

उनके पुष्पों, फलों एवं नूतन पल्लवों को देख हर्षित होती थीं। उन माता को प्रणाम है ॥ ७५ ॥ उमा के विवाह के समय बारात में जो महान् योगी, शिव के साधक गण और देव आये उनके दर्शन से माता मेना अतिशय मुदित हुई। प्रजागण, बान्धव और हिमाचल नरेश तो प्रहृष्ट हो गये। इस स्थिति को देख हर्षित उमा देवी को प्रणाम है ॥ ७६ ॥ भगवान् शंकर आकाश, वायु, जल आदि में स्थित अनेक विषों को नष्ट कर देते हैं, पी जाते हैं। वे घोर नहीं, अघोर हैं और उनके शरीर में अनेक प्रकार के सुगन्ध (गुण) हैं। माता उमा गुणों के कारण उनकी प्रिया हो गयीं। वेद में शंकर का नाम सुमंगल है और उमा का नाम सर्वमंगला है। माता उमा शिव की प्रसन्नता और सब प्राणियों के मंगल के लिये सदा उद्यत रहती हैं पर विवश हो कर उन्हें कर्मों का फल देना पड़ता है। उनके चरणों को प्रणाम है ॥ ७७ ॥

इनका एक नाम अन्नपूर्णा है। इन आदिशक्ति ने जल, वायु, प्रकाश, अन्धकार, अन्न, वनौषधि, फल, सूर्यकिरण, पृथ्वी के कण आदि में मधु (अमृत) की स्थापना की है। ये क्षुधा और निद्रा द्वारा हमें तुष्टि और पुष्टि देती हैं। इन प्रजावत्सल भर्गशक्ति को प्रणाम है ॥ ७८ ॥ हे मृडानि! हमने सुना है कि आप सज्जनों से सन्तुष्ट होकर उनके सारे रोगों, शोकों और संकटों को नष्ट कर देती हैं तथा आगमों का कथन है कि पापियों से रुष्ट होकर उनके सब अभीष्टों, प्रमोदों और लक्ष्मी को समाप्त कर देती हैं ॥ ७९ ॥ हे माता! मैं ने सुना है कि जिसके पाप समाप्त हो गये हैं उसी मनुष्य का आप और शिव के चरणों में भक्ति भाव बढ़ता

न लोभान्न मोहान्न रोगेभ्य आधेरभून्मे महादेवि कामान्निवृत्तिः।
न मे ज्ञानविज्ञानसत्योपलब्धौ न लोकोपकारे दृढाभूत्प्रवृत्तिः॥ ८१ ॥
मया दुर्भगेनाम्ब लब्धो न योगी गुरुर्निर्गदः सर्वहृद्भावविज्ञः।
समर्थो गमे रवेऽन्यकायप्रवेशे खलानां वधे सर्वदेशस्थितिज्ञः॥ ८२ ॥
न दैवज्ञ आप्तोऽन्धविश्वासहीनो ग्रहर्क्षादिकानां प्रभावस्थितिज्ञः।
न भूम्यब्धिगानां निधीनामभिज्ञो न सृष्टेर्नराणां गतानागतज्ञः॥ ८३ ॥
न गीतज्ञ आप्तो नृणां रोगहारी प्रशस्तस्वरालापतानाढ्यरागैः।
न तन्त्रीप्रवीणश्च लब्धो निरुद्धो विमुग्धैर्मृगर्क्षाश्वगोपक्षिनागैः॥ ८४ ॥
स नाप्तो मखज्ञो मखे येन दृष्टाः सुरा धातृशक्राग्निसूर्यानिलाद्याः।
प्रिया वा सुराणां शचीमंजुघोषाघृताचीसुकेश्युर्वशीमेनकाद्याः॥ ८५ ॥

है। तो हे आर्ये! आप दोनों के भक्त मुझ अपाप को यह बोध और शान्ति का अभाव सता क्यों रहा है ॥ ८० ॥

(जन्तोर्विगतपापस्य भवे भक्तिः प्रजायते।)

हे महादेवि! लोभ, मोह, रोग, आधि, काम आदि से मैं अभी पूर्ण रूप से निवृत्त नहीं हो सका हूं और ज्ञान, विज्ञान, सत्य की उपलब्धि और लोकोपकार में अभी दृढ़ प्रवृत्ति नहीं हुई है ॥ ८१ ॥

हे माता! मुझ अभागे को अभी शारीरिक और मानस रोगों से विहीन, सबके मनोभावों और सब देशों कालों की स्थिति का वेत्ता, आकाशगमन परकायप्रवेश तथा पापियों के वध में समर्थ कोई योगी गुरु नहीं मिला है ॥ ८२ ॥ अभी तक ऐसा ज्योतिषी नहीं मिला है जो अन्धविश्वास से विहीन है, पुरानी उक्तियो की जांच करता है, ग्रह नक्षत्र आदि की गति स्थिति प्रभाव का यथार्थ वेत्ता है, भूमि आकाश समुद्र में स्थित निधियों का अभिज्ञ है और मनुष्यों तथा सृष्टि का भूत भविष्य जानता है ॥ ८३ ॥ मुझे अब तक ऐसा संगीतज्ञ नहीं मिला है जो प्रशस्त स्वरों के आलाप तान से युत रागों और रागिनियों द्वारा मनुष्यों के रोगों को समाप्त करता हो। वीणा सितार आदि को बजाने वाला ऐसा तंत्रीवेत्ता नहीं मिला जो विमुग्ध मृगों, भालुओं, अश्वों, पक्षियों, गायों, सर्पों आदि से घिरा हो ॥ ८४ ॥ मुझे अब तक ऐसा यज्ञवेत्ता नहीं मिला जिसने यज्ञशाला में साकार ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, सूर्य, वायु आदि देवों को और उनकी प्रिया शची, सरस्वती, स्वाहा, मंजुघोषा, घृताची, सुकेशी, उर्वशी, मेनका आदि अप्सराओं को देखा हो ॥ ८५ ॥

न दृष्टः सुरः कोऽपि हन्ता खलानां गवां भक्षिणां मन्दिरध्वंसकानाम् ।
न संरक्षको वा सुरागाररक्षणे परित्यज्य मोहं सुतादेर्मृतानाम् ॥ ८६ ॥
इमां दैवविद्योगविद्देवतानां विलोक्य स्थितिं गायकानां मखानाम् ।
अमीषां महत्त्वेऽस्ति जातं नितान्तं मनः संशयाक्रान्तमप्यास्तिकानाम् ॥ ८७ ॥
अहं प्रीत एतेषु विश्वासयुक्तो मुहुः प्रार्थये देवि सिद्धेश्वरि त्वाम् ।
रहस्यस्य योगादिकानामभिज्ञान् गणान् कांश्चिदीशस्य सम्प्रेषयोर्व्याम् ॥ ८८ ॥
मृडं शंकरं ब्रूहि योगेश्वरि त्वं स्वयं वा हृदां नः कुरु ध्वान्तनाशम् ।
गुरूंस्तादृशान् देहि वा ये ददीरन् ग्रहात्मेशयोगादिबोधप्रकाशम् ॥ ८९ ॥
अशक्ता नरास्तत्पदं गन्तुमेके विनिन्दन्ति सिद्धीर्हताशा विरक्ताः ।
विना दर्शनं किन्तु सिद्धेर्न विज्ञा भवन्त्यम्ब कस्यापि शास्त्रस्य भक्ताः ॥ ९० ॥

मुझे अब तक कोई ऐसा देव नहीं मिला जिसने गोमांसभक्षी तथा मन्दिरों के ध्वंसक खलों का वध किया हो तथा जिन महापुरुषों ने गृह, पत्नी, पुत्र आदि का मोह छोड़कर देवालयों की रक्षा में प्राण दे दिये उनको बचा लिया हो ॥ ८६ ॥

ज्योतिषियों, योगियों, देवों, गायकों, याजकों आदि की यह स्थिति देख कर इस समय अनेक आस्तिकों के भी मन इनकी महत्ता के प्रति अति संशयित हो गये हैं ॥ ८७ ॥

किन्तु हे सिद्धेश्वरी माता! मुझे अभी भी इन शास्त्रों में पूर्ण प्रीति और प्रतीति है! आप से बार बार प्रार्थना कर रहा हूं कि भगवान् के कुछ ऐसे गणों को आप पृथ्वी पर भेजें जो इनके रहस्य के विशेषज्ञ हैं ॥ ८८ ॥

हे योगेश्वरि! मेरा यह निवेदन मृड शंकर को सुना दो अथवा तुम स्वयं ऐसे गुरु दे दो जो हमें ग्रह, आत्मा, ईश्वर, योग, यज्ञ, संगीत, ज्योतिष आदि का प्रबोधप्रकाश दे दें अथवा तुम हमारे हृदयों के अन्धकार को नष्ट कर हमें ही वैसा बना दो। हमने अब तक कोई भी उच्च ज्ञान नहीं पाया है ॥ ८९ ॥

यहां बहुत से ऐसे विद्वान् हैं जो इन पदों तक पहुंचने में असमर्थ हैं अतः हताश होकर इन सिद्धियों की निन्दा करते हैं, अंगूर को खट्टा कहते हैं और अपने को वैरागी सिद्ध करते हैं किन्तु हे माता! सत्य यह है कि सिद्धियों को देखे बिना मनुष्य किसी शास्त्र या शास्त्रज्ञ के भक्त नहीं बनते ॥ ९० ॥

अपर्णे नमो योगिराजप्रियायै नमो देवि सिद्धेश्वरि ज्ञानदायै ।
सुगन्धिप्रदे पुष्टिदे पाहि मातः शिवे ते नमो मंगलायै दयायै ॥ ९१ ॥
सुतानां त्रुटीरम्ब नो भावयेथाः उमे सार्द्रचित्ता प्रसन्ना भवेथाः ।
भवानि प्रजानां प्रबोधप्रकाशं प्रदायान्नपूर्णे कुरु ध्वान्तनाशम् ॥ ९२ ॥
जनो व्याकुलोऽयं शिवाधार आधौ शिवे बोधयस्थाणुमूतं समाधौ ।
कृपालोलुपं हे जनन्यल्पसत्त्वं शिवाधारमाश्वासयानन्दय त्वम् ॥ ९३ ॥
महादेवस्य विष्णोर्ब्रह्मणः शक्तिर्महादेवी, जगन्मातोदिता नित्यं
सतां चित्तेषु निष्काया । सतां धात्री खलेभ्यश्चण्डिका पायान्
महाकाली, महाविद्या महामेधा महालक्ष्मीर्महामाया ॥ ९४ ॥
विदेहा पातु मां ब्राह्मी हृदिस्था भारती वाणी, सरस्वत्यादृता
विज्ञैर्महिच्छैः शारदा देवी । प्रसन्नोपासकेभ्यो या प्रदत्ते सन्मतिं
बोधं, धृतिं कीर्तिं च विज्ञानं प्रशान्तिं नारदा देवी ॥ ९५ ॥

हे माता अपर्णे! आप योगिराज शंकर की प्रिया हैं, इन सारे ज्ञानों विज्ञानों, सुगंधों और पुष्टियों की दात्री सिद्धेश्वरी, मंगला और दया हैं। आप को प्रणाम है। विद्यादान देकर हमारी रक्षा करें ॥ ९१ ॥ माता उमा!, पुत्रों की त्रुटियों पर अधिक प्रबोधप्रकाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिये। अतः हमारे हृदयान्धकार को नष्ट कर शीघ्र ज्ञानप्रकाश दे दें ॥ ९२ ॥ हे माता! एक शिव ही हमारे आधार हैं, पर उनका एक नाम स्थाणु (सूखा वृक्ष) रख दिया गया है। वे समाधि में डूबकर हम भक्तों को भूल जाते हैं। उन्हें जगा दें। हे जननि! हम अल्पसत्त्व होकर भी उनकी कृपा के लोलुप हैं। माता! इस शिवाधार पुत्र को थोड़ा आश्वासन दे दें ॥ ९३ ॥

जगन्माता दुर्गा निष्काया (निराकार) है। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव कहे जाने वाले परमेश्वर की शक्ति महादेवी है। सज्जनों के हृदय में सदा उदित रहती है, उनकी धात्री है और खलों के लिये चण्डिका है। वही महाकाली, महाविद्या, महामेधा, महालक्ष्मी, महामाया आदि सब कुछ है। उस माता को प्रणाम है ॥ ९४ ॥ हमारे हृदय में स्थित वह निराकार ब्राह्मी देवी हमारी रक्षा करे जिसके भारती, सरस्वती, वाणी, शारदा आदि अनेक नाम हैं। जो विज्ञों और महाशयों की पूज्या है। जो

सदेहा पातु देवौजोभवा सा चण्डमुण्डघ्नी, क्वचिद् वीणाकरा जाड्यापहा
श्वेताम्बरा वाणी । क्वचिद् दाक्षायणी दुर्यागतो रुष्टा सती माता
शिवा योगेश्वरी शैलेशबाला क्वापि शर्वाणी ॥ ९६ ॥
अपायात्तारिणी तारा क्वचित् सिंहासना दुर्गा कदाचित् शंभु-
शीर्षस्था नभोगा भूमिगा गंगा । सदा शान्ता प्रपन्नापत्स्वशान्ता
पातु मीनाक्षी कुमारी ब्रह्मचारिण्यादिशक्तिर्विन्ध्यशैलंगा ॥ ९७ ॥
जयन्ती मंगला सर्वेश्वरी सिद्धेश्वरी पायात्, स्वधा स्वाहा
शताक्षी चन्द्रघण्टा भ्रामरी पायात् । सतां नन्दा जया पूर्णा सुभद्रा
रिक्तताहन्त्री खरस्था शीतला कात्यायनी शाकंभरी पायात् ॥ ९८ ॥

प्रसन्न होने पर अपने उपासकों को सन्मति, प्रबोध, धैर्य, प्रतिष्ठा, विज्ञान, प्रशान्ति और नार (आनन्द) आदि देती है ॥ ९५ ॥

देवगण दैत्यों से बार-बार हार रहे थे। उनका स्वर्ग छिन गया था। तब ब्रह्म ने बताया कि एकता का अभाव ही आप की पराजय का कारण है। तब उन्होंने अपने ओज को एकत्रित किया। उससे जो देवी बनी उसी ने महिषासुर, चण्ड, मुण्ड आदि दैत्यों को समाप्त किया। वही माता कभी जड़ता को दूर करने वाली श्वेताम्बरा वीणापुस्तक धारिणी वाणी (सरस्वती) का रूप धारण कर लेती है, कभी अपने पिता दक्ष के हिंसात्मक यज्ञ से रुष्ट होकर सती हो जाती है और कभी हिमाचल प्रदेश के महाराज की योगेश्वरी कन्या भवानी उमा हो जाती है ॥ ९६ ॥ कभी विघ्नों के सागर से पार करने वाली सिंह पर बैठी दुर्गा बन जाती है तो कभी तारों से बनी आकाशगंगा हो जाती है। इसका एक नाम तारा और दूसरा गंगा है। यह ब्रह्माण्डाकार व्योमकेश शिव के सिर पर बैठी सूक्ष्म जलमयी और तारामयी गंगा है। यह सदा शान्त रहती है पर सन्तों के आपत्तिकाल में उन शरणागतों की रक्षा के लिये अशान्त भी हो जाती है। इसके मीनाक्षी, कुमारी, ब्रह्मचारिणी, आदिशक्ति और विन्ध्यवासिनी आदि अनेक नाम हैं और उनकी कथायें प्रबोधप्रद हैं ॥ ९७ ॥ यह माता जयदात्री होने से जयन्ती और मंगलदात्री होने से सर्वमंगला कही जाती है। इसी के नाम पर तिथियों के नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता, पूर्णा नाम रखे गये हैं। वे सब शुभ हैं। रिक्ता रिक्तता की

दुराधर्षा सुगन्धा पुष्टिदा मा हैमवत्यार्या कदाचिद् रुक्मिणी सीता
हरेराराधिका रामा । कदाचित् कौशिकस्था पातु लक्ष्मीश्चंचला
माता सुपर्णस्थेन्दिरा नारायणी पद्मालया पद्मा ॥ ९९ ॥
विशुद्धज्ञानदेहस्य त्रिवेदीचक्षुषः शंभोः प्रियायास्ते न जानाम्यस्त्र-
शंस्त्राणामभिप्रायम् । अनेकाख्यापि रुद्राणि त्वमेकैवोदिता विज्ञैर्न
जाने ते स्वरुपाणां रहस्याभिज्ञतोपायम् ॥ १०० ॥
वरेण्यं धीतमोघ्नं नैव भर्गस्ते दृशा दृष्टं न चिन्त्यं योगिभी
रूपं कथं ते चिन्तयामीशे । हृदिस्थांश्चण्डधूम्राक्षादिदैत्यांश्चण्डिके
हन्या रतिं योगीश्वरे तन्या इति त्वां प्रार्थयामीशे ॥ १०१ ॥

नाशिनी है। यही माता शताक्षी, चन्द्रघण्टा, भ्रामरी, खरस्था शीतला, कात्यायनी, शांकभरी आदि है ॥ ९८ ॥ यह दुराधर्षा सुगन्धा पुष्टिदा हैमवती आर्या, मा, रमा, आदि नामों वाली है और यही कभी-कभी मानवरूपधारी परमात्मा की आराधिका पत्नी (रामा) सीता और रुक्मिणी बन जाती है। यह कभी उल्लू (कौशिक) पर बैठने वाली चंचला लक्ष्मी बन कर हमें शिक्षा देती है कि धन के दास मत बनो और कभी गरुड़ पर बैठने वाली इन्दिरा, नारायणी, पद्मालया और पद्मा हो जाती है। यह माता सदा हमारी रक्षा करे ॥ ९९ ॥ हे माता तुम उन विश्वनाथ की प्रिया हो जिनका देह केवल विशुद्ध ज्ञान है और तीन वेद (ज्ञान) ही जिनके तीन नेत्र हैं अतः तुम्हारे हाथों में जो नाना प्रकार के साकार शस्त्र अस्त्र हैं उनका अभिप्राय मैं अभी तक नहीं जान सका हूं। हे माता! विद्वानों का निर्णय है कि तुम्हारे नाम अनेक हैं पर तुम एक हो अतः मैं तुम्हारे इन अनेक रूपों का भी पूरा रहस्य नहीं जान सका हूं ॥ १०० ॥

हे गायत्री माता! मैंने सुना है कि तुम्हारा वरेण्य भर्ग (श्रेष्ठ तेज) बुद्धि के तम को समाप्त कर देता है पर मैंने अभी तक उसको इन नेत्रों से नहीं देखा है अतः कृपया मुझे दिव्य दृष्टि दो। तुम्हारा रूप जब योगियों द्वारा भी अचिन्त्य है तो मैं इन नेत्रों से उसे कैसे देख सकूंगा। मा! मेरी बार-बार प्रार्थना है कि तुम मेरे हृदय में बैठे चण्ड, मुण्ड, धूम्राक्ष आदि दैत्यों को मार डालो और मेरी भक्ति योगीश्वर शंकर के चरणों में बढ़ा दो ताकि मैं दिव्य दृष्टि से उनके और तुम्हारे वास्तव रूपों को देख लूं ॥ १०१ ॥

न जाने मे जगत्यां को हितार्थी कश्च लाभो वा तमस्यन्धे निलीन-
स्त्वां निरालम्बो भजाम्यार्ये । दयाप्त्यै सप्रयत्नोपीन्द्रियार्थान्धो
भ्रमाम्यार्ये हताशो मन्त्रकल्पं नाममात्रं ते जपाम्यार्ये ॥ १०२ ॥
त्वयैतद् धार्यते विश्वं त्वयैतत्पाल्यते मातः तथा कुर्या यथाहं
नो दुराचारेषु यानीशे । क्षमाशीले शरण्ये वत्सले गायत्रि मांगल्ये
निरस्तः सर्वतस्त्वत्तोऽपि धूतो नो भवानीशे ॥ १०३ ॥

हे जगदम्ब! पता नहीं, संसार में मेरा हितार्थी कौन है और मेरा लाभ कहां है। इसलिये घोर अन्धकार में निलीन हूं और निरालम्ब होकर तुम्हारा भजन कर रहा हूं। यद्यपि तुम्हारी कृपा पाने के लिये प्रयास कर रहा हूं फिर भी पांचो इन्द्रियों के विषय मुझे अन्धा बना कर भरमा रहे हैं, नचा रहे हैं अतः हताश होकर इस समय केवल तुम्हारे पावन नामों का जप कर रहा हूं ॥ १०२ ॥ हे माता! तुम जगज्जननी हो। तुम्हीं इस संसार का धारण और पालन करती हो अतः मुझे बचा लो, मैं दुराचारों की ओर कभी न जावूं। हे ईशे! क्षमाशीले, शरण्ये, वत्सले, गायत्री माता! सब ओर से उपेक्षित और तिरस्कृत मुझ पुत्र का तुम भी त्याग न कर देना ॥ १०३ ॥

षष्ठोध्यायः

कर्मफलं सुनिश्चितम्

हे विश्वनाथ शतशक्तिप साधुबन्धो शंभो शरण्य मृड मन्मथजित् सुरेश ।
मातर्महेश्वरि भवानि मृडानि दुर्गे हे मंगले महिषमर्दिनि रक्ष पुत्रान् ॥ १ ॥
खिन्नोस्मि योगनियमांश्च यमानवेक्ष्य त्यक्तान् मठेशयतिभिर्धनकीर्तिलीनैः ।
मत्स्येन्द्रनाथमुनिदत्तमठेषु मायां मान्यानघोरमतगांश्च विलोक्य घोरान् ॥ २ ॥
शास्त्रार्थतर्करतविस्मृतपंचशीलान् भिक्षूनवेक्ष्य विभवाढ्यविहारसौधे ।
सम्यक्स्मृतीक्षणसमाधिसुकर्महीनान् तन्त्रेषु फल्गुषु रतानपि वज्रयोगे ॥ ३ ॥

हे अनेक शक्तियों के स्वामी, साधुबन्धु, शरणागतवत्सल, सुखशान्ति के दाता, कामेश्वर, सुरेश, विश्वनाथ! हे माहेश्वरी भवानी मृडानी महिषमर्दिनी मंगला दुर्गा माता, आप पुत्रों और देश की रक्षा करें ॥ १ ॥ हम इस समय देश की यह स्थिति देख कर अतिशय खिन्न हैं कि हमारे मठाधीश योगशास्त्र के यम, नियम आदि आठ अंगों की साधना का परित्याग कर धन और यश में लीन हो गये हैं। भगवान मत्स्येन्द्रनाथ, बाबा गोरखनाथ दत्तात्रेय आदि मुनीश्वरों के मठों में अब वह योग दिखाई नहीं दे रहा है जिसने अगणित दुराचारियों को अपने प्रभाव से; चमत्कार से सदाचारी बना दिया। आज अघोर पन्थ घोर हो गया है। अघोरी सन्त मायावी और मांस मदिरा धूम्रपान, गांजा, भोगँ, अफीम आदि के भक्त हो गये हैं ॥ २ ॥ भगवान् बुद्ध ने दुःखनाश के लिये अति उत्तम अष्टांगिक मार्ग (सम्यक् दृष्टि, संकल्प, वाणी, कर्म समाधि आदि) और पंचशील (अहिसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य मादकद्रव्यत्याग) बताया था पर अब बौद्ध भिक्षु इन्हें भूल कर उस शास्त्रार्थ और तर्क में रत हैं जिसका बुद्ध ने विरोध किया था। अब यहां दर्शन के सौत्रान्तिक, वैभाषिक, माध्यमिक, योगाचारी चार सम्प्रदाय हो गये हैं। भिक्षुगण वैभव युत भव्य विहारों में रहते हैं। अब वे निरर्थक तन्त्रों और वज्रयोग (वाममार्ग) में रत हैं ॥ ३ ॥

त्रस्तोभि नेतृनृपमन्त्रिगुरूनवेक्ष्य पाखण्डपीडनपरिग्रहपंकमग्नान् ।
पूर्णान् धराग्निगगनश्वसनान् कुधूमैरम्बार्चनं पिशितरक्तसुरादिपानैः ॥ ४ ॥
जातं मनोऽस्ति मलिनं नवदुष्कथाभिः श्रीकृष्णरासनवचित्रपटोत्थगानैः ।
काव्यं लभे विरलमेव विवेकपूर्णं शृंगारमुज्वलमहं क्वचिदेव चापम् ॥ ५ ॥
दैवज्ञकल्पितनवग्रहकुण्डलिभ्यो भीतं रुणद्धि तिथिलग्नमुहूर्तपाशः ।
तस्मात् स्वदेशगुरुसाधुनृपानुरागः क्षीणः क्व यानि परमेश्वर शान्तिलब्ध्यै ॥ ६ ॥
आसं समाधिसुरथाख्यमहीपतुल्यो येषां कृतेऽहमुचितानुचितं न वेद ।
लाभस्थितौ परमखिन्नमना अभूवं हानिस्थलेष्वभवमाढ्य इव प्रसन्नः ॥ ७ ॥

मैं अपने नेताओं, अनेक उच्चपदाधिकारियों (नूतन नृपों), मंत्रियों, अध्यापकों और गुरुजनों की स्थिति देख कर त्रस्त हूं। ये पाखण्ड, पीड़न और परिग्रह (शोषण) के कीचड़ में डूब गये हैं। पृथ्वी, आकाश, वायु और अग्नि दूषित धूमों से परिपूर्ण हो गये हैं और दयामयी जगदम्बा का पूजन मांस, रक्त, मदिरा आदि से हो रहा है ॥ ४ ॥

नूतन दूषित उपन्यासों से, कथाओं से, योगेश्वर कृष्ण की रासलीलाओं से, चित्रपटों के नग्न चित्रों से और अश्लील गीतों से मनुष्यों के मन सदोष हो गये हैं। विवेकपूर्ण शिक्षाप्रद काव्य क्वचिदेव उपलब्ध हैं और उज्वल शृंगार रस मैंने कहीं कहीं पाया है ॥ ५ ॥

संस्कृत में सांप को कुण्डली कहते हैं। हम ज्योतिषियों द्वारा कल्पित नवग्रह रूपी कुण्डलियों से भयभीत हैं। ये ग्रह देव होकर भी हमारे लिये भीषण राक्षस हो गये हैं। अब ग्रह शब्द का अर्थ ही उलट गया है। इस समय हमारा भीत मन तिथि, लग्न, मुहूर्त आदि अनेक पाशों में बंध गया है। इस कारण स्वदेश, गुरु, साधु, रक्षक मंत्री आदि के प्रति जो अनुराग था वह क्षीण हो गया है। हे परमेश्वर हम शान्तिप्राप्ति के लिये कहां जायें ॥ ६ ॥

दुर्गासप्तशती में समाधि वैश्य और सुरथ राजा की दो शिक्षाप्रद कथायें हैं। इन दोनों ने उचित अनुचित का विचार किये बिना परिवार के लिये बहुत धन कमाया पर इनके स्वजन शत्रु हो गये। मेरी भी यही स्थिति है। मैं लाभप्रद पुण्यकर्म को अपनी हानि और हानिप्रद पापकर्म को लाभ समझ रहा हूं। उसमें प्रसन्न हो जाता हूं ॥ ७ ॥

येषां कृते विविधनिन्द्यतरैरुपायैः आसं धनार्जनपरः चतुराभिधोऽज्ञः ।
तैरेव पुत्रवनिताभिजनैरिदानीं उद्वासितोऽस्मि हतबुद्धिरहं महेश ॥ ८ ॥
लेशोऽपि नास्ति हृदयेषु कृतज्ञतायाः प्रेम्णा श्रमेण बहुलेन पुरस्कृतानाम् ।
आयासतो विरचितं भवनं कराले कारागृहे परिणतं कुधिया निजानाम् ॥ ९ ॥
तस्मात् कृशोऽस्ति कुलजातिपुरादिमोहो देव प्रयच्छ शिवदं स्वपदं पुरारे ।
तातोद्धर स्वजनतोयनिधावपारे पुत्रादिनक्रबहुले पतितं भवारे ॥ १० ॥
यानीह सन्ति वसुधावसुकीर्तिकामाद् अस्मत्कृतानि वयुनानि विभोऽसि विद्वान् ।
विश्वानि तानि दुरितानि परासुवाशु यद् भद्रमासुव च तत् सवितर्दयालो ॥ ११ ॥
राये तडिद्द्युतिवते सुपथा नयास्मान् भूयो विधेम नम उक्तिमुमापते ते ।
व्रीडानुतापजनशापभृतां सुतानां सर्वं युयोधि नमतां जुहुराणमेनः ॥ १२ ॥

मैं अज्ञ अपने को चतुर समझता हूं। जिनके लिये अनेक निन्दित कर्मों द्वारा धन कमाया उन्हीं पुत्र पत्नी द्वारा आज तिरस्कृत हूँ, हताश हूं ॥ ८ ॥ जो बड़े प्रेम और श्रम से पुरस्कृत किये गये उनके हृदयों में कृतज्ञता का स्पर्श भी नहीं है। स्वजनों की इस दुर्बुद्धि के कारण परिश्रम से बनाया भव्य भवन मेरे लिये कारागार हो गया है ॥ ९ ॥ हे भवारे! इस कारण मेरा स्वकुल, स्वजाति, स्वपुर आदि का मोह कृश हो गया है अतः अब अपना कल्यांणप्रद पद देने की कृपा करें। हे तात! हे पुरारे! मेरा उद्धार करें। मैं इस समय उस अपार स्वजनसागर में डूब रहा हूं जिसमें पुत्र पौत्र आदि नामों वाले अनेक मगर बैठे हैं ॥ १० ॥

अग्ने नय सुपथा रायेऽस्मान् युयोध्यस्मदेनः (यजुर्वेद ४०) ।
के शत्रवो मित्रवदात्मजाद्याः (शंकराचार्य) ।

हे विभो! हमने धरती, धन, कीर्ति आदि की कामना से जो भीषण वयुन (पाप) किये हैं उन सबों को आप जानते हैं। अब उन पापों को शीघ्र दूर करें और हे दयालु सवितृदेव! हमें वह दें जो हमारे लिये परिणाम में भद्र हो (ये तीन श्लोक यजुर्वेद संहिता ४० और ईशावास्योपनिषत् के तीन मन्त्रों के अनुवाद हैं) ॥ ११ ॥ हे तात उमापते! मैं आप से बार-बार यह प्रार्थना कर रहा हूं कि तडित् (बिजली) की भांति द्युति वाले, अत्यन्त आकर्षक इस राय (धन) की ओर हमें सुमार्ग से ले चलें। हम पुत्रों ने इसकी प्राप्ति के लिये जुहुराण (महान्) एनस् (पाप) किये हैं। इससे हमें जनता का बहुत शाप मिल रहा है। हमें इस बात की व्रीडा (लज्जा) है, पश्चात्ताप है। अतः आप इन्हें नष्ट कर दें और हम शरणागतों

दुर्दैवतोऽपिहितमस्ति हिरण्मयेन पात्रेण सत्यमुखमेतदपावृणु त्वम् ।
पूषन् मयोभव तथा कुरु मे मनीषां दृष्टो यथा भवति शंकर सत्यधर्मः ॥ १३ ॥
श्रुत्वा भगीरथकथामभवन्मतिर्मे घोरां करोषि भगवन् भजतां परीक्षाम् ।
गौर्या निशम्य तप उग्रमपर्णमीश त्वं नाशुतोष इति खेदपरोऽहमासम् ॥ १४ ॥
शार्दूलजम्बुकबिडालवृकोरगाणां दृष्ट्वातिनिर्दयतया मृगयाकुचेष्टाम् ।
मांसाशिनां खगशुनामथ मानवानां दृष्ट्वा भृशं बलवतामबलेऽभिचारम् ॥ १५ ॥
आसीदिदं मम मतं जगति व्यवस्था नास्त्यत्र नास्ति भगवांश्च जगन्नियन्ता ।
चेदस्ति दुःखबहुरोगकुबुद्धिदोऽयं क्रूरः कथं भवितुमर्हति दीनबन्धुः ॥ १६ ॥
साक्षाद् हरिर्बहुमखव्रतदानपुण्यैः प्रीतस्तपोभिरगमत् कुशलाय यत्र ।
यत्रांगणे हसति नृत्यति मोदतेऽके तत्रावलोक्य कलहार्तिघृणाविलापान् ॥ १७ ॥

को सुमति दे दें ॥ १२ ॥ हे पूषन् शंकर! दुर्भाग्य से सत्यपात्रका मुख सोने के ढक्कन से ढक गया है। सुवर्ण का लोभ सत्य की ओर नहीं जाने दे रहा है। हे मयोभव! अब आप इस सुवर्ण को हटाकर हमें सत्य का दर्शन करा दें। हमारी मनीषा (बुद्धि) को निर्मल कर दें ॥ १३ ॥

हे भगवान्! भगीरथ की कथा सुन कर मेरा मन कहने लगा कि आप भक्तों का घोर परीक्षण करते हैं। हे ईश! माता गौरी ने सूखा पत्ता खाना भी छोड़ दिया। उनके उग्र तप की कथा सुन कर मुझे विश्वास हो गया कि आप आशुतोष नहीं हैं। इसका मुझे खेद था ॥ १४ ॥ मैंने देखा कि बाघ, सियार, बिडाल, भेड़िया, सांप आदि हिंसक जीव कुछ जीवों को बड़ी निर्दयता पूर्वक मार कर खा जाते हैं। मांसाहारी पक्षी, कुत्ते और मानव तथा अनेक बलवान् निर्बलों पर अत्याचार करते हैं ॥ १५ ॥

इन घटनाओं को देख कर मुझे विश्वास हो गया कि संसार में कहीं भी सुव्यवस्था नहीं है और भगवान् नाम का कोई चेतन प्राणी इस संसार का नियामक नहीं है। ईश्वर है ही नहीं। यदि है तो अनेक प्रकार के रोगों का, कष्टों का और दुर्बद्धि का दाता वह क्रूर दीनबन्धु कैसे हो सकता है ॥ १६ ॥

अनेक यज्ञों; तपों, व्रतों, दानों और पुण्यों से प्रसन्न हो कर सुख शान्ति देने के लिये साक्षात् हरि दशरथ के घर उनके पुत्र रूप में आये। वे उनके आंगन में हंसते थे, नाचते थे, उनकी गोद में प्रसन्नता से बैठते थे पर वहां भी कलह, कष्ट, घृणा और विलाप आदि आ गये ॥ १७ ॥

शुद्धोदनं दशरथं वसुदेवनन्दौ तेषां प्रजाः प्रणयिनः सचिवांश्च भार्याः ।
श्रुत्वा चिरं प्ररुदतो रुदतीश्च शुग्भिर्ज्ञातं न ते भवति दर्शनतोऽघनाशः ॥ १८ ॥
यस्य ध्वजेऽस्ति भवदंशभवो हनूमान् व्यासेन्द्रकृष्णगिरिजाश्च भवान् सहायाः ।
पुत्रस्त्वनाथ इव तस्य हतोऽभिमन्युः कृष्णासुता अपि हता निशि निःसहायाः ॥ १९ ॥
सीतां सुतां दशरथस्य सुरेशसख्युर्जायां हरे रघुपतेरसुरेण नीताम् ।
योगीशवन्द्यजनकस्य सुतामरण्ये त्यक्तां निशम्य निकटप्रसवां पुनीताम् ॥ २० ॥
श्रीरामकृष्णरमणादिमहामुनीनां देहामयं विपुलपापवतां च वृद्धिम् ।
श्रुत्वा च दानिनृगभूपकुपूययोनिं धर्मे तथा भवति सांशयिकं मनोऽभूत् ॥ २१ ॥
चेतोऽन्धकारशमनोऽधिगतः प्रकाशो नास्त्यन्धकेश हृदि सम्प्रति संशयो मे ।
धीरप्रबुद्धवचसां गरिमाऽनुभूता ज्ञातं शुभाशुभमिदं स्वकृतेर्विपाकम् ॥ २२ ॥

मैंने सुना कि दशरथ ही नहीं, महाराज वसुदेव शुद्धोदन नन्द आदि के घर भी वे उसी प्रकार रहे पर यह भी सुना कि इनको, इनकी प्रजा को, मित्रों को, मंत्रियों और पत्नी आदि को चिर काल तक शोकाकुल होकर रोना पड़ा। सारांश यह कि आप के केवल दर्शन से पापों का नाश नहीं होता ॥ १८ ॥ जिन अर्जुन के रथध्वज में आप के अंश हनुमान् जी बैठे थे और व्यास, इन्द्र, कृष्ण, पार्वती और आप जिसके सहायक थे उनका पुत्र अभिमन्यु अनाथ की भांति मारा गया और द्रौपदी के पांचो पुत्र रात में असहाय की भांति मारे गये ॥ १९ ॥ देवराज इन्द्र के मित्र महाराज दशरथ की पुत्रवधू, साक्षात् हरि रघुपति राम की पत्नी और योगियों के पूज्य विदेह जनक की पुत्री सीता को एक राक्षस बल पूर्वक पकड़ कर ले गया और वे दूसरी बार प्रसव काल में निर्जन वन में फेंक दी गईं जब कि सर्वथा निर्दोष थीं ॥ २० ॥ मैंने यह भी सुना कि रामकृष्ण परम हंस, महर्षि रमण, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी शिवानन्द आदि यती रोगी होकर मरे तथा अनेक महापापी सब प्रकार से सुखी हैं। मैंने यह भी सुना कि महादानी राजा नृग को गिरगिट की जघन्य योनि में जाना पड़ा। अतः मेरा मन धर्म में, आप की सत्ता में और आप की व्यवस्था में सन्देहग्रस्त हो गया था ॥ २१ ॥

किन्तु हे अन्धकेश! अब मैंने चित्त के अन्धकार का नाशक प्रकाश पा लिया है। अब मेरे हृदय में कोई संशय नहीं रह गया है। मुझे धीर और प्रबुद्ध योगियों के अनुभूत वचनों की गरिमा का अनुभव हो गया है। मैंने जान लिया है कि सारा शुभ अशुभ कर्मों का विपाक हैं ॥ २२ ॥

ज्ञातं मया जगति दिग्जयिनो नृपा ये सन्ति प्रसिद्धकवयः सचिवा मुनीशाः।
विद्वांस आदृततमा उत नेतृवर्याः कुर्वन्ति तेऽपि मनसो विकृतौ कुकृत्यम् ॥ २३ ॥
नो विद्यते क्वचन कर्मफलप्रदाता जन्मान्तरं कृतिफलं नृमनःप्रसूतम्।
मत्वेति नास्तिकनराश्च भवन्ति सक्ताः पापे पदं च विभवं मधु मन्यमानाः॥२४॥
भूत्वा कदाचिदचिराय समृद्धिमन्तः शत्रुंजया बहुधराधनधान्यगेहाः।
पश्चाद् भवन्ति दुरितौघविपाककाले ते पौत्रनप्तृसमये सगदा दरिद्राः ॥ २५ ॥
नो पर्वतस्य विवरे न समुद्रमध्ये नैवाम्बरे न हि रसातलनाकयोर्वा।
एतादृशोऽस्त्यघवते निलयस्त्रिलोके यत्र स्थितो भवति कर्मफलाद् विमुक्तः ॥२६॥
भस्मावृताग्निरिव सन्दहदेति काले न क्षीरवद् दुरितमाशु फलं ददाति।
लब्ध्वेह शोचति नरोऽश्रुमुखोऽस्य पाकं भुंक्ते परत्र विवशोऽन्यभवे त्रितापम्॥२७॥
रामो जघान युधि वालिनमिन्द्रसूनुं सुग्रीवमर्कतनयं च ररक्ष मित्रम्।
सूतो बभूव पुनरिन्द्रसुतार्जुनस्य तस्मै ददौ स्वभगिनीं सुहृदे सुभद्राम् ॥ २८ ॥

मैंने जान लिया है कि संसार के अनेक दिग्विजयी भूप, विख्यात कवि, मंत्री, मुनि, समाज में आदृत विद्वान्, बड़े-बड़े नेता आदि आस्तिक एवं पुजारी होने पर भी मन की विकृत अवस्था में कुकर्म करते हैं ॥ २३ ॥ नास्तिकों का कथन हैं कि पुनर्जन्म नहीं होता, कर्मफल नहीं मिलता और मरण के साथ आत्मा भी समाप्त हो जाती है। कर्मफल मनुष्यों की एक मिथ्या कल्पना है। ये वैभव और पद को ही अमृत मान कर नाना प्रकार के पाप करते हैं ॥ २४ ॥ परन्तु ये शत्रुओं को जीत कर कुछ दिनों के लिये समृद्धिमान् और अत्यधिक धरा, धन, अन्न, गृह आदि के स्वामी हो जाते हैं तथा दुरितों (पापों) के समूह के विपाक के समय, अपने नाती पोतों के काल तक दरिद्र और रोगी हो जाते हैं ॥ २५ ॥

पापी के लिये पर्वत की गुफा में, समुद्रतल में, आकाश में, रसातल में, स्वर्ग में तथा तीनों लोकों में ऐसा कोई निलय (गृह) या सुरक्षित स्थान नहीं है जहां छिपकर वह अपने कर्मों के शुभ अशुभ फलों से मुक्त हो जाय ॥ २६ ॥ दुरित (पाप) दूध की भांति तुरत फल नहीं देता। वह राख से ढकी आग की भांति समय पर प्रज्वलित होकर जला देता है। इसके परिपाक को पाने के बाद मनुष्य रो रोकर उसे भोगता है। विवश होकर दूसरे जन्म में, दूसरे लोक में भी दैहिक दैविक भौतिक तीनों तापों को भोगता हैं ॥ २७ ॥ श्रीराम ने इन्द्रपुत्र वाली को नियम के विरुद्ध वृक्ष की आड़ से मारा और अपने मित्र सूर्यसुत सुग्रीव की रक्षा की किन्तु

पूर्वं सुकण्ठ इह सूर्यसुतः स कर्णः कृष्णाज्ञया युधि हतो विरथोऽर्जुनेन ।
वृक्षान्तरस्थरघुनाथशरेण यद्वद् बाली हतो मृगयुणाऽत्र तथैव कृष्णः ॥ २९ ॥
सेवानुशासनपरायणलक्ष्मणोऽभूत् ज्येष्ठो बलोऽप्यवरजोऽस्य बभूव कृष्णः ।
श्रीराम इत्युपदिदेश निजावतारात् नो कोऽपि कर्मफलतो भविता विमुक्तः ॥ ३० ॥
आसन् समेऽप्यतिरथाश्च महारथा ये कृष्णात्मजा अतिबला अपरैरजेयाः ।
साम्बादयः कुसृतिहास्यमदाभिभूता उद्वेजयन् स्वपितुराश्रयतो जगत्ते ॥ ३१ ॥
ऊर्जस्विनो भृशमुपाधिपरान् कुमार्गान् दृष्ट्वा यदून स्वतनयान् भगवान् दयावान् ।
निन्ये तदीयहृदयेषु महादुराधीन् चक्रुर्मिथो रणमिमे जगतो हिताय ॥ ३२ ॥
मैरेयपा बहुवदा विविधायुधोग्राः पुत्रा अयुत्सत जरत्पितृभिः पितृव्यैः ।
जामातरो युयुधिरे श्वशुरैर्मदान्धाः कृष्णेच्छया विनिहताः सुहृदः सुहृद्भिः ॥ ३३ ॥

कृष्णावतार में इसका प्रायश्चित्त किया। यहां वे इन्द्रसुत अर्जुन के सारथी बने और परम मित्र अर्जुन को अपनी भगिनी सुभद्रा स्वयं दी। उनके पिता और भाई ऐसा नहीं चाहते थे फिर भी कृष्ण नहीं माने ॥ २८ ॥

सूर्यसुत सुकण्ठ (सुग्रीव) ही दूसरे जन्म में सूर्य सुत कर्ण हो गया। जो रामावतार में मित्र था वह कृष्णावतार में शत्रु बन गया और वह रथहीन अवस्था में कृष्ण की आज्ञा से अर्जुन द्वारा मारा गया। राम ने वृक्ष की ओट से वाली को मारा था। वाली के पुत्र अंगद ने मृगयु (व्याध) बन कर राम की भांति सोते कृष्ण को मारा ॥ २९ ॥ अनुशासन परायण लक्ष्मण ने राम की अति सेवा की। परिणाम यह हुआ कि दूसरे जन्म में लक्ष्मण बड़े भाई बलभद्र हो गये और श्रीराम सेवा करने के लिये छोटे भाई कृष्ण बन गये। श्रीराम ने अपने अवतारों द्वारा यह शिक्षा दी कि कर्मफलों से कोई भी मुक्त नहीं हो सकता ॥ ३० ॥ कृष्ण के साम्ब आदि सभी पुत्र पौत्र अतिबली, शत्रुओं द्वारा अजेय, अतिरथी और महारथी थे। वे कुमार्ग, हास्य, अहंकार आदि से मत्त हो गये थे और अपने पिता कृष्ण के बल पर पूरे जगत् को उद्वेजित कर रहे थे ॥ ३१ ॥ दयालु भगवान् ने अपने यदुवंशी परिवार को बलवान्, अति उपाधिरत और कुमार्गी देख कर संसार के हित के लिये उनके हृदयों में अनेक दुर्भाव भेज दिये। वे आपस में ही लड़ने लगे ॥ ३२ ॥

वे मदिरा पी-पी कर बहुत बोलने लगे। अब में नाना प्रकार के आयुध लेकर उग्र हो गये। पुत्रगण अपने वृद्ध चाचा और पिता से युद्ध करने लगे। कृष्ण की इच्छा से जामाता मदान्ध होकर अपने श्वशुरों की और मित्र मित्रों की हत्या

क्षीणायुधा विविधुरेरकमुष्टिभिस्ते क्रुद्धा बलेन हरिणा च निवार्यमाणाः ।
तौ हन्तुमीषुरपतंश्च जवात्ततोऽमू रामाच्युतावपि विजघ्नतुरेरकाभिः ॥ ३४ ॥

ता एरकाः करगताः परिघा अभूवन् वज्रोपमा विनिहता यदवः समे तैः ।
कृष्णो गतो निजपदे रुदतो वयस्यान् हित्वा यदून् निजपितॄन् स्वजनादिमोहम् ॥ ३५ ॥

द्रोणोऽर्जुनस्यरुचिमोहवशंगतत्वात् शिष्यैकलव्यशबरस्य यतो जहार ।
अंगुष्ठमानततरस्य पुनीतबुद्धेर्विद्धोऽर्जुनेन विशिखैर्निहतश्छलेन ॥ ३६ ॥

आजीवनं सकलकौरवपांडवानां गोप्ता महापुरुष आप्तवरश्च भीष्मः ।
सेहे स्वगोत्रगुरुमोहवशंगतत्वादम्बासतीपरशुरामगुरोर्विरोधम् ॥ ३७ ॥

करने लगे ॥ ३३ ॥ आयुधों के समाप्त हो जाने पर वे एरक (मोथा) और मुष्टिका से ही प्रहार करने लगे। कृष्ण बलराम ने मना किया तो कुपित होकर वेग से उन्हीं पर टूट पड़े। तब कृष्ण बलराम भी उन्हीं मोथों से सबको मारने लगे ॥ ३४ ॥

कृष्ण की इच्छा से हाथ में आने पर वे मोथे परिध (लोहा मढ़ी लाठी) हो जाते थे और उनका प्रहार वज्रवत् होता था। चार पांच को छोड़ सब यदुवंशी इस गृहयुद्ध में समाप्त हो गये और कृष्ण भगवान् स्वजन आदि का मोह छोड़ कर, अपने रोते हुये मित्रों, शेष यदुवंशियों और माता-पिता आदि का परित्याग कर अपने धाम चले गये ॥ ३५ ॥

एकलव्य ने अपने अभ्यास से योग्यता प्राप्त की थी क्योंकि द्रोणाचार्य ने उसे सिखाना अस्वीकार कर दिया था फिर भी उसने द्रोण को गुरु मान लिया था। उसकी बुद्धि पवित्र थी और वह द्रोण के सामने सदा नतमस्तक रहता था, किंन्तु द्रोण ने पाप समझते हुये भी अपनी अन्तरात्मा की पुकार के विपरीत केवल अर्जुन की प्रसन्नता के लिये एकलव्य का अंगूठा काट कर उसका जीवन निरर्थक कर दिया पर उसी अर्जुन ने रण में द्रोण पर सबसे अधिक विषाक्त बाण चलाये और पाण्डवों ने उन्हें छल से मार डाला। मरने के बाद भी उन पर लात के प्रहार हुये ॥ ३६ ॥

आप्त पुरुषों में श्रेष्ठ भीष्म पितामह जीवन भर कौरवों पाण्डवों की सहायता करते रहे। वे अपने भतीजों के लिये तीन कन्याओं को बल पूर्वक पकड़ कर ले आये। उन्होंने सती अम्बा और गुरु परशुराम के विरोध की भी चिन्ता नहीं की क्योंकि उन्हें अपने गोत्र का घोर मोह था ॥ ३७ ॥

दुर्योधनं कटुवदं न जहौ सरागो ज्ञात्वापि सांशयिकमात्मनि दुर्मनीषम् ।
सन्तोषणे बहुगुणोऽप्युभयोरशक्तो विद्धोऽर्जुनेन दयितेन विषाक्तबाणैः ॥ ३८ ॥
यस्मै ददुर्नृपतयो बलिमध्वरे प्राक् येनाहृतं बहुधनं च बलान्नृपाणाम् ।
राज्ञामनेकमणिरत्नकिरीटहारी प्राप्तो धनंजयपदं प्रथितः स जिष्णुः ॥ ३९ ॥
गोपैरसद्भिरबलेव विनिर्जितोऽभूत्तैस्तस्य वित्तवनिताश्च हृताः प्रसह्य ।
आसंस्त एव शरचापरथाश्वपार्था व्यर्थं बभूव सकलं स्वकृतेः फलं तत् ॥ ४० ॥
संरक्षणे शिवशिवाच्युतवासवानां द्रौणिः समस्तबलमस्य जघान सुप्तम् ।
संबन्धिनः प्रियसुताः सुहृदो विनष्टा द्वारि स्थितेऽपि शिबिरस्य सशस्त्ररुद्रे ॥ ४१ ॥
पूताशया भगवतोंशभवा महान्तो वैज्ञानिकाः सुकृतिनो बहुपुण्यभाजः ।
यत्रेदृशो न हि बभूवुरघाद्विमुक्तास्तत्रेन्द्रियार्थपरदुष्कृतिनां कथा का ॥ ४२ ॥

दुर्योधन को उनके प्रति सदा सन्देह रहता था। वह उनसे कटु भी बोलता था फिर भी वे अनुराग के कारण उस दुष्टमति को छोड़ नहीं सके। वे महान् गुणवान् हो कर भी दोनों पक्षों को सन्तुष्ट नहीं कर सके और अन्त में परम प्रिय अर्जुन के विषाक्त बाणों से मारे गये ॥ ३८ ॥

अर्जुन ने यज्ञ के लिये अनेक राजों का धन बलपूर्वक छीना था और अनेकों ने भय से बहुत धन दिया था। इसलिये अर्जुन धनंजय कहे जाते थे। उन्होंने अनेक नृपों के मुकुटों और मणिरत्नों का संग्रह किया था, इसलिये जिष्णु (विजयी) के नाम से प्रसिद्ध थे ॥ ३९ ॥

किन्तु उन्हीं अर्जुन को असत् एवं निर्बल गोपों ने अबला नारी की भांति जीत लिया। उन्होंने नारियों के साथ-साथ उनका सारा धन बलपूर्वक छीन लिया, जबकि उनके पास वे सारे पुराने बाण, धनुष, रथ, अश्व आदि विद्यमान थे। वे सब व्यर्थ हो गये, यह कर्मों का ही फल था। उससे भगवान् भी नहीं बचा सके ॥ ४० ॥

शंकर, पार्वती, कृष्ण और इन्द्र सदृश सहायकों के रहते द्रौणि (अश्वत्थामा) ने रात में सोते समय पाण्डवों के अगणित सैनिकों, सम्बन्धियों, द्रौपदी के पांचो पुत्रों और मित्रों को नष्ट कर दिया, जब कि द्वार पर सशस्त्र रुद्र खड़े थे ॥ ४१ ॥

जहां पवित्रात्मा, भगवान् के अंश से उत्पन्न, वैज्ञानिक, अतिकुशल, बहुपुण्यवान् ऐसे महान् पुरुष भी थोड़े पापों के फल से मुक्त नहीं हो सके वहां इन्द्रियों के दास पापी कैसे बचेंगे ॥ ४२ ॥

आच्छादिता उपलकाष्ठचयैरनेकाः कुल्या यथा मलवहा नगरेऽतिरम्ये ।
तद्वत् स्थिता मनसि सन्ति कलेवरे मे विद्वेषलोभभयकोपमनोजमोहाः ॥ ४३ ॥
उत्पादयन्ति नियमे तव देव शंका विस्मारयन्ति दुरितोत्थफलानि चैते ।
मार्गेषु फल्गुषु नयन्ति हठाच्च बुद्धीरुद्वासय द्रुतमिमानत ईश शत्रून् ॥ ४४ ॥
ज्ञातमेतन्मया क्षीयते कर्म नो नाथ भोगं विना जन्मभिर्भूरिभिः ।
दुष्कृतां शर्म कष्टं सतां कर्मणामस्ति पाको निरुक्तं महत्सूरिभिः ॥ ४५ ॥

जैसे अतिरम्य नगर के मार्गों के नीचे पाषाण और काष्ठ से ढकी नालियों में मल बहा करते हैं वैसे ही हमारे शरीरस्थ मन में द्वेष लोभ भय कोप काम मोह आदि दोष स्थित हैं (बुद्धवाक्य) ॥ ४३ ॥ हे देव! ये आप के बनाये नियमों में शंकायें उत्पन्न करते हैं, पाप के भीषण फलों की विस्मृति करा देते हैं और बुद्धिको बलपूर्वक कुमार्ग में ले जाते हैं अतः कृपया इन शत्रुओं को दूर भगा दें ॥ ४४ ॥ हे नाथ! मैंने अब जान लिया है भोगे बिना कर्मों के फल अनेक जन्मों में भी समाप्त नहीं होते। महान् विद्वानों का यह निर्णय सत्य है कि पापियों का आनन्द और सज्जनों का कष्ट पिछले कर्मों का फल है ॥ ४५ ॥